स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी-द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

•

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्०

डॉ० आ० ने० उपाध्ये, एम० ए०, डी० लिट्०

•

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७

प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

विक्रय केन्द्र : ३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

•

स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७० • विक्रम सं० २००० • १८ फरवरी सन् १९४४

भारतीय ज्ञानपीठ

स्व० मूर्तिदेवी, मातेश्वरी सेठ शान्तिप्रसाद जैन

JNANAPITHA MURTIDEVI JAIN GRANTHMALA SANSKRIT GRANTHA No 1

MADANAPARĀJAYA

of

KAVI NĀGADEVA

with

HINDI TRANSLATION, INTRODUCTION & APPENDICES

EDITED BY

Dr. RAJAKUMAR JAIN
Sahityacharya, M. A., Ph. D

श्री हंसराज बच्छराज नाहटा
सरदारशहर निवासी
द्वारा
जैन विश्व भारती, लाडनू
को सप्रेम भेंट –

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA PUBLICATION

VIRA SAMVAT 2490
V. S 2021, 1964 A. D

Second Edition
Rs. 6/-

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ
JAIN GRANTHAMĀLĀ

FOUNDED BY

SĀHU SHĀNTIPRASĀD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTIDEVĪ

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAINA ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL, PURANIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRĀKRIT, SANSKRIT, APABHRAṀŚA, HINDI, KANNADA, TAMIL ETC., ARE BEING PUBLISHED IN THEIR RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES

AND

CATALOGUES OF JAINA BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR JAINA LITERATURE ARE ALSO BEING PUBLISHED.

•

General Editors

Dr Hiralal Jain M A , D Litt
Dr A N Upadhye, M A , D. Litt.

•

Bharatiya Jnanpitha
Head office 9 Alipore Park Place, Calcutta-27.
Publication office Duragakund Road, Varanasi-5
Sales office 3620/21 Netaji Subhash Marg, Delhi-6.

•

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira Sam 2470, Vikrama Sam. 2000.18th Febr.1944

General Editorial

The Madanaparājaya in Sanskrit of Nāgadeva edited by Prof Rajakumar Jain was first published by the Bhāratīya Jñānapītha in the Mūrtidevī Jaina Granthamālā as its No 1 of the Sanskrit Series in the year 1948 We are glad to find that an occasion has arisen to bring out a second edition of it The present edition is a reprint of the first edition It will be seen, however, that the material in the Introduction and Indices have been rearranged, and Hindi translation has been given along with the text on the same page. It is hoped that this will be appreciated by the readers.

As already stated by Nāgadeva, the author of the Sanskrit Madanaparājaya, in his introductory verses, he had rendered into Sanskrit the Prākrit composition of his predecessor Harideva, who also happens to be his ancestor five generations back It is very gratifying that this work of Harideva was discovered and critically edited by Dr Hiralal Jain, and it has appeared as No. 5 of the Apabhraṃśa Series of this very Granthamālā.

The Madanaparājaya is an important specimen of allegorical composition in Indian literature, and it is hoped that the two works together with the material presented in their Introductions and Appedices will facilitate and promote the studies in this sphere.

Thanks to the authorities of the Bhāratīya Jñānpītha that this kind of literature which was so far neglected is being suitably published for the benefit of scholars as well as general readers

Kolhapur
10-6-64

H. L. Jain
A. N. Upadhye

ग्रन्थमाला सम्पादकीय

नागदेवकृत सस्कृत मदनपराजय प्रो० राजकुमार जैन-द्वारा सम्पादित होकर भारतीय ज्ञानपीठकी मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमालाके प्रथम सस्कृत ग्रन्थके रूपमे सन् १९४८ में प्रथम बार प्रकाशित हुआ था। हमें हर्ष है कि इस ग्रन्थकी द्वितीय आवृत्तिका अवसर प्राप्त हुआ। प्रस्तुत सस्करणमे मूल पाठ, अनुवाद, प्रस्तावना तथा परिशिष्टोकी सामग्री यथापूर्व है। इस सस्करणमें अनुवादको मूलके साथ दे दिया गया है तथा प्रस्तावनामें भी कुछ हेरफेर किये गये है। आशा है पाठकोको इस रूपमें यह रुचिकर होगा।

इस सस्कृत मदनपराजयके कर्ता नागदेवने अपने ग्रन्थकी उत्थानिकामे कहा है कि उन्होने अपनेसे पूर्ववर्ती कवि हरिदेवको प्राकृत रचनाका सस्कृतमें रूपान्तर किया है। ये हरिदेव, अन्य कोई नही, उन्ही नागदेवके पाँच पीढी पूर्व हुए पूर्वज हैं, और यह बडे सन्तोषका विषय है कि उनके उस अपभ्रश काव्य मयणपराजयचरिउका भी पता चल गया और वह डॉ० हीरालाल जैन-द्वारा आलोचनात्मक रीतिसे सम्पादित होकर इसी ग्रन्थमालाकी अपभ्रशधाराके ग्रन्थाक ५ के रूपमे प्रकाशित हो चुका है।

मदनपराजय रूपकात्मक भारतीय साहित्यकी एक महत्त्वपूर्ण रचना है। आशा की जाती है कि उक्त दोनो ग्रन्थो एव उनकी प्रस्तावनाओ और परिशिष्टोमें प्रस्तुत की गयी सामग्री इस क्षेत्रमे विशेष अध्ययनके लिए सहायक होगी।

भारतीय ज्ञानपीठके अधिकारी वर्गको धन्यवाद है कि इस प्रकारका जो साहित्य अभीतक उपेक्षित था वह उनके द्वारा विद्वानो तथा साधारण पाठकोके हितार्थ सुचारु रूपसे प्रकाशित किया जा रहा है।

कोल्हापुर
१०-६-६४

हो० ला० जैन
आ० ने० उपाध्ये

निवेदन

[प्रथम संस्करणका ग्रन्थमाला सम्पादकीय]

संसारके सत् पदार्थ जड और चेतन दो स्थूल भागोंमें विभाजित हैं। चेतन जडसे तथा जड चेतनसे प्रभावित होता है। विशेषता यह है कि शुद्ध चेतनपर न तो जड अपना प्रभाव डाल सकता है और न चेतन। पर जड चाहे शुद्ध हो या अशुद्ध, जड और चेतन दोनोंसे प्रभावित होता रहता है। चेतन अनादि कालसे जड-बद्ध अतएव अशुद्ध हैं। इसी अशुद्धताके कारण उसमें काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि असद्-वृत्तियोंका उदय होता है। इन सभी वृत्तियोंका अधिष्ठान काम है। कामके जीत लेनेपर शेष दुर्वृत्तियाँ अपने-आप क्षीण हो जाती है और चेतन अपनी शुद्ध स्वाभाविक चिन्मय अवस्थामें लीन हो जाता है। कामवृत्ति इतनी सूक्ष्म और गहरी पैठी हुई है कि इससे चिर योगी भी योगभ्रष्ट होते सुने गये है। विश्वामित्र, पराशर, आदि ऋषियोंको अपनी साधनामें च्युत करना कामका ही कार्य है। बुद्धने मारविजयके लिए ही अपनी साधना-का अधिकतम समय लगाया, इस दुर्वार मार वीरको ही जीतकर जिनेन्द्र जिन कहलाते है।

भारतीय धर्मोंका चरम उद्देश्य 'वासनाशान्ति' का है। वासनाओंका मूल अधिष्ठान काम है। अत धर्म, दर्शन, पुराण, नीति आदिके सिवाय काव्य, नाटक, चम्पू, आख्यान आदिके द्वारा भी भारतीय ग्रन्थ-कारोंने मानवको मुक्तिमन्दिरकी ओर ले जानेका ही प्रयास किया है। प्रस्तुत ग्रन्थमें काम-पराजयका सुन्दर रूपक सरल, सरस, उपदेशपूर्ण, प्रसाद आदि गुणयुक्त भाषामें गूँथा गया है। ग्रन्थका महत्त्व साहित्यिककी अपेक्षा सांस्कृतिक अधिक है। इसमें जैनसंस्कृतिके उस मूलाधार सम्यक्चारित्रके विकासकी दिशा सुन्दर रूपकोंमें निरूपित की गयी है जिसके द्वारा आत्मा परमात्मा बन जाता है। तत्त्वज्ञान यदि चारित्रकी दृढता करता है तो ही उसकी सार्थकता है। ग्रन्थकी भाषा, शैली तथा बन्ध सरल और प्रसादगुणपूर्ण है।

प्रस्तुत ग्रन्थके प्रत्येक पहलूपर इस ग्रन्थके सम्पादक प्रो० राजकुमारजीने अच्छा प्रकाश डाला है। ग्रन्थको केन्द्रमें रखकर अनेक साहित्यिक मुद्दोंकी खोजपूर्ण विवेचना की है। नागदेवके समयके सम्बन्धमें अभी और भी ऊहापोह अपेक्षित है। सम्यक्त्वकौमुदीको नागदेवकर्तृक होनेकी सम्भावना तबतक सत्योन्मुख नहीं कही जा सकती जबतक कि किसी प्रतिमें उसके नागदेवकर्तृक होनेका उल्लेख न मिले या किसी समकालीन या उत्तरकालीन ग्रन्थकर्ताके ऐसे स्पष्ट उल्लेख न मिलें जिनसे उसके नागदेवकर्तृकत्वकी सिद्धि होती हो। जिस पद्यसाम्य, भाषासाम्य आदि आधारोंसे ऐसी सम्भावना अभी की जा रही है वे सुदृढ नहीं हैं क्योंकि अन्य रचित सम्यक्त्वकौमुदीको सामने रखकर भी मदनपराजयमें उक्त साम्य आ सकते हैं या मदनपराजयको सामने रखकर अन्य कोई ग्रन्थकार सम्यक्त्वकौमुदीमें उक्त समानताएँ ला सकता है अथवा किसी तृतीय आधारसे विभिन्न ग्रन्थकारों-द्वारा दोनोंमें समान अनुकरण हो सकता है। ऐसी दशामें अभी इस सम्भावनाको पुष्ट करने-के लिए समर्थ प्रमाण अपेक्षित है। प्रो० राजकुमारजी परिश्रमी, दृष्टिसम्पन्न तथा उत्साही युवक विद्वान् है।

सम्पादकीय

[प्रथम संस्करणका]

सात-आठ वर्ष पहलेकी बात है। दिगम्बर जैन समाजमें 'न्यायकुमुदचन्द्र'-जैसे दार्शनिक ग्रन्थ आधुनिक एवं नवीनतम सम्पादन-शैलीसे सुसम्पादित होकर प्रकाशमें आये। जैन समाचार-पत्रोंमें इन ग्रन्थोंका बड़ी धूम-धामके साथ विज्ञापन हुआ और विद्वन्मण्डलीमें इनकी प्रशंसात्मक आलोचना भी। उन दिनों मैं साहित्याचार्य होनेकी तैयारी कर रहा था और साहित्य-सृजनकी ओर तो मेरी बहुत पहलेसे प्रवृत्ति थी। अत जब न्यायकुमुदचन्द्र प्रभृति सुसम्पादित ग्रन्थ मेरे देखनेमें आये और इनकी प्रशसा-चर्चा भी सुनने और पढनेको मिली तो मेरे मनमें आया कि जैन-साहित्यके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी क्यो न इस प्रकार सुसम्पादित होकर प्रकाश मे आवे।

संयोगकी बात है कि जुलाई सन् १९४४ में मुझे भारतीय ज्ञानपीठ, काशीमें काम करनेका सौभाग्य मिला। और अपने कार्यकालमे अन्य ग्रन्थोके सम्पादन-कार्यके साथ ही मैंने मदनपराजयके सम्पादनका कार्य भी प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार मदनपराजयका सम्पादन तथा प्रस्तावनाके कुछ अशका लेखन ज्ञानपीठमें रहकर ही सम्पन्न किया गया। अनन्तर परिस्थितिवश मैं यहाँ आ गया और शेष कार्य यहीं रहकर पूर्ण किया।

मदनपराजय अपने सम्पादित रूपमे पाठकोके कर-कमलोमें है। पचतन्त्र-जैसी आख्यानशैलीमें लिखा गया यह सर्वप्रथम रूपात्मक (Allegorical) ग्रन्थ है। अपने मौलिक रूपमे यह पहली बार ही प्रकाशित हो रहा है।

प्रस्तुत ग्रन्थगत विशेषताओके सम्बन्धमें मैंने प्रस्तावनाके 'मदनपराजय एक अध्ययन' शीर्षक अध्यायमें यथासम्भव प्रकाश डाला है। इसके साथ ही भारतीय आख्यान-साहित्यके क्रमिक विकासका भी कुछ लेखा लगाया है तथा उपलब्ध रूपकात्मक रचनाओपर भी एक विहगम दृष्टि डाली है। मदनपराजयकी साहित्यिक धाराके कतिपय शब्दचित्र भी आलेखित किये है। इस तरह प्रस्तावना काफी लम्बायमान हो गयी। परन्तु आशा है, पाठकोके लिए इसमें कुछ विचार और ज्ञानकी सामग्री मिलेगी।

अन्तमें हम भारतीय ज्ञानपीठके जन्मदाता और सचालक श्रीमान् साहु शान्तिप्रसादजी जैनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञताजलि प्रकट करना चाहते हैं, जिनके स्नेह-पूर्ण सौजन्यके कारण हमें ज्ञानपीठमें कार्य करनेका सुअवसर मिला और आधुनिक शैलीसे ग्रन्थ-सम्पादनकी दिशामें प्रवृत्त होनेका सौभाग्य भी।

इस अवसरपर हम उन सज्जनोका भी कृतज्ञतापूर्वक नामस्मरण करना चाहते है जिनके द्वारा हमे प्रस्तुत ग्रन्थके सम्पादनमें विविधमुख सहायता प्राप्त हुई। इस सम्बन्धमे सर्वप्रथम श्री प० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्यका नाम उल्लेखनीय है। जिनकी सहधर्मितामें ग्रन्थ-सम्पादन और सशोधनकी बहुत-सी बातें सीखनेका हमें सुयोग मिला। श्रद्धेय पं० नाथूरामजी प्रेमीने भी समय - समयपर अपनी अमूल्य रचनाओंसे

संकेतसूची

अमर०	अमरकोष	निर्णयसागर, बम्बई
अ० रा०	अभिधानराजेन्द्र	रतलाम
अष्टा०	अष्टाध्यायी	निर्णयसागर, बम्बई
आदिपु०	आदिपुराण	श्री जैनसिद्धान्तप्रकाशिनीसंस्था, कलकत्ता
आप्तस्व०	आप्तस्वरूप	माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, बम्बई
उत्त० टी० अ०	उत्तराध्ययन, टीका, अध्याय	देवचन्द्र लालभाई, सूरत
क्षत्रचू०	क्षत्रचूडामणि	दि० जैनपुस्तकालय, सूरत
चै० च०	चैतन्यचन्द्रोदय	निर्णयसागर, बम्बई
चौ० प०	चौरपचाशिका	
ज्ञान० सू० प्र०	ज्ञानसूर्योदयप्रशस्ति	अप्रकाशित
ज्ञाना०	ज्ञानार्णव	रायचन्द्रशास्त्रमाला, बम्बई
त० श्लो०	तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक	निर्णयसागर, बम्बई
त० सू०	तत्त्वार्थसूत्र	दि० जैनपुस्तकालय, सूरत
दश० अ०	दशवैकालिक अध्ययन	
दुर्गा०	दुर्गासप्तशती	चौखम्भा सस्कृत सीरिज, बनारस
धनञ्जय०	धनंजयनाममाला	दि० जैन पुस्तकालय, सूरत
ध० वि० ना०	धर्मविजय नाटक	सरस्वतीभवनसीरिज, काशी
पञ्च०	पञ्चतन्त्र	मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, लाहौर
पञ्च० अप०	पचतन्त्र अपरीक्षितकारक	” ” ”
पञ्च० काको०	पचतन्त्र काकोलूकीय	” ” ”
पञ्च० मि० भे०	पञ्चतन्त्र मित्रभेद	” ” ”
पञ्च० मि० सम्प्रा०	पञ्चतन्त्र मित्रसम्प्राप्ति	” ” ”
पञ्च० लब्ध०	पञ्चतन्त्र लब्धप्रणाश	” ” ”
प्रबोध० च०	प्रबोधचन्द्रोदय	निर्णयसागर, बम्बई
प्र० चि० प्रबोध० चि०	प्रबोधचिन्तामणि	जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर
प्र० चि० प्र०	प्रबोधचिन्तामणि प्रशस्ति	” ”
भारतसा०	भारतसावित्र्युपाख्यानम्	बम्बई
भुवनेशलौ०	भुवनेशलौकिकन्यायसाहस्री	वेङ्कटेश्वर, बम्बई
भोजप्र०	भोजप्रबन्ध	चौखम्भा सस्कृत सीरिज, बनारस
म० स्तो०	महिम्नस्तोत्र	” ”
म० परा०	मदनपराजय	प्रस्तुत सस्करण

नोट—जिन ग्रन्थो और पत्रो आदिका प्रस्तावनामें पूरा नाम आ चुका है, उन्हें सकेत-सूचीमें सम्मिलित नही किया है।

—सम्पादक

म० परा० प्र० म० परा० प्रश०	मदनपराजय प्रशस्ति	प्रस्तुत सस्करण
मूला०	मूलाचार	माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, वम्वई
मूलारा० द०	मूलाराधनादर्पण	सोलापुर
मूलारा० वि०	मूलाराधना विजयोदया	,,
मृच्छ०	मृच्छकटिक	निर्णयसागर, वम्वई
मेदिनी०	मेदिनीकोष	चौखम्भा सस्कृत सीरिज, बनारस
यश०	यशस्तिलकचम्पू	निर्णयसागर, वम्वई
यो० शा०	योगशास्त्र	,, ,,
र० श्रा०	रत्नकरण्डश्रावकाचार	माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, वम्वई
राजवा०	राजवार्तिक	जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी सस्था, कलकत्ता
रु० सं० सती० खं०	रुद्रसहिता सतीखण्ड (शिवपुराण)	वम्वई
विश्व०	विश्वलोचनकोष	गाधीनाथारग, वम्वई
स० सि०	सर्वार्थसिद्धि	सोलापुर
सागारध०	सागारधर्मामृत	माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला, वम्वई
सामु० शा०	सामुद्रिक शास्त्र	जैन सिद्धान्तभवन, आरा
सा० द०	साहित्यदर्पण	निर्णयसागर, वम्वई
सिद्धान्त०	सिद्धान्तकौमुदी	,, ,,
सुभाषित० भा०	सुभाषितरत्नभाण्डागार	,, ,,
सुभाषितत्रि०	सुभाषितत्रिशती	,, ,,
सूक्तिमु०	सूक्तिमुक्तावली	,, ,,
स्था०	स्थानाङ्गसूत्र	सूरत
हितो०	हितोपदेश	निर्णयसागर, वम्वई
हितोप० मि० ला०	हितोपदेश मित्रलाभ	,, ,,
हितो० सुहृद्भे०	हितोपदेश सुहृद्भेद	,, ,,
हि० सा० भू०	हिन्दी साहित्यकी भूमिका	हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर, वम्वई
गा०	गाथा	
च० प०	चतुर्थ परिच्छेद	
टी०	टीका	
दे०	देखिए,	
भ०	भट्टारक	
प० स०	पक्ति-सख्या	
पृ० स०	पृष्ठ-सख्या	
स०	सवत्	

अनुक्रम

प्रस्तावना

१ सम्पादन परिचय — १—६

- प्रतिपरिचय — १
- मूल ग्रन्थका संयोजन — ५
- हिन्दी अनुवाद — ६
- टिप्पण — ६

२. भारतीय आख्यान-साहित्य — ६—२८

- धर्मकथा-साहित्य — ७
- नीतिकथा-साहित्य — १२
- लोककथा-साहित्य — १३
- रूपकात्मक कथा-साहित्य — १६

३. मदनपराजय : एक अध्ययन — २८—५५

- मदनकी मूलात्मा और उसका विस्तार — २८
- कामदेवकी उत्पत्ति और उसका रूप-वैचित्र्य — २९
- मदनपराजयके रूपान्तर — ३१
- मदनपराजय और उसके नामान्तर — ३१
- मदनपराजयकी संक्षिप्त कथा — ३२
- चरित्र-चित्रण — ३३
- रूपक योजना — ३९
- भाषा — ४०
- शैली — ४२
- मदनपराजयगत अन्तर्कथाएँ — ४४
- मदनपराजयके पद्य — ४६
- मदनपराजयके छन्द — ४८
- मदनपराजयका स्थान — ४९
- मदनपराजयकी साहित्यिक धारा — ४६
- मदनपराजयमें उपयोग किये ग्रन्थ — ५५

४. ग्रन्थकार ५६—५८

मदनपराजयके कर्ता ५६

नागदेवका पाण्डित्य ५७

नागदेवकी अन्य रचनाएँ ५७

नागदेवका समय और स्थान ५७

मूल ग्रन्थ १—१२५

परिशिष्ट

मदनपराजयके मूल श्लोकोंकी वर्णानुक्रमसूची १२७

मदनपराजयमें उद्धृत श्लोकोंकी वर्णानुक्रमसूची १३०

पारिभाषिक और विशिष्ट शब्द १३२

ऐतिहासिक और भौगोलिक नाम १४४

प्रस्तावना

१. सम्पादनपरिचय

प्रतिपरिचय

मदन पराजयके सम्पादनमें जिन प्रतियोका उपयोग किया गया है उनका परिचय इस प्रकार है :

१ 'क' यह प्रति श्री ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती-भवन झालरापाटनकी है। प्रति कागजपर देवनागरी लिपिमें है। पत्र-सख्या ४६ है। प्रत्येक पत्रकी लम्बाई दस इच और चौडाई पाँच इच है। प्रत्येक पत्रमे २६ पक्तियाँ है और प्रत्येक पक्तिमें लगभग २९, ३० अक्षर है। अक्षर वाँचे जा सकते है, पर सुन्दर नही है। ग्रन्थ के 'तथा च' और 'उक्त च' आदि लाल स्याहीसे लिखे गये है। इस प्रतिका आरम्भ इस प्रकार होता है

॥ स्वस्ति ॐ नमः सिद्धेभ्य. ॥ यदमलपदपद्मं

और अन्त निम्न प्रकार होता है :

इति मदनपराजयं समाप्तमिति ॥ मूलसघ भट्टारक श्रीरत्नभूषण जी तदाज्ञावर्ती श्रीरामकीर्ति-पडित लछीराम-मन्नालाल-लक्ष्मीचन्द्र रामचन्द्र अमोलकचन्द्र श्रीपालपठनार्थं अङ्गीकृत श्रेयोऽर्थम् ।

इस लेखसे प्रतीत होता है कि मूलसघाम्नायी भट्टारक श्री रत्नभूषणके[1] आज्ञापालक श्री रामकीर्ति, पण्डित लछीराम, मन्नालाल, लक्ष्मीचन्द्र, रामचन्द्र, अमोलकचन्द्र और श्रीपालके पढनेके लिए इन सबके कल्याणकी भावनामे यह ग्रन्थ चुना गया। यह प्रति कब और कहाँ लिखी गयी इसका कोई निर्देश इसमें नही है, फिर भी इस प्रतिका उपयोग भट्टारक रत्नभूषणके आज्ञावर्ती शिष्योने किया है। इसलिए इस प्रतिका लेखन-काल विक्रमकी १७वी सदीके लगभग होना चाहिए।

२ 'ख' यह प्रति भी श्री ऐलक प० दि० जैन सरस्वती-भवन झालरापाटनकी है। प्रति कागजपर देवनागरी लिपिमें है। पत्र-सख्या ५३ है। प्रत्येक पत्रकी लम्बाई १० इंच और चौडाई ४½ इच है। प्रत्येक पत्रमें १८ पक्तियाँ है। यह प्रति उपलब्ध प्रतियोमें अधिक शुद्ध है। लिपि सुन्दर और सुवाच्य है। इस प्रतिका प्रारम्भ इस प्रकार होता है

---

१ भट्टारक रत्नभूषण काष्ठासघके भट्टारक थे और भट्टारक त्रिभुवनकीर्तिके पट्टपर प्रतिष्ठित हुए थे। वि० स० १६८१ में 'मुनिसुव्रतपुराण' के रचयिता ब्रह्मकृष्णदासने, जो हर्षनाम वणिक्का पुत्र और मगलका सहोदर था, रत्नभूषणको न्याय, नाटक और पुराण-साहित्यमे निपुण एव 'वादिकुजर'-जैसे विशेषणोसे उल्लेखित किया है। दे० मुनिसुव्रतपुराण। इसके सिवाय 'षोडशकारणव्रतोद्यापन' और 'कर्णामृतपुराण' के कर्त्ता केशवसेनसूरिने भी अपने इन दोनो ग्रन्थोमें भ० रत्नभूषणका उल्लेख किया है। दे० उक्त ग्रन्थ। षोडशकारणव्रतोद्यापनकी रचना स० १६९४ में हुई है और 'कर्णामृतपुराण' की रचना स० १६८८ में। इन उल्लेखोके आधारपर भ० रत्नभूषणका समय विक्रम स० की १७वी सदीके आगे नही जाता है।

भ० रत्नभूषणके समयसे सम्बन्धित सामग्री हमारे मित्र न्यायाचार्य प० दरबारीलालजी कोठियाने प० जुगलकिशोरजी मुख्तार और प० परमानन्दजी (सरसावा) से प्राप्त करके भेजनेकी कृपा की है, इसलिए हम इन सबके अनुगृहीत है।

श्री परमात्मने नम ॥ यद्मलपद

और अन्त इस प्रकार होता है

इति श्री जिनदेव विरचितो मदनपराजयः समाप्त ॥ सवत १९२९ कामध्ये कूलद्रह चैत्यालये नेमीचन्द्रेण लिखितम् श्री ॥

इस लेखसे प्रतीत होता है कि स० १९२९ में यह प्रति कूलद्रह चैत्यालयमे लिखी गयी है और इसके लेखक नेमीचन्द्र है।

३ 'ग' यह प्रति भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिटयूट पूनाकी है और इसका नम्बर OF १२८८४-८७ है। यह प्रति कागजपर देवनागरी लिपिमें है। पत्र-सख्या २५, पत्रकी लम्बाई १२ इच और चौडाई ६ इच है। प्रत्येक पत्रमें २३ पक्तियाँ है और प्रत्येक पक्तिमे लगभग ४०, ४१ अक्षर है। लिपि सुन्दर और सुवाच्य है। अथ मोहोऽब्रवीत्, तथा च, उक्त च आदि वाक्य और पद-समूह लाल स्याहीमे रखे गये है। प्रति अपूर्ण है। चतुर्थ परिच्छेदमे – रे मूढ, क्षत्रियाणा छलार्थ यहीतक है। इस प्रतिका प्रारम्भ इस प्रकार होता है

मदन पराजय ॥ ॐ नमो जिनाय नम ॥ यद्मलपद

४. 'घ' यह प्रति भी भाण्डारकर ओ० रि० इ० पूनाकी है। इसका नम्बर OF १८७५-७६ है। यह प्रति भी कागजपर लिखी हुई है और लिपि देवनागरी है। पत्र-सख्या २८ है। प्रत्येक पत्रकी लम्बाई १२½ इच है और चौडाई ५ इच। प्रत्येक पत्रमें २२ पक्तियाँ है और प्रत्येक पक्तिमे लगभग ५४, ५५, ५६ अक्षर। यह प्रति सम्पूर्ण है। लिपि सुन्दर नही है। इस प्रतिमे कही-कही कठिन शब्दोके एकाध टिप्पण भी ऊपर, नीचे और दायी-बायी ओर दिये हुए है। अशुद्ध और अनपेक्षित पदोको मिटानेके लिए वहेरेके रगका प्रयोग किया गया है। इस प्रतिका प्रारम्भ इस प्रकार होता है

॥ श्री जिनाय नम. ॥ अथ मदन पराजय ग्रंन्थ लिख्यते ॥ यद्मलपदपद्मं

और अन्त इस प्रकार होता है

इति मदनराजय समाप्तम् ॥ सवत् एकोनविंशतिशत अष्टादश कार्तिक कृष्णा अष्टम्यां आदित्यवासरे लिप्यीकृत स्वरूपचन्द्रेण बिलालागोत्रे सवाई जयनगरे ज्ञानावरणी कर्मक्षयार्थं ॥ श्री ॥

इस लेखसे स्पष्ट होता है कि इस प्रतिके लेखक बिलाला गोत्रीय स्वरूपचन्द्र है और उन्होने इसे वि० स० १९१८ कार्तिक कृष्णा अष्टमी, रविवारके दिन जयपुरमे लिपिबद्ध किया था।

इस प्रतिके लेखकने वि० स० १९१८ मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी रविवारके दिन मदनपराजयकी स्वय हिन्दी भाषा वचनिका भी लिखकर समाप्त की थी। यह भाषा वचनिका हमे श्री बाबू पन्नालालजी अग्रवाल दिल्लीके सौजन्यसे दिल्ली सेठका कूचा मन्दिरसे प्राप्त हो सकी। इसमे भाषा वचनिकाके कर्त्ता स्वरूपचन्द्रने प्रशस्तिमे विस्तारके साथ अपना परिचय दिया है, जिसे हम इस प्रतिके परिचय करानेके प्रसगमें लिखेंगे। हाँ, यहाँ हम यह सकेत अवश्य कर देना चाहते है कि इस सस्कृत मदनपराजयके लिपिकार स्वरूपचन्द्र और इसकी भाषा वचनिकाके कर्त्ता स्वरूपचन्द्र – दोनो एक ही थे। और इस प्रतिके लिखनेके ठीक डेढ माहके पश्चात् ही इन्होने अपनी भाषा वचनिका भी सम्पूर्ण की थी।

५. 'ङ' यह प्रति भट्टारक महेन्द्रकीर्ति शास्त्र-भण्डार आमेरकी है। यह प्रति भी कागजपर लिखी हुई है और लिपि देवनागरी है। यह प्रति सबसे अधिक प्राचीन और जीर्ण है। पत्र-सख्या ५३ है। प्रत्येक पत्रकी लम्बाई १० इच है और चौडाई ४½ इच। प्रत्येक पत्रपर २० पक्तियाँ है और प्रति पक्तिमे ३२, ३३ अक्षर। प्रतिके देखने और लिपिके बांचनेसे ही उसकी प्राचीनताके चिह्न स्पष्ट रीतिसे लक्षित होते है। यह प्रति अधिकतर शुद्ध है। इस प्रतिका प्रारम्भ इस प्रकार होता है-

स्वस्ति श्री ॥ यद्मलपद "

और अन्त निम्न प्रकार होता है

विक्रमनृपते राज्ये पञ्चदशशतान्विते । तू(त्रि)सप्ततिभिः सहितेऽस्मिन् टुकपुरे राज्ये ॥

(श्री सूर्यसेन सन्नृपतेः)

श्रीमूलसंघे श्रीनन्द्याम्नाये गच्छे गिरः शुभे' (भे) ? श्रीमज्जिनेन्द्रसूरेस्तु प्रभाचन्द्रोऽस्ति सत्पदे ॥२॥

तदाम्नायेऽन्वये चास्ति खडिल्लावासवासिनाम् । '

कुले श्रीपापरवनाख्ये नरसिंह्नोऽभिध सुदृक् ॥ तद्भार्या माणिका सती श्राद्धगुणैः शुचि' ॥३॥

तत्पुत्र शुद्धशीलोऽस्ति होलानाम विलक्षणः । तद्भार्या वाणभूनाम्नी व्रतशीलगुणान्विता ॥४॥

वालापर्वतभ्रातृभ्यां सहितेन सुदृष्टिना । तेन कर्मक्षयार्थं हि न्यायार्जितधनै' शुभैः ॥५॥

शास्त्र लिखाप्य (?) पात्राय दत्त सद्व्रतधारिणे । जीयाच्चन्द्रतार च सत्सुखावाप्तिकारणम् ॥६॥

कुमताहु सुपुत्राभ्यां जाताभ्यां धान्यया स्त्रिया । वालाख्य सहित पातु श्रीपार्श्वस्तीर्थनायक' ॥७॥

ज्ञानवान् ज्ञानदानेन निर्भयोऽभयदानतः । अन्नदानात् सुखी नित्यं निर्व्याधिर्भेषजाद्भवेत् ॥८॥

इस प्रशस्तिसे प्रतीत होता है कि यह प्रति टुकपुर राज्य (वर्तमान टोक स्टेट[1]) मे सूर्यसेन नरेशके राज्यकालमे वि० स० १५७३ मे लिखी गयी। और मूल सघ कुन्दकुन्दाचार्यके आम्नाय तथा सरस्वतीगच्छ-में जिनेन्द्रसूरिके पट्टपर प्रभाचन्द्र भट्टारक हुए, जिनके आम्नायवर्ती नरसिंह्न (सिंह) के सुपुत्र होलाने यह प्रति लिखकर किसी व्रती पात्रके लिए समर्पित की। नरसिंह खडिल्लावासके निवासी पापल्य कुलके थे। इनकी पत्नीका नाम माणिका था। दोनोके होला नामका पुत्र था, जिसकी पत्नीका नाम वाणभू था। होलाके वाला और पर्वत नामके दो भाई थे और इस प्रतिके लिखानेमे तथा व्रतीके लिए समर्पण करनेमें इन दोनो भाइयोका भी सहयोग था। इस लेखमे यह भी प्रतीत होता है कि वालाकी पत्नीका नाम धान्या था और इसके कुम्भ और ताहु नामके दो सुपुत्र भी हो गये थे।

इस प्रतिमे कुछ ऐसे पद्य है जो अन्य किसी भी प्रतिमे नही पाये जाते। उदाहरणके लिए देखिए प० १ श्लो० १५, प० १ श्लो० ३२, प० १ श्लो० १ प० २ श्लो० १४, प० २ श्लो० २२, प० २ श्लो० ४२।

---

[1] टोक स्टेटकी अतीत और वर्तमान ऐतिहासिक परिस्थितिको समझानेके लिए हमने सिरोज निवासी श्रीमान् दानवीर सरदारीमलजी जैन, एम० एल० सी० (टोक स्टेट) को एक पत्र लिखा था, तद-नुसार उन्होने हमारे पास निम्नलिखित जानकारी भेजनेकी कृपा की है, एतदर्थ हम उनके अनु-गृहीत है। विवरण निम्न प्रकार है

टोक वि० स० १००३ माघ वदी १३ अभिजित नक्षत्रमें टोकडेके नामसे वसाया गया था। राजाधिराज टोनल सावजीकी ओरसे रामसिहजी खोजा-द्वारा यह वसाया गया था। वि०स० १२१८ मे टोक, टोडे इलाके जयपुरसे ताल्लुक रखता था। स० ११५९ मे पालभाव हुए और स० १२२४ मे इसपर साऊजी व वापूजीने कब्जा किया। फिर नाभाजी हुए और स० १३५६ मे महेशदासने अधिकार किया। स० १५७५ में रावरतन काविज हुए। रावरतनका पुत्र सूर्यसेन था।

टोकमें आजकल ६ जैन मन्दिर और ६ जिन चैत्यालय हैं। सबसे प्राचीन मन्दिर चौधरियो-का है, जो सात सौ वर्ष पुराना है। श्याम महाराजका मन्दिर ५५० वर्षका पुराना है और एक मन्दिर ३५० वर्ष प्राचीन है। वर्तमानमे जैन जनसख्या ५५० के लगभग है। एक प्राचीन शास्त्र-भण्डार भी विद्यमान है, परन्तु वह व्यवस्थित नही है।

इस विवरणमे उल्लिखित रावरतनका पुत्र वही सूर्यसेन नरेश है, जिसके राज्यकालमे 'मदन-पराजय'की प्रस्तुत प्रतिका लेखन हुआ है।

६. 'च' यह प्रति श्री जैन सिद्धान्त-भवन आराकी है। यह प्रति भी कागजपर देवनागरी लिपिमें है। पत्र-सख्या ३५ है। प्रत्येक पत्रकी लम्बाई १३ इच है और चौडाई ६½ इच। प्रत्येक पत्रपर २० पक्तियाँ है और प्रत्येक पक्तिमे लगभग ५३, ५४ अक्षर है। लिपि सुन्दर तथा सुवाच्य है। भाषा अशुद्ध है और कही-कही वाक्यके वाक्य तथा श्लोक तक गायब है। इस प्रतिका प्रारम्भ इस प्रकार होता है

॥ श्री सरस्वत्यै नमः ॥ यद्मलपद्पद्म ''

और अन्त इस प्रकार होता है

इति श्री मदन पराजय समाप्त। सं० १९८७ मिती आषाढ़ शुक्ला १५ गुरुवासरे तद्दिने समाप्तम् ॥इति॥

इस लेखसे स्पष्ट होता है कि यह प्रति वि० स० १९८७ आषाढ शुक्ला १५ गुरुवारके दिन लिपिबद्ध की गयी है और फलत यह सबसे अर्वाचीन प्रति है।

७ 'छ' 'जैन मन्दिर सेठका कूचा देहलीके शास्त्रभण्डारकी यह प्रति है। यह प्रति भी कागजपर देवनागरी लिपिमे है। पत्र-सख्या ६३ है। प्रत्येक पत्रकी लम्बाई १३½ इच और चौडाई १० इच है। प्रत्येक पत्रमे २८ पक्तियाँ है और प्रति पक्तिमें ४६, ४७ अक्षर है। यह प्रति सस्कृत मदनपराजयकी हिन्दी भाषा वचनिकाके रूपमे है। इसमें सस्कृत मदनपराजयके सिर्फ श्लोक ही उद्धृत है, गद्य भाग नही। परन्तु वचनिका दोनोकी है। सस्कृतके श्लोक बिलकुल गलत लिखे है, लेकिन श्लोकोके पहले छन्दोका नामोल्लेखन केवल इसी प्रतिकी विशेषता है। लिपि सुन्दर तथा सुवाच्य है। वचनिका ढूढारी भाषामे है और खूब विस्तार-के साथ लिखी गयी है। इस प्रतिका प्रारम्भ इस प्रकारसे होता है

॥ ओं नम सिद्धेभ्यः ॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥ अथ श्री मदनपराजय ग्रन्थकी वाचनिका लिख्यते ॥ दोहा ॥ चौबीसूं वृषभादि जिन. सिद्ध मुनी सिर नाय। मदन पराजय ग्रन्थकी भाषा करू मन लाय ॥ यद्मलपद्

और अन्त इस प्रकार होता है

आगे वचनिका ग्रन्थवार्ताका सम्बन्ध लिखते हैं।

॥ दोहा ॥

देश ढूढाहड के विषें, जयपुर नगर महान। मदिर तहाँ बहु जिनतनें, अति मनोग सिव दान ॥१॥
राम स्वय भूपति तहाँ, राज करै गुणवान। ताके राज प्रतापतें, देश सुखी सुमहान ॥२॥
नगर माहीं जैन बहुत सुख सू वसत महान। चतुर्थ काल सम काल तहाँ, पूर्ण होम अभिराम ॥३॥
तामें न्याति सुगोत्र करि, शोभित जैनी लोग। श्रावक कुल के गोत है, चोरी जुत थोक ॥४॥
तामें गोत्र जु है भलौ, बिलाला नाम प्रसिद्ध। ताते चिमन राम सुभ, है गुणवान सुरिद्ध ॥५॥
ताके सूरतराम अरु, रूपचन्द अभिराम। चम्पाराम सु तृतीय सुत, सरूपचन्द चतु तास ॥६॥
सरूपचद सुभ संग तें, पाय ग्यान को लेश। जैन ग्रन्थ अवगाहना, करी जु कछु लवलेश ॥७॥
जिनवर भक्ति प्रभाव तैं, हरष धारि उर मांहि। मदन पराजय ग्रन्थ कूं, लिख्यो वचनिका ताहि ॥८॥
भव्य जीव या ग्रन्थ कू, बाचै पढ़ै सदीव। मोक्ष मार्ग कूं पाय कर, भ्रमे तहीं जगतीव ॥९॥
तुच्छ बुद्धि मो जान कर, चूक लिखी या मांहि। कृपाक्षमा उर धारकै, शुद्ध करो सुखदाहि ॥१०॥
सवत् सत उन्नीस अरु। अधिक अठारा मांहि। मार्गशीर्ष सुदि सप्तमीं, दीतवार सुखदाहि ॥११॥
ता दिन ये पूरण कर्यो, देस वचनिका मांहि। सकल संघ मगल करो, ऋद्धि वृद्धि सुखदाहि ॥१२॥
इति श्रीमदनपराजय ग्रन्थ की भाषा वचनिका समाप्त ॥ ❀ शुभं ❀

॥ दोहा ॥

जल तैलादि लेप की परख्या कर जो भीत। हाथ न दीजो मूढ के तथा जान अविनीत ॥१॥
मिती वैशाख सुदी ८ सं० विक्रम. १९८४ लिखित जयपुरमध्ये।

इस विस्तृत प्रशस्तिसे प्रतीत होता है कि सस्कृत मदनपराजयकी भाषा वचनिका वि० स० १९१८ मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी रविवारके दिन सम्पूर्ण हुई और इसके कर्त्ता बिलाला गोत्रीय स्वरूपचन्द्र है। यह

भाषा वचनिका जयपुरमे उस समय लिखी जब वहाँ रामस्यघ (सिंह) राजाका राज्य था। ग्रन्थकर्त्ताके पिता-का नाम चिमनराम था और अपने चार भाइयोमें-से यह सबसे छोटे भाई थे। ज्येष्ठ भाइयोके नाम क्रमसे सूरतराम, रूपचन्द और चम्पाराम थे।

प्रस्तुत भाषा वचनिकावाली प्रतिका लेखन-काल वि० स० १९८४ वैशाख वदी ८ है। यह जयपुरमे लिखी गयी है। हमने इस प्रतिका उपयोग सिर्फ हिन्दी-अनुवाद करते समय कही-कही किया है।

इस प्रकार सम्पादनमें उपयुक्त हुई इन प्रतियोमे लेखन-कालकी दृष्टिसे 'ड' प्रति ही सबसे अधिक प्राचीन ठहरती है। परन्तु भाषा-शुद्धिकी दृष्टिसे 'ख' प्रतिका नम्बर ही सर्वोच्च है। तुलना करनेपर ज्ञात होता है कि 'ख' और 'ड' प्रतिमें बहुत अधिक समानता है। कुछ इस प्रकारके पद्य भी उपलब्ध होते है, जो इन दोनो प्रतियोके सिवाय अन्य किसी तीसरी प्रतिमे दृष्टिगोचर नही हुए है। उदाहरणके लिए देखिए, पृ० स० १३ पा० टि० स० २, पृ० स० १७ पा० टि० स० ४, पृ० स० ६३ पा० टि० स० १, पृ० स० ६३ पा० टि० स० ५, पृ० स० ६४, पा० टि० स० १ पृ० स० ७१ पा० टि० स० १, पृ० स० ८५ पा० टि० स० ६, पृ० स० ११२ पा० टि० स० २ आदि।

मूल ग्रन्थका संयोजन

१ इस प्रकार इन छह प्रतियोके आधारसे इस ग्रन्थका सम्पादन किया गया है। ग्रन्थ अपने मूल रूपमें सबसे पहले प्रकाशित हो रहा है। उपर्युक्त प्रतियोमें-से एक भी ऐसी न निकली जो निर्दोष हो और जिसे हम आदर्श प्रति मान सकते। हमने इन सब प्रतियोको सामने रखकर मूल ग्रन्थकी संयोजना करनेका प्रयत्न किया है। हमें सम्पादनमें 'ख' और 'ड' प्रतियाँ अधिक सहायक सिद्ध हुई है और इन प्रतियोमें जो हमे विशिष्ट और विशुद्ध पाठान्तर मिले उन्होने हमारे श्रमको हलका करनेमें काफी सहायता पहुँचायी है। फिर भी मूल ग्रन्थमें इस प्रकारकी कतिपय त्रुटियाँ अन्त तक बनी रही जो इन प्रतियोकी सहायताके बावजूद भी दूर न की जा सकी और जिन्हें दूर करनेका सम्पादकने भी एक तुच्छ प्रयत्न किया है। जो पाठ एक या एकाधिक प्रतियोमें छूट गया था उसे अन्य प्रतियोसे ले लिया है और 'ख०' तथा 'ड०' जैसी शुद्ध प्रतियोके साथ भी यह क्रम बरता गया। इस प्रसगमें शुद्ध पाठ हमने मूलमे रखा है और उसकी प्राप्तिकी स्रोत-मूलक प्रतिका निर्देश पादटिप्पणमे कर दिया है।

२ उपलब्ध प्रतियोमें किसी एकके भी आदर्श प्रति न होनेसे जो पद्य और पाठान्तर केवल 'ख' प्रतिमें और केवल 'ड' प्रतिमे पाये गये उन्हे भी मूलमें सम्मिलित कर लिया। यद्यपि (पृ० ११) हमने इस प्रकारके एक पद्यको पादटिप्पणमे प्रकीर्णक पद्यके रूपमे उद्धृत किया है, किन्तु आगे चलकर हमने कही भी इस पद्धतिको प्रश्रय नही दिया।

३ उपलब्ध प्रतियोके उपयोग करनेपर भी जो अशुद्ध पाठ रह गये उनके स्थानपर सशोधित शुद्ध और सम्भव पाठ (   ) इस प्रकारके गोल ब्रेकिटमे सुझाये गये है। ऐसा करते समय कही-कही पद्यके एकाध चरणमे उलट-फेर भी किया गया है (दे०, प० ४ पद्य स० २१ और प० ४ पद्य स० ४९) छन्दोभगके दोषको दूर करनेके लिए कुछ शब्द भी जोडे है और अर्थसगतिकी दृष्टिसे कुछ मूल शब्दोको भी परिवर्तित रूपमें सुझाया है (दे०, प० ४ पद्य स० ४८ और प० ४ पद्य स० ७५) परन्तु यह करते समय हमारी दृष्टि ग्रन्थको शुद्ध और सगत रूपमें उपस्थित करनेकी ओर ही रही है। कही-कही भाषाकी दृष्टिसे शुद्ध पाठ सुझानेके लिए [   ] इस प्रकारके ब्रेकिटका भी उपयोग किया गया है, परन्तु अन्य गोल ब्रेकिटमे ही सब प्रकारके सशोधन सुझाये गये है।

४ जिन त्रुटित पाठोकी पूर्ति उपलब्ध प्रतियोकी सहायतासे भी न हो सकी उनके स्थानमे ''इस प्रकारके बिन्दु रखकर उन्हे वैसा ही छोड दिया है।

५. कही-कही अर्थशून्य पाठान्तर भी पादटिप्पणमे दिये गये है, जिससे अन्य शुद्ध पाठान्तरोका भी अनुमान किया जा सके।

हिन्दी अनुवाद

मदनपराजयका सबसे पहला हिन्दी अनुवाद जयपुर निवासी विलालागोत्रीय स्वरूपचन्द्रने वि० स० १९१८ मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमीके दिन सम्पूर्ण किया। परन्तु एक तो यह ढूढारी भाषामे हुआ और दूसरे वचनिकाकी पद्धतिपर वहुत विस्तारके साथ। तीसरे अनुवादकर्त्ताके सामने मूल ग्रन्थ भी सर्वांग और सम्पूर्ण रूपमे उपस्थित न था। इसलिए इस ग्रन्थके एक मूलानुगामी अनुवादकी, जो आधुनिक हिन्दीमे किया जाता, वहुत आवश्यकता रही।

इस आवश्यकताकी पूर्ति स्व० प० गजाधरलालजी शास्त्रीने की जो वहुत वर्ष पहले कलकत्ताकी जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी सस्थासे 'मकरध्वजपराजय' के नामसे प्रकट हो चुका है। अनुवादमें कही-कही सस्कृत पद्योका हिन्दी पद्यानुवाद किया गया है और सम्पूर्ण अनुवाद अधिकाशमे नाटकीय पद्धतिपर हुआ है। परन्तु यह अनुवाद एक भाषानुवाद है और वह भी एक ही प्रतिके आधारसे किया गया जान पडता है।

ऐसी स्थितिमे एक इस प्रकारके हिन्दी अनुवादकी आवश्यकता थी जो मूलानुगामी हो, सम्पूर्ण हो और प्रामाणिक हो। हमने अपना प्रयत्न इसी दिशामे किया है। हमारी दृष्टि अनुवादको मूलानुगामी रखने-की ओर ही अधिक रही है। इसका यह अर्थ नही कि हम सम्पूर्णतया शब्द अर्थसे ही वँधे रहें। हमने शब्दानु-वादको भावानुवादके प्रवाहमे वहानेका प्रयत्न किया है और इस बातका भी ध्यान रखा है कि मूल कथाके आधारमे कही भी रस-भग न हो। साथ ही हमारा अनुवाद छह प्रतियोके आधारपर सम्पादित और सशोधित किये गये मदनपराजयका है, इसलिए इस अनुवादकी अविकलता और उपयोगिताके सम्बन्धमे विज्ञ पाठक स्वय ही विचार कर सकते है।

अनुवादमें हमने मूल ग्रन्थकारके अनुसार नाटकीय शैली नही अपनायी है और न ही सस्कृत पद्योका हिन्दी पद्यानुवाद किया है। अनुवादको हमने आख्यानकी शैलीमे ही रखा है और उसे यथाशक्ति सरल तथा रोचक वनानेका प्रयत्न किया है, यद्यपि मूल भाषाके रूपकोके जालमे जकड़ी रहनेके कारण कही अनुवादमे भी अपरिहार्य दुरूहता आ गयी है।

टिप्पण

ग्रन्थ-सम्पादन-पद्धतिमे टिप्पणोका भी एक अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। ग्रन्थगत विभिन्न तत्त्वो और प्रश्नोपर टिप्पणो-द्वारा यथेष्ट प्रकाश डाला जाता है और उनसे मूल ग्रन्थको सरल वनानेमे काफी सहायता मिलती है। मदनपराजयके टिप्पण उक्त दृष्टिको ध्यानमे रखते हुए ही सगृहीत किये है। इस ग्रन्थमे ऐसे टिप्पण चार प्रकारके है। एक वे है, जिनमें पाठान्तरोका सकलन हुआ है। दूसरे वे है, जिनमे ग्रन्थोके सक्षिप्त नामोल्लेखपूर्वक अवतरणोका निर्देश किया गया है। तीसरे वे है, जिनमे शब्द और अर्थ दोनो दृष्टियोसे कतिपय स्थलोमे सन्तुलन किया गया है और विपम स्थलोका रहस्य उद्घाटित किया गया है। चौथे वे टिप्पण है, जिनमे भाषा, छन्द और कोषकी दृष्टिसे कुछ विचार प्रस्तुत किये गये है।

२. भारतीय आख्यान साहित्य

विश्व-साहित्यमे भारतीय आख्यान-साहित्यका एक वडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह भारतीय आख्यान-साहित्य है, जिसमे मानव-जीवनके प्रत्येक पहलूका स्पर्श किया गया है, जीवनके प्रत्येक रूपका सरस और विशद विवेचन है और उसका सम्पूर्ण चित्र विविध परिस्थिति-रगोसे अनुरजित होकर उद्दीप्त हो रहा है। यह भारतीय आख्यान-साहित्य है, जिसमे मानवके पहले नेत्रोन्मीलनसे लेकर उसकी महासमाधि तकके नाना व्यापार जिनमे उसके हर्ष-विषाद, सुख-दुःख, हास्य-रुदन, मिलन-विछोह, चिन्ता-उत्कण्ठा और आसक्ति-अनासक्ति आदि सब कुछ सम्मिलित है — अपने प्रत्येक रूपसे विश्वके वैचित्र्यका अनुभव कर रहे है और यह भारतीय आख्यान-साहित्य है, जिसमे मानव-जीवनके उत्थान-पतन तथा उत्क्रान्ति और सक्रान्ति-सम्बन्धी गौरव-गाथाएँ मानवके मस्तिष्कमे अनेक भाँतिकी अनुभूतियाँ स्पन्दित किया करती है।

प्रस्तुत आख्यान-साहित्यमें कहीं ऐहिक समस्याओंकी चिन्ताकी अभिव्यंजना है तो कहीं पारलौकिक समस्याओंकी। कहीं अर्थनीतिका निदर्शन है तो कहीं राजनीतिका। कहीं धार्मिक परिस्थितिका चित्रण है तो कहीं सामाजिक परिस्थितिका। कहीं शिल्प-कलाके सुन्दर चित्र है तो कहीं जनताकी व्यापार-कुशलताके। कहीं उत्तुङ्ग गिरि, नदी-नद आदि भूवृत्तका लेखा है तो कहीं अतीतके जल और स्थल-मार्गोके संकेत। और यह वह भारतीय आख्यान-साहित्य है जिसकी धर्मकथाएँ, नीतिकथाएँ, लोककथाएँ और रूपकात्मक आख्यान कहीं जनताका मनोरंजन करते हैं, कहीं उसके हृदयको उदार तथा विशुद्ध बनाते, कहीं बुद्धिमें स्फूर्तिका संचार करते हैं और कहीं उनके चिर-कल्याण – मोक्षकी प्राप्तिके लिए उसे उत्प्रेरित किया करते हैं। कुल मिलाकर एक यही इस प्रकारका साहित्य है जिसमें जीवनके सम्पूर्ण स्वरूपकी अभिव्यंजना विद्यमान है।

प्रस्तुत आख्यान-साहित्य चार भागोंमें विभक्त किया जा सकता है :

१ धर्मकथा-साहित्य (Religious Tale), २. नीतिकथा साहित्य (Didactic Tale)

३ लोककथा-साहित्य (Popular Tale) ४. रूपकात्मक-साहित्य (Allegorical Literatur)

धर्मकथा साहित्य (Religious Tale)

"त एव कवयो लोके त एव च विचक्षणा। येषां धर्मकथाङ्गत्वं भारती प्रतिपद्यते॥
धर्मानुबन्धिनी या स्यात् कविता सैव शस्यते। शेषा पापास्रवायैव सुप्रयुक्तापि जायते।"

–भगवज्जिनसेनाचार्य

भारतकी आत्मामें धर्म इतना घुला-मिला है कि यदि धर्मको छोड़कर भारतका चित्रांकन किया जाये तो उसे कोई भी सजीव और सम्पूर्ण नहीं कहेगा। यह एक भारत है, जहाँ अनादिकालसे विभिन्न धर्म-परम्पराएँ और उनकी साहित्यिक रचनाएँ एक साथ फलती-फूलती आ रही है और ये भारतीय धर्मोंके ही बीजांकुर हैं जिनसे रस लेकर मानव अपनी शाश्वतिक शान्तिकी साधनामें सफल हो सका है।

भारतमें वैदिक, बौद्ध और जैन मुख्यतया ये ही तीन धर्म हैं और प्राय सम्पूर्ण भारतीय आख्यान-साहित्य इन तीन धर्मोके तात्त्विक सिद्धान्तोंसे अनुप्राणित और अनुरंजित है। जिस कथा-साहित्यपर इन धर्मोकी छाप पड़ी हुई है और जो साहित्य इन धर्मोके सिद्धान्तों और संस्कृतिमें ओतप्रोत है, धर्मकथा-साहित्यसे हमारा यही आशय है।

इस प्रकार धर्मकथा-साहित्य तीन विभागोंमें विभक्त किया जा सकता है (क) वैदिक धर्मकथा-साहित्य, (ख) बौद्ध धर्मकथा-साहित्य (ग) जैन धर्मकथा-साहित्य।

(क) वैदिक धर्मकथा-साहित्य

भारतीय आख्यान-साहित्यके दर्शन सर्वप्रथम हमें वैदिक धर्मकथा-साहित्यमें मिलते हैं। ऋग्वेदमें युद्धरत इन्द्रका आख्यान है। वह सोम पीकर मरुतोंको साथ लेकर वृत्र या अहिपर आक्रमण करता है। जब घनघोर युद्ध होता है, तब पृथ्वी और आकाश काँपने लगते हैं। अन्तमें वज्र-द्वारा वृत्रके खण्ड-खण्ड होते हैं और रुका हुआ पानी मुक्त की गयी गायोंके समान दौड़ निकलता है। इस युद्धमें मरुत सदैव इन्द्रके साथ रहते है और अग्नि, सोम तथा विष्णु भी इन्द्रकी बहुत सहायता करते हैं। जब अहिका विनाश किया जाता है तब प्रकाशका प्रादुर्भाव होता है।

अश्विनका आख्यान भी सुप्रसिद्ध है। इसमें अश्विनने अन्धकारको दूर कर दुष्ट राक्षसोंको भगाया है। इन्होंने भुज्युके जहाजको समुद्रमें डूबनेसे बचाया था तथा और भी इस प्रकारके अनेक परोपकारके कार्य किये थे।

ऋग्वेदमें पुरूरवस् और उर्वशीकी प्रेम-गाथाका भी विशद और सुन्दर वर्णन है।

ब्राह्मण ग्रन्थोंमें भी कुछ दन्तकथाओं और काल्पनिक आख्यानोंका उल्लेख मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण (७।३) में वर्णित शुन शेप आख्यान बहुत प्रसिद्ध है। इक्ष्वाकुवंशज हरिश्चन्द्रके कोई पुत्र नहीं था। उसने प्रतिज्ञा की कि मुझे पुत्र प्राप्त हुआ तो वह उसे वरुणको यज्ञ-बलि चढायेगा। उसे रोहित नामक पुत्र उत्पन्न

हुआ, किन्तु जवतक वह वडा नही हुआ, हरिश्चन्द्रने वरुणके लिए यज्ञ नही किया। जव वह यज्ञ करनेके लिए तैयार हुआ तो उसका पुत्र जगलमें भाग गया और अजीगर्त नामक भूखे ब्राह्मणके मझले पुत्र शुनःशेपको खरीद अपने साथ लेकर घर लौटा। उधर हरिश्चन्द्रने रोहितके वदले शुन शेपको वलिरूपमे स्वीकार कर लेनेके लिए वरुणको राजी कर लिया। शुनःशेप यज्ञस्तम्भसे बाँधा गया, परन्तु वह बलिके लिए तैयार न था। उसने वरुणकी स्तुतिमें मन्त्रोका उच्चारण करना प्रारम्भ कर दिया। धीरे-धीरे उसके वन्धन शिथिल हो गये और उसे मुक्ति मिल गयी।

शतपथ ब्राह्मणमें पुरूरवस् और उर्वशीकी प्रेम-गाथाका चित्रण है और भरत दौष्यन्ति तथा शकुन्तला-का भी उल्लेख मिलता है। इसमें महाप्रलयकी उस कथाका भी वर्णन है, जिसमें मनु मत्स्यके आदेशानुसार एक नाव वनाता है और उसे उस मत्स्यसे वाँधकर अपनी रक्षा कराता है और इस प्रकार पुन मानव-सृष्टिके उद्योगमें सलग्न होता है।

उपनिषदोमें भी आख्यान-साहित्यकी झाँकी दृष्टिगोचर होती है। वृहदारण्यक उपनिषद्में याज्ञवल्क्यके जिज्ञासुओके साथ किये गये दार्शनिक वाद-विवादोका तथा याज्ञवल्क्य और जनकके सवादका सुन्दर चित्रण है। *इसी प्रकार याज्ञवल्क्य और उनकी पत्नी मैत्रेयीकी दार्शनिक बातचीत भी बहुत रोचक है*[1]।

जव हमारा ध्यान उत्तरवैदिक आख्यान-साहित्यकी ओर जाता है तो महाभारत और रामायण अपनी अद्भुत विशेषताओके साथ उपस्थित हो जाते हैं। महाभारतका मुख्य उद्देश्य भरतवशजोके आपसी युद्धका वर्णन करना है। इसमें कौरवो और पाण्डवोके अठारह दिनका युद्ध-वर्णन एक लाख श्लोकोमें किया गया है। परीक्षित राजाके सर्पदशसे मर जानेपर उसके पुत्र सर्पोके लिए एक वडा यज्ञ करवाता है। उस अवसरपर वैशम्पायन यह कथा सुनाते हैं। वैशम्पायनने यह कथा व्यासजीसे सुनी थी। मुख्य कथाके अतिरिक्त महा-भारतमे अन्य कितने ही आख्यान पाये जाते है। इसमें-से शकुन्तला-आख्यान, मत्स्योपाख्यान, रामाख्यान, गगाव-तरण, ऋष्यश्रृंगकथा, राजा शिवि और उसके पुत्र उशीनर आदिकी कथा, सावित्रीकी कथा, और जलोपाख्यान आदि अनेक आख्यान हैं। इसके सिवाय १००० श्लोकोमें कृष्णकी सम्पूर्ण जीवनी भी गर्भित की गयी है, जिसे हरिवश कहते है।

उत्तरवैदिक आख्यान-साहित्यमे रामायणका वडा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि इसमें महाभारत-जैसे आख्यानोकी राशि नही है, फिर भी सस्कृत साहित्यका यह 'आदि काव्य' माना गया है। इसमें आदि कवि वाल्मीकिने जिस रामकथाका चित्रण किया है, उससे भारतका प्रत्येक आवाल वृद्ध परिचित है। हिन्दू समाजमे दशरथ, राम, भरत और सीता आदि पुत्रप्रेम, पितृप्रेम, भ्रातृप्रेम और पतिप्रेमके आदर्श माने जाते है। मुख्यकथाके अतिरिक्त रामायणमें बहुत-सी दन्तकथाएँ भी हैं। रावणकी ब्रह्मासे वरप्राप्ति, विष्णुका रामके रूपमे अवतार होना, गगावतरण, विश्वामित्र और वशिष्ठका युद्ध आदि आख्यान इसमें मनोरजक ढगसे चित्रित किये गये हैं।

महाभारत और रामायण ही ऐसे दो महान् आख्यान ग्रन्थ हैं, जिन्हें आधार-भूमि बनाकर ही उत्तरवर्ती आख्यान-साहित्यका उत्तुङ्ग प्रासाद निर्मित किया गया है। मालतीमाधव और मुद्राराक्षस-जैसी दो-चार स्वतन्त्र रचनाएँ इसका अपवाद हो सकती है, परन्तु अन्य सम्पूर्ण साहित्य इन दो महान् रचनाओके प्रभावसे अछूता नही रहा। जहाँ किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषध-जैसे महाकाव्योकी पृष्ठभूमि महाभारतकी धारासे अनुप्राणित है वहाँ रघुवश, भट्टि, रावनवहो और जानकीहरण-जैसे महाकाव्योकी आधारभूमि रामायण-की ही रसवन्ती धारासे अभिषिंचित हो रही है।

(ख) बौद्ध धर्मकथा-साहित्य

भारतीय आख्यान-साहित्यमें बौद्ध धर्मकथा-साहित्य भी एक अपना विशिष्ट स्थान रखता है। बौद्ध साहित्यमें त्रिपिटक साहित्यका प्रमुख स्थान है। त्रिपिटकके सूत्रोको समझनेके लिए और उनके अर्थोको अधिक

---

१. भारतीय सस्कृति, पृ० ११५।

स्पष्ट करनेके लिए उनके साथ कथाएँ कहनेकी परिपाटी रही होगी और वे पीछे लेख-बद्ध होकर अट्ठकथाओंके रूपमे आज भी उपलब्ध हैं। अट्ठकथाका मतलब है अर्थसहित कथा। इन अट्ठकथाओंमे अनेक आख्यान भरे हुए हैं। उपलब्ध अट्ठकथाएँ इस प्रकार हैं[1] -

१ समन्तपासादिका विनय अट्ठकथा।
२ सुमंगलविलासिनी दीघनिकाय अट्ठकथा।
३ पपंचसूदिनी मज्झिमनिकाय अट्ठकथा।
४. सारत्थपकासिनी संयुत्तनिकाय अट्ठकथा।
५ मनोरथपूरिणी अंगुत्तरनिकाय अट्ठकथा।
६ खुद्दनिकायके ग्रन्थोंपर भिन्न-भिन्न नामोंसे अट्ठकथाएँ
७ अट्ठसालिनी धम्मसंगणिपर अट्ठकथा।
८ सम्मोहविनोदनी . विभंग अट्ठकथा।
९. पंचप्पकरण अट्ठकथा, जिसमे निम्नलिखित पाँच अट्ठकथाएँ हैं
१. धातुकथाप्पकरण अट्ठकथा, २. पुग्गलपञ्ञत्तिप्पकरण अट्ठकथा, ३. कथावत्थु अट्ठकथा, ४ यमकप्पकरण अट्ठकथा, ५. पट्ठानकप्पकरण अट्ठकथा।

इसके सिवाय विनय पिटकके खन्दकोंमे, जहाँ विभिन्न नियमोपनियम और कर्त्तव्योंका निर्देश हुआ है, अनेक आख्यानोंका विधान पाया जाता है। चुल्लवग्गमे भी अनेक संवादात्मक और बुद्धचरितसम्बन्धी कथाएँ हैं। दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय और सुत्तपिटकमे भी गौतम बुद्धसे सम्बन्ध रखनेवाले बहुत-से आख्यान हैं। इसी प्रकार विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरीगाथा और थेरगाथामे भी अनेक बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणीसम्बन्धी जीवन-गाथाएँ हैं। और जातकका कथा-साहित्य तो सर्वप्रसिद्ध है। इसमें बोधिसत्त्वके पाँच सौ सैंतालीस जन्मोंकी जीवन-गाथाएँ ग्रथित हैं।

निःसन्देह जातक-साहित्य बहुत विशाल, उपदेशपूर्ण और मनोरंजक साहित्य है और उत्तरवर्ती आख्यान-साहित्य जहाँ कहीं इस साहित्यसे प्रभावित हुआ दिखलाई देता है। जातक-साहित्यके सम्बन्धमे भदन्त आनन्द कौसल्यायनने लिखा है[2] -

"इन जातक कथाओंके प्रसार और प्रभावकी कथा अनन्त प्रतीत होती है। . इस प्रकार जातक-वाङ्मय चाहे उसे प्राचीनताकी दृष्टिसे देखें, चाहे विस्तारकी और चाहे उपदेशपरक तथा मनोरंजक होनेकी दृष्टिसे, वह संसारमें अपना सानी नहीं रखता। जातक कथाओंके विषयोंके बारेमें थोड़ेमे कुछ भी कह सकना कठिन है। मानव-जीवनका कोई भी पहलू इन कथाओंमे अछूता बचा प्रतीत नहीं होता। यही वजह है कि पिछले दो सहस्र वर्षके इतिहासमें यह जातक-कथाएँ मनुष्य-समाजपर अनेक रूपमे अपनी छाप छोड़नेमे समर्थ हुई हैं।"

(ग) जैन धर्मकथा-साहित्य

जैन धर्मकथा-साहित्य दो धाराओंमे विभक्त किया जा सकता है – एक श्वेताम्बर और दूसरी दिगम्बर। इन दोनों ही परम्पराओंके वाङ्मयमे जो आख्यान-साहित्यका विपुल भण्डार सन्निहित है वह बहुत ही मूल्यवान् और महत्त्वका है।

जहाँतक श्वेताम्बरपरम्परा और उसके सामान्य उपलब्ध अंगसाहित्यका सम्बन्ध है, उसमें अनेक सजीव, मनोरंजक और उपदेशपूर्ण आख्यानोंका उल्लेख है।

आचारांगमें भगवान् महावीरकी जीवनगाथा है और कल्पसूत्रमे तीर्थंकरोंकी जीवनियोंका नामावली.के

१ जातक (प्रथम खण्ड) की वस्तुकथा, पृ० सं० ६, ७ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
२ जातक (प्रथम खण्ड) की वस्तुकथा, पृ० ३०।

रूपमें उल्लेख है। नायाधम्मकहाओके प्रथम श्रुतस्कन्धके उन्नीस अध्ययनोमें और दूसरे श्रुतस्कन्धके दस वर्गोमे अनेक मनोहर और उपदेशपूर्ण कथाओका चित्रण है। भगवतीके सवादोमें भी शिष्योके प्रश्नोत्तरके रूपमे वीर जीवनकी झाँकी विद्यमान है। सूत्रकृताग सूत्रके छठे और सातवें अध्ययनमें आर्द्रककुमारके गोशालक और वेदान्ती तथा पेढालपुत्र उदकके भगवान् गौतम स्वामीके साथ हुए सवादोका लेख है। और इसके द्वितीय खण्डके प्रथम अध्ययनमे आया हुआ पुण्डरीकका दृष्टान्त तो बहुत ही शिक्षापूर्ण है। एक सरोवर पानी और कीचडसे भरा हुआ है। उसमें अनेक सफेद कमल खिले हुए हैं। सबके बीचमे खिला हुआ एक सफेद विशाल कमल बहुत ही मनोहर दिख रहा है। पूर्व दिशासे एक पुरुष आता है और इस सफेद कमलपर मोहित होकर उसे लेने जाता है, परन्तु कमल तक न पहुँचकर बीचमें ही फँसकर रह जाता है। अन्य तीन दिशाओसे आये हुए पुरुषोकी भी यही दुर्गति होती है। अन्तमे एक वीतराग और ससार-सतरणकी कलाका विशेषज्ञ भिक्षु वहाँ आता है। वह कमल और इन फँसे हुए व्यक्तियोको देखकर सम्पूर्ण रहस्य हृदयगम कर लेता है। अत वह सरोवरके किनारेपर खडा होकर ही 'हे सफेद कमल, उडकर यहाँ आ' कहकर उसे अपने पास बुलाता है और इस तरह कमल उसके पास आ गिरता है। प्रस्तुत प्रकरणमे भगवान् महावीर स्वामीके द्वारा इस रहस्यपूर्ण कथाको समझाये जानेका भी उल्लेख है। भगवान्ने बतलाया है कि इस पुण्डरीक दृष्टान्तमें वर्णित सरोवर ससार है। पानी कर्म है। कीचड काम-भोग है। बडा सफेद कमल राजा है और अन्य कमल जनसमुदाय। चार पुरुष विभिन्न मतवादी हैं और भिक्षु सद्धर्म है। सरोवरका किनारा सघ है। भिक्षुका कमलको बुलाना धर्मोपदेश है और कमलका आ जाना निर्वाण-लाभ है।

उत्तराध्ययनमें भी अनेक भावपूर्ण तथा शिक्षापूर्ण आख्यान पाये जाते है। नमिनाथ भगवान्की जीवन-गाथा यहाँ पहली ही बार कही गयी है। बाईसवें अध्ययनमे जो श्रीकृष्ण, अरिष्टनेमि और राजीमतीकी कथा आयी है, वह अनेक दृष्टियोसे आकर्षक है। आठवें अध्ययनमे आया हुआ कपिलका आख्यान बडा ही हृदयहारी है। कपिल कौशाम्बीके एक उत्तम ब्राह्मणकुलमें जन्म लेता है। युवा होनेपर श्रावस्तीके एक दिग्गज विद्वान्के पास विद्याध्ययन करता है। यौवनकी आँधीसे आहत होकर मार्गभ्रष्ट होता है और एक कामुकीके चक्रमे जा फँसता है।

एक दिन इसकी प्रिया राजदरबारमे जानेकी इससे प्रेरणा करती है और दरिद्रताका मारा कपिल सुवर्णमुद्राओकी भीखके लिए रातके अन्तिम पहरमें राजदरबारकी ओर प्रस्थान करता है, परन्तु सिपाही उसे चोर समझकर गिरफ्तार कर लेते हैं। रहस्य खुलनेपर राजाके द्वारा वह मुक्त कर दिया जाता है और उससे यथेच्छ वर माँगनेको कहा जाता है। कपिल तृष्णाकुल होकर राज्य माँगनेके लिए उद्यत होता है, परन्तु तत्काल ही उसका विवेक जाग्रत होता है। उसका मन कहने लगता है कि दो सुवर्ण मुद्राओको माँगने आया हुआ तू सम्पूर्ण राज्यकी चाह करने लग गया और फिर सम्पूर्ण राज्यके मिलनेपर भी तुझे आत्म-तोष हो जायेगा? वह समस्त परिग्रह छोडकर साधु हो जाता है। और राजा तथा उपस्थित दरबारी लोगोको आश्चर्यमें डाल देता है। इसके सिवाय इस ग्रन्थमे चोर[१], गाडीवान[२] और तीन व्यापारियो के दृष्टान्त, हरिकेश तथा ब्राह्मण[४], पुरोहित और उसके पुत्र[५], भगवान् पार्श्वनाथ और महावीरके शिष्योके सवाद[६] मणिकाचनयोगकी तरह प्रकाशमान हैं।

उपासकदशागके दस अध्ययनोमें आनन्द, कामदेव, चुलनीपिता, सुरादेव, चुल्लशतक, कुण्ड-कोकिल, सद्दालपुत्र, महाशतक, नन्दिनीपिता और शालिनीपिता, इन दस श्रावकोकी दिव्य जीवन-गाथाओका चित्रण है, जो सर्वांशत ससारको न छोडकर अशत मोक्षमार्गकी प्राप्तिमें सलग्न रहे।

इसी प्रकार अन्तकृद्दशाग और अनुत्तरौपपादिकदशागमे ससारका अन्त करनेवाले तथा अनुत्तर-विमानवासी अनेक महापुरुषो और स्त्रियोकी जीवनव्यापी साधनाओ और गाथाओका मनोहर चित्रण है। और विपाकसूत्रके प्रथम श्रुतस्कन्धके दस अध्ययनोमें मृगापुत्र, उज्झित, अभग्नसेन, शकट, बृहस्पतिदत्त, नन्दिषेण,

---

१-६. उत्तराध्ययन सूत्रका क्रमश २१, २७, २१, १२, १२ और २३ वाँ अध्ययन।

अम्बरदत्त, सोरियदत्त, देवदत्ता और अजदेवीकी जीवनियोका, जिनमें पापकर्मोके परिणामोका निदर्शन है, वर्णन है। और द्वितीय श्रुतस्कन्धके दस अध्ययनोमें पुण्यकर्मके फल दिखलानेवाली सुबाहुसे सम्बन्धित दस जीवन-गाथाओका उल्लेख है। इसी प्रकार उत्तराध्ययननिर्युक्ति, दशवैकालिकनिर्युक्ति, आवश्यकनिर्युक्ति और नन्दिसूत्रमे भी अनेक शिक्षाप्रद और भावपूर्ण आख्यान पाये जाते है।

उत्तरवर्ती आख्यान-साहित्यमे इसी परम्परामे सम्बन्ध रखनेवाले विमलसूरिका पउमचरिय, लक्ष्मण-गणिका सुपार्श्वचरित, गुणचन्द्रका महावीरचरिय, हरिभद्रकी समराइच्चकहा, हरिवश, प्रभावकचरित, परिशिष्ट पर्व, प्रवन्धचिन्तामणि और तीर्थकल्प-जैसे अनेक आख्यान ग्रन्थ है, जिनमें धर्म, शील, सयम, तप, पुण्य और पापके रहस्यके सूक्ष्म विवेचनके साथ मानव-जीवन और प्रकृतिकी सम्पूर्ण विभूतिके उज्ज्वल चित्र वडी निपुणताके साथ अकित पडे हुए है।

इसी प्रकार जव हम दूसरी दिगम्बरपरम्परा और उसके धर्मकथा-साहित्यकी गम्भीर धाराकी ओर दृष्टिपात करते है तो यहाँ भी हमे जिस आख्यान-साहित्यके दर्शन करनेका अवसर प्राप्त होता है वह भी भारतीय आख्यान-साहित्यमे कम महत्त्वका नही है। दिगम्बरपरम्परा, श्वेताम्बरपरम्परासम्बन्धी उपलब्ध-अग-साहित्यको स्वीकार नही करती है। उसकी दृष्टिमे अन्य द्वादशाग-साहित्य लुप्त हो चुका है। लुप्तप्राय अगज्ञानका कुछ अश ही शेप रहा है जो पट्खण्डागम, कसायपाहुड तथा महावन्धमे सुरक्षित है। फिर भी प्राचीन ग्रन्थोमे[1] इस बातका उल्लेख मिलता है कि दिगम्बरपरम्पराके अग-साहित्यमें भी अनेक आख्यान पाये जाते थे।

ज्ञातृधर्मकथागमे अनेक प्रकारके शिक्षाप्रद आख्यान थे। अन्तकृद्दशागमे भगवान् महावीरके तीर्थ-कालमे नमि, मतग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यम, वाल्मीक और वलीक आदि जिन दस महापुरुपोने ससार-वन्धनका उच्छेद करके निर्वाण लाभ किया था उनका चरित्र-चित्रण था। इसके अतिरिक्त अन्य तेईस तीर्थकरोके तीर्थकालमे भी जो-जो दस प्रसिद्ध महापुरुप कर्म-वन्धनसे मुक्त हुए थे और जिन्होने दारुण उपसर्गो-पर विजय पायी थी उनकी जीवन-गाथाओका उल्लेख था।

इसी प्रकार अनुत्तरौपपादिक दशागमे भी अनुत्तरविमानवासी ऋषिदास, धन्य, सुनक्षत्र, कार्तिक, नन्द, नन्दन, शालिभद्र, अभय, वारिपेण और चिलातपुत्रके उन भावपूर्ण आख्यानोका उल्लेख था जो भगवान् महावीरके तीर्थकालीन थे और जिन्होने भयकर दस-दस उपसर्गोपर विजय प्राप्त की थी। इसके सिवाय इस अगमें शेप तेईस तीर्थकरोके समयमे भी जो-जो दस प्रसिद्ध महापुरुप इस प्रकारके घोर उपसर्गोपर विजय प्राप्त करके अनुत्तरवासी हुए थे, उनके आकर्पक आख्यानोका भी विशद और विस्तृत वर्णन था।

[2]उपलब्ध साहित्यमे आचार्य कुन्दकुन्दके भावपाहुडमें वाहुवलि, मधुपिंग और वशिष्ठमुनि, वाहु और दीपायन तथा शिवकुमार और भव्यसेन आदिके भाव-पूर्ण आख्यानोका उल्लेख मिलता है। वाहुवलि नि सग होकर भी मान कपायके कारण कुछ वर्षो तक कलुपितचित्त बने रहे। मधुपिंग नामके मुनिराज अपरिग्रही होकर भी निदानके कारण द्रव्यलिंगी बने रहे। इसी निदानके कारण वशिष्ठमुनिकी भी वडी दुर्गति हुई। वाहुने मुनि होकर भी अपने क्रोधसे दण्डक राजाके नगरको भस्म किया और फलत रौरव नामके नरकमें जाना पड़ा। दीपायन भी द्वारका नगरीको भस्म करके अनन्त ससारी बने। भावश्रमण शिवकुमार युवतियोसे वेष्टित रहनेपर भी विशुद्धचित्त बने रहे और आसन्नभव्य भी। भव्यसेन मुनिराज बारह अग और चौदह पूर्वके पाठी होनेपर भी सम्यक्त्वके बिना भावश्रमण नही बन सके। शीलपाहुडमे सात्यकिपुत्रकी[3] कथाका चित्रण है। इसी प्रकार तिलोयपण्णत्तिमे ६३ शलाका महापुरुपोकी जीवनीसे सम्बन्ध रखनेवाली मौलिक

---

१ तत्त्वार्थराजवार्तिक पृ० ५१।

२ भावप्राभृतम्, गा० ४४, ४५, ४६, ४९, ५०, ५१, ५२।

३ पट्प्राभृतादिसग्रह: (शीलप्राभृतम्) गा० ५१।

घटनाओका वर्णन है। वट्टकेरके मूलाचार (२, ८६-७)मे एक इस प्रकारका आख्यान है, जिसमे महेन्द्रदत्तके एक ही दिन मिथिलामे कनकलता आदि स्त्रियोकी और सागरक आदि पुरुषोकी हत्या करनेका उल्लेख है। [1]शिवार्यकी आराधनामे भी सुरतकी महादेवी, गोरसदीव मुनि और सुभग ग्वाला आदिके अनेक प्रकारके सुन्दर आख्यान है, जिनका विस्तृत रूप हरिषेण और प्रभाचन्द्रके कथाकोषोमे देखनेको मिलता है[2]। समन्तभद्र स्वामीके रत्नकरण्डश्रावकाचारमे भी सम्यक्त्वके प्रत्येक अगके पालन करनेमे प्रसिद्धिप्राप्त अजनचोर, अनन्तमती, उद्दायन, रेवती, जिनेन्द्रभक्त, वारिषेण, विष्णुकुमार और वज्रकुमार आदिके आख्यानोका तथा व्रत पालन करने और पापाचरण करनेमे प्रसिद्धिप्राप्त स्त्री और पुरुषोकी जीवनियोके उपदेशपूर्ण वर्णन है। उस मेंढककी कथाका भी उल्लेख है जो भगवान् महावीरकी पूजाके लिए प्रस्थान करता है और रास्तेमे श्रेणिक राजाके हाथीके पैरके नीचे दवकर तुरन्त महर्द्धिकदेव हो जाता है। वसुनन्दिके उपासकाध्ययनमे भी सम्यक्त्वके अगोके पालन करनेमे प्रसिद्ध हुए प्राणियो और प्रसिद्ध सप्तव्यसनसेवियोके आख्यानोका केवल नामरूपसे उल्लेख है।

इस परम्पराका पुराण, महाकाव्य और चरितकाव्यकी धारासे सम्बन्ध रखनेवाला अन्य भी साहित्य है, जो विविध आख्यान-उपाख्यानोसे परिपूर्ण है। जिनसेनाचार्यका आदिपुराण, गुणभद्रका उत्तरपुराण, पुष्पदन्तका महापुराण (अपभ्रश), हरिचन्द्रका धर्मशर्माभ्युदय और जीवन्धरचम्पू, वीरनन्दिका चन्द्रप्रभचरित, सोमदेवका यशस्तिलकचम्पू, जिनसेनका हरिवश, रविषेणका पद्मचरित और वादीभसिंहका गद्यचिन्तामणि और अर्हद्दासकी पुरुदेवचम्पू आदि इस प्रकारका साहित्य है जिसमे पाये जानेवाले आख्यान और दृष्टान्त-कथाएँ 'सत्य शिव सुन्दरम्' के अद्भुत आदर्शकी ओर सकेत कर रही है।

हरिषेण, नेमिदत्त और श्रुतसागर आदिके विभिन्न कथाकोषोमे आख्यानोका ही अटूट वैभव छिपा हुआ है। इसके अतिरिक्त तामिल और कन्नड भाषाका जैन आख्यान-साहित्य भी भारतीय आख्यान-साहित्यकी एक निधि है।

२. नीतिकथा-साहित्य (Didactive Tales)

भारतीय आख्यान-साहित्यमें नीतिकथा-साहित्यका भी अपना महत्त्वका स्थान है। नीतिकथा-साहित्यका प्रधान लक्ष्य सदाचार, राजनीति और व्यवहारशास्त्रका परिज्ञान कराते हुए सरल और मनोरंजक पद्धतिसे धर्म, अर्थ और कामकी छोटी-मोटी बातोका निर्देश करना है। कोरमकोर उपदेश या सदाचारशास्त्रसे हृदयपर वह बात अकित नही होती जो कथाके पुटपाकसे प्रभावित होकर चिर समय तकके लिए मानव-हृदयपर अपनी छाप छोडनेमे समर्थ होती है। नीतिकथा-साहित्यका प्रमुख आदर्श यही है। मानव-जीवनको सफलताके साथ व्यतीत करनेके लिए, उसे समुन्नत, सर्वश्रेष्ठ तथा लोकोपकारी बनानेके लिए जिन बातोकी प्रतिदिन आवश्यकता पडती है और जिन बातोसे मायावी तथा वचकोका इन्द्रजाल उसे अपनेमे उलझा नही पाता, नीतिकथाओमे इन्ही बातोंका उपदेश रोचक ढगसे दिया गया है।

नीतिकथाओंके प्रमुख पात्र पशु-पक्षी है और अपनी कहानियोमे ये सम्पूर्ण व्यवहार मनुष्यकी ही भाँति करते हुए देखे जाते हैं। हास्य-रुदन, प्रेम-कलह, चिन्ता-उत्कण्ठा, हर्ष-विषाद, युद्ध-सन्धि, उपकार-अपकार आदि सारे व्यवहार मनुष्योकी तरह होते है। और इन्ही पशु-पक्षियोकी कहानियोमे व्यवहार, राजनीति, सदाचारके गूढसे गूढ मन्त्रोका प्रतिपादन बडे ही स्वाभाविक ढगसे कर दिया गया है।

नीतिकथाओकी एक और प्रमुख विशेषता है और वह यह है कि इसकी एक प्रधान कथाके अन्तर्गत अनेक गौण कथाएँ भी आयी हुई है। प्रधान कथाके पात्र जब कोई विस्मयजनक बात कह जाते है तो उसके समर्थनमे वे कुछ अन्य अवान्तर कथाओका उपयोग करते हुए देखे जाते है।

---

१ मूलाराधना आ० ६, गा० १०६१, ९१५, ७५९, सखाराम नेमचन्द्र ग्रन्थमाला, सोलापुर।

२ वृहत्कथाकोष डॉ० ए० एन० उपाध्ये-द्वारा सम्पादित और सिंघी जैन सीरीज-द्वारा प्रकाशित, की अँगरेजी प्रस्तावना।

नीतिकथाओकी शैली बडी ही प्राजल, सुबोध और मुहावरेदार होती है। जहाँ इनके द्वारा राजनीति और सदाचारकी उपयोगी शिक्षा मिलती है वहाँ सस्कृत साहित्यकी सजीव, सुकुमार और मनोरजक शैलीके आदर्शरूपकी उपलब्धि प्रस्तुत नीतिकथा-साहित्यकी ही विशेषता है। कथाओका वर्णन गद्यमे है, किन्तु कथागत शिक्षा और उपदेशका समावेश पद्योमे किया गया है। कथाका आरम्भ गद्यसे होता है और समाप्ति पद्यमे। बीचमे गद्य-पद्य दोनोका प्रयोग होता रहता है। हाँ पद्योका उपयोग प्राय उन्ही स्थलोमे हुआ दृष्टिगोचर होता है जहाँ पात्र कुछ गम्भीर बात कहते हैं और उन्हे उसके समर्थनकी अपेक्षा पडती है। इन नीतिकथाओमे ललित लोकोक्तियाँ, दिव्य-दृष्टान्त और मधुर मुहावरोंके पदे-पदे दर्शन मिलते हैं। सुकुमार-मति बालक भी इन कथाओको पढकर अनायास दुर्लभ और मूल्यवान् ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

सृष्टिके प्रारम्भमे ही भारतीय जन प्रकृति-प्रेमी रहे हैं। प्रकृतिके रहस्यका साक्षात्कार प्रकृतिकी ही सहायतामे करना उनकी प्रमुख विशेषता रही है। यही कारण है जो बालकोंके शिक्षणमे भी हमे उनकी इस विशेषताका उपयोग किया गया दिखलाई देता है। पशु-पक्षियोंके दृष्टान्त-द्वारा व्यावहारिक और सदाचारके शिक्षणकी पद्धति सुदूर पूर्व वैदिक कालमे प्रयुक्त होकर आज तक चली जा रही है।

ऋग्वेदमे पायी जानेवाली मनु और मछलीकी कथाका हम पहले सकेत कर आये है। छान्दोग्य उप-निषद्मे दृष्टान्तके रूपमे उद्गीथ श्वानका आख्यान वर्णित है। पुराणोमे भी नीतिकथाओके वर्णन है और महा-भारतमे भी विदुरके मुखमे अनेक नीतिकथाएँ वर्णित करायी गयी है। तृतीय शताब्दी ई० पू० के भारहुत (Bharhut) स्तूपपर अनेक नीतिकथाओंके नाम उत्कीर्ण है[1]। बौद्धोंके जातकमें अनेक नीतिकथाएँ है और जैन कथा-साहित्य भी नीतिकथाओंमे अछूता नही है।

उपलब्ध नीतिकथा-साहित्यमे पचतन्त्र और हितोपदेशका बडा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमे-से पचतन्त्र तो बहुत ही प्राचीन है। इसमे राजनीति और व्यवहारकी बडी ही उपयोगी शिक्षा दी गयी है। महिलारोप्य नगरके राजपुत्रोंको नीतिशास्त्रका पण्डित बनानेकी दृष्टिमे विष्णुशर्माने इसका प्रणयन किया था। इसके पाँच तन्त्र (भाग) है मित्रभेद, मित्रलाभ, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और अपरीक्षितकारक। इन पाँचो भागोमे जो प्रधान कथाएँ और गौण कथाएँ दी हुई है, वे बडी ही शिक्षाप्रद और रोचक है। मानव-जीवनके गुण, दोषों-भूलो और शोधोंका जो इनमे सूक्ष्म और सरस चित्रण हुआ है वह बडा ही प्रभावपूर्ण है।

पचतन्त्रका रचनाकाल ३०० ई०के लगभग माना जाता है। इसकी कथाओका विश्वव्यापी प्रचार हुआ है। अबतक भारतके बाहर लगभग ५० भाषाओमे इस ग्रन्थके २५० विभिन्न सस्करण प्रकाशित हो चुके है।[2]

हितोपदेश भी पचतन्त्रकी ही तरह नीतिकथा-ग्रन्थ है। इसकी कथाएँ और सूक्तियाँ भी नीति-शास्त्रका उतना ही बोध कराती है जितना पचतन्त्रकी। सम्पूर्ण ग्रन्थ चार भागोमे विभक्त है मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और सन्धि। इसकी ४३ कथाओमे-से प्रत्येकमे हितकर उपदेश टपक रहा है। इसकी भाषा पचतन्त्रमे भी सरल और सुन्दर है।

३ लोककथा-साहित्य (Popular Tales)

नीतिकथा-साहित्यकी तरह लोककथा-साहित्यका भी भारतीय आख्यान-साहित्यमे एक विशिष्ट स्थान है। लोककथा-साहित्यका प्रधान लक्ष्य मनोरजन है और इसके कथापात्र पशु-पक्षी न होकर मनुष्य रहते है, जब कि अन्य लक्ष्य और विशेषताओंमे नीतिकथा-साहित्य और लोककथा-साहित्यमे कोई असमानता नही है

---

१. श्री मेकडानल, इण्डियाज़ पास्ट (India's Past) पृ० ११७।

२ सस्कृत साहित्यकी रूपरेखा पृ० ३००।

लोककथाओका सबसे प्राचीन संकलन गुणाढ्यकी बृहत्कथामे माना गया है। कहा जाता है कि गुणाढ्य-ने अपने समयकी प्रचलित लोककथाओको सकलित कर बृहत्कथाका रूप दिया था।

बृहत्कथाका नायक महाराज उदयनका राजकुमार है। उसकी पत्नी मदनमजूपाको मानसवेग हर ले जाता है। राजकुमार अपने विश्वस्त गोमुख मन्त्रीकी सहायतासे उसकी प्राप्तिका प्रयत्न करता है। बृहत्कथा-की मूल कथावस्तु यही है।

मूल बृहत्कथा पैशाची प्राकृतमे थी। पैशाची भाषा या तो आधुनिक दर ही की पूर्वज भापा थी या उज्जैनके पासकी एक वोली[1]। यह कितनी विशाल थी इस सम्बन्धका अब कोई भी साक्षात् प्रमाण नही है हाँ, दण्डी[2], सुबन्धु[3], बाण[4], धनजय[5], त्रिविक्रमभट्ट[6] और गोवर्धनाचार्य[7]-जैसे अनेक विद्वानोने गुणाढ्यकी इस बृहत्कथाका अपनी रचनामे आदरके साथ उल्लेख किया है।

बृहत्कथा यद्यपि आज अपने मौलिक रूपमे उपलब्ध नही है फिर भी उसके तीन सस्कृत रूपान्तर आज भी विद्यमान पाये जाते है (१) नैपालके बुद्धस्वामीकृत बृहत्कथाश्लोकसग्रह, (२) क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथामजरी और (३) सोमदेवकृत कथासरित्सागर।

बृहत्कथाश्लोकसग्रहकी रचना आठवी या नवी शताब्दीके लगभग मानी जाती है। यह रचना भी आशिक रूपमें ही उपलब्ध है। वर्तमान रूपमे २८ सर्ग तथा ४५२४ पद्य है। भाषामें जहाँ कही प्राकृतपन भी लक्षित होता है जो मूल स्रोत बृहत्कथासे रूपान्तरित होनेका सीधा सकेत करता है।

बृहत्कथामजरीकी रचना १०३७ ई०मे हुई। इसके रचयिता क्षेमेन्द्र काश्मीरके राजा अनन्त (१०२९-१०६४ ई०) के आश्रित थे। इसमे ७५०० श्लोक है। सोमदेवकृत कथासरित्सागर एक सुप्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण कथासग्रह है। यह सग्रह १०७० ई०के लगभग लिखा गया। इसमें १२४ तरगो और २०२००० पद्य हैं। कविने अपनी रचनाका आधार गुणाढ्यकृत बृहत्कथा बतलायी है[8]। इस सग्रहमें हृदयगम शैलीमें लिखे गये अनेक मनोरजक और सरस आख्यान पाये जाते है।

बृहत्कथाके इन रूपान्तरोके सिवाय अन्य कथासग्रह भी लोककथा-साहित्यकी श्रीवृद्धि कर रहे हैं। वेतालपचविंशतिका एक इसी प्रकारका कथासग्रह हैं। इस सग्रहमे एक भूत उज्जैनके राजा विक्रमादित्यको पहेलियोके रूपमे पचीस कथाएँ सुनाता है। सभी कथाएँ मनोरजक शैलीमें वर्णित की गयी है। इसके दो सस्करण उपलब्ध होते है। एक शिवदासका है, जो गद्य-पद्य दोनोंमें है और दूसरा जभलदन्तका है जो केवल गद्यमय है।

सिंहासनद्वात्रिंशिका भी इसी कोटिका कथासग्रह है। इस सग्रहमे राजा विक्रमके सिंहासनकी ३२ पुत्तलि-काएँ राजा भोजको एक-एक कहानी सुनाकर उड जाती है। ये कहानियाँ भी मनोरजक और आकर्षक शैलीमे लिखी गयी हैं। सभी कहानियाँ राजा भोजको सुनायी गयी हैं। अत इस सग्रहका रचना-काल भोज राजाके बादका ठहरता है। सिंहासनद्वात्रिंशिकाके द्वात्रिंशत्पुत्तलिका और विक्रमचरित भी उपनाम है। इसके तीन प्रकारके सस्करण उपलब्ध है एक गद्यमें है, दूसरा पद्यमे है और तीसरा गद्यपद्यमय है।

शुकसप्तति भी लोककथा-साहित्यका इसी प्रकारका मनोरजक कथासग्रह है। इसमे ७० लोकप्रिय और हृदयहारी कथाएँ है। ये समस्त कथाएँ एक शुक (तोता)के द्वारा कही गयी है। मदनसेन नामका एक युवक अपनी पत्नीसे अत्यधिक स्नेह करता है। कार्यवशात् उसे घर छोडकर प्रवासमे जाना पडता है। उसकी पत्नीके लिए यह पति-वियोग असह्य हो जाता है और उसकी इस पीडाको दूर करनेकी दृष्टिसे तोता प्रत्येक रात उसे एक-एक विनोदपूर्ण कहानी सुनाता है। उसका क्रम लगातार ७० दिनो तक चलता है और इसके

---

१ श्री जयचन्द्र विद्यालकार : भारत भूमि और उसके निवासी, पृ० स० २४६, २ काव्यादर्श, १।३८, ३ वासवदत्ता (सुबन्धु)। ४ हर्षचरितम्, प्रस्तावना, पृ० १७, ५ दशरूपक, १।६८, ६ नलचम्पू, १।१४, ७ आर्यासप्तशती, पृ० १३, ८ प्रणम्य वाच नि शेषपदार्थोद्योतदीपिकाम्। बृहत्कथायाः सारस्य सग्रह रचयाम्यहम्॥ बृहत्कथासार, पृ०, १ पद्य ३।

बाद मदनसेन घर वापस आ जाता है। शुकसप्ततिके भी तीन संस्करण पाये जाते है। इसका रचनाकाल चौदहवी शताब्दीके पूर्वका अनुमानित किया जाता है।

पुरुषपरीक्षा भी इसी कोटिका कथासग्रह है। इसके रचयिता मैथिल कवि विद्यापति है और रचना-काल पन्द्रहवी शताब्दी। इसमें नीति और राजनीतिसे सम्बन्ध रखनेवाली रोचक कथाएँ है। शिवदासके कथार्णवमे भी चोरो और मूर्खोकी ३५ कथाएँ है। भोजप्रबन्धमें भी अनेक महाकवियोकी मनोरजक दन्त-कथाएँ वर्णित है। आरण्ययामिनी और ईसन्नीतिकथा भी इसी प्रकारके सग्रहात्मक आख्यान-ग्रन्थ है।

चरित्रसुन्दरका महीपालचरित[1] बहुत ही रोचक कथाओंसे भरा हुआ है। इसका नायक महीपाल विशुद्ध काल्पनिक और मनोरजक कहानी गढनेवाला है। महीपाल समस्त कलाओमें पारगत है और उसने अपनी इस कला-कुशलताका अनेक गम्भीर परिस्थितियोके सुलझानेमे पूरा परिचय दिया है। उदाहरणके लिए एक यक्ष एक स्त्रीके वास्तविक पतिका रूप बना लेता है। दोनो इस स्त्रीके लिए झगडते है और स्त्री भी अपने वास्तविक पतिको नही पहचान पाती है। अन्तमे चरित-नायक महीपाल इस समस्याको सुलझाता है। वह एक पानीका घडा मँगवाता है और उन दोनों झगडनेवालोंसे कहता है कि जो इस घडेमे बैठ जायेगा उसीकी यह स्त्री समझी जायेगी। यक्ष अपनी मायासे घडेमें बैठ जाता है और उसे कल्पित पति करार दिया जाता है।

एक बार महीपाल अपने विश्वासघाती मन्त्रीके द्वारा समुद्रमें गिरा दिया जाता है, उस समय वह लम्बी मछलीकी पीठके सहारे तैरता हुआ किनारे लगता है और अपने जीवनकी रक्षा करता है। वहाँ उसे एक सुन्दर स्त्री और एक मायामय पलगकी प्राप्ति होती है, जो उसे उसकी इच्छानुसार जहाँ-कही भी ले जा सकता है। एक जादूकी छडी मिलती है जो उसे अदृश्य बना देती है और एक ऐसा मन्त्र मिलता है जिसके सामर्थ्यसे वह किसी भी वस्तुको ठीक-ठीक समझ सकता है। एक बार महीपाल कुज बन जाता है और अपनेको फलित ज्योतिपीके रूपमें प्रसिद्ध करता है। वह एक पुस्तक अपने हाथमे लेता है और बतलाता है कि निर्दोष जन्मवाला मनुष्य ही इसे पढ सकता है, व्यभिचारजन्मा नही। राजा, पुरोहित और प्रधान मन्त्री इस पुस्तकको देखते है। इनमेंसे कोई भी यह पुस्तक नही पढ पाता है, परन्तु पढनेका प्रदर्शन हर एक करता है और रचनाके स्पष्ट लेखकी प्रशसा भी करता है। इसके सिवाय महीपाल इतना कला-कुशल है कि वह हाथी तौल सकता है और समुद्रको भी स्थानान्तरित कर सकता है। महीपाल अन्तमे जैन साधु हो जाता है और मुक्ति-लाभ करता है।

प्रस्तुत चरित चौदह सर्गोमें समाप्त हुआ है और इसका रचनाकाल पन्द्रहवी शताब्दी अनुमानित किया जाता है।

उत्तम(कुमार)चरितकथानक[2] भी एक इसी कोटिकी मनोरजक रचना है। प्रस्तुत कथानकमें अनेक आश्चर्यपूर्ण और साहसिक घटनाओका चित्रण है और इस प्रकार प्रत्येक कथानक जैन धर्मके किसी-न-किसी पवित्र आदर्शकी ओर सकेत करता है। इसकी रचना गद्य-पद्यमय है। भाषा सस्कृत है, किन्तु कतिपय प्रान्तीय भाषाके शब्दोका प्रयोग इस बातको सूचित करता है कि इस कथानककी रचना गुजरातमें हुई है।

पापबुद्धि-धर्मबुद्धि-कथानक[3] भी एक विनोदपूर्ण धार्मिक रचना है। प्रस्तुत कथानकमें पापबुद्धि और

---

१ श्री हीरालाल हसराज जामनगर (१९०९ मे)-द्वारा सम्पादित, विण्टरनिट्ज, ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन कल्चर द्वितीय भाग, पृ० ५३६-५३७।

२ इस कथानकका गद्य भाग श्री ए० वेवनके-द्वारा जर्मन भाषामें सम्पादित और अनूदित हो चुका है। इसका चारुचन्द्र विरचित और 'उत्तरकुमारचरित' नामक पद्यबद्ध रूपान्तर श्री हीरालाल हसराज जामनगर-द्वारा सम्पादित हो चुका है। ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन कल्चर द्वि० भा०, पृ० ५३८।

३ यह कथानक श्री ई० लवारिनी-द्वारा इटालियन भाषामे अनूदित और सम्पादित हो चुका है। ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन कल्चर द्वि० भा०, पृ० ५३८।

धर्मबुद्धिकी जीवन-गाथा वर्णित की गयी है। पापबुद्धि राजा केवल शक्ति और धनमे ही विश्वास करता है, धार्मिक आचरणका कोई सत्फल मिलता है, इस सम्बन्धमे उसे जरा भी श्रद्धा नही है। परन्तु इसके प्रतिकूल इसका मन्त्री धर्मबुद्धि, जिसने पूर्व जन्ममें धर्माचरण करके खूब पुण्य कमाया था, जादूकी अनेक चीजोकी सहायतासे अटूट धनकी प्राप्ति और अपने अद्भुत सौभाग्यशाली होनेका प्रदर्शन करता है। दोनोमे बडी ही प्रतिस्पर्धा चलती है और अन्तमे एक जैन साधु उन दोनोके पूर्वभव सुनाकर उन्हे प्रतिबुद्ध करते है और राजा तथा मन्त्री दोनो ही जैन साधु हो जाते है।

जिनकीर्तिका चम्पक श्रेष्ठि कथानक[1] भी एक काल्पनिक और मनोरंजक रचना है। इस कथानकमें तीन रोचक कथाओका वर्णन है। पहली कथा महाराज रावनकी है, जो व्यर्थ ही भाग्यकी रेखाओको अन्यथा करनेका प्रयत्न करता है। दूसरी उस भाग्यशाली बालककी है, जो एकदम अन्तिम क्षणमें प्राणनाशक पत्रको बदलकर अपने प्राण बचाता है और तीसरी उस व्यापारीकी है जो जीवन-भर दूसरोको ठगता रहता है और अन्तमे एक वेश्याके द्वारा स्वय ही ठगाया जाता है। इस कथानकका रचनाकाल पन्द्रहवी शताब्दीका मध्य भाग अनुमान किया जाता है।

जिनकीर्तिकी एक इस ही कोटिकी रचना भी उपलब्ध है और उसका नाम है 'पाल-गोपाल-कथानक।' प्रस्तुत कथानकमे भी मनोरजक कहानियो और आख्यानोके सुन्दर चित्र उपस्थित किये गये है। उन दो भाइयोकी कथा, जो देशाटनके लिए निकलते है, अनेक गम्भीर घटनाओका साहसके साथ सामना करते है और अन्तमे प्रतिष्ठा तथा यश दोनो ही प्राप्त करते है, बहुत ही रोचक है। उस स्त्रीकी कथा भी कम मनोरजक नही है जो एक पवित्रहृदय युवकका शील-भग करना चाहती है और जब वह अपने प्रयत्नमे सफल नही होती है तो उसे इस रूपमें लाछित करती है कि इसने मेरा शील-भग करना चाहा था।

अघटकुमारकथा[2] भी एक ऐसी ही मनोरजक कहानी है। इसमे राजकुमार अघटकी कथाको कल्पना-प्रधान और विनोदपूर्ण शैलीमे ग्रथित किया गया है और दिखलाया गया है कि किस प्रकार एक भाग्यशाली कुमार एक प्राणघातक पत्रको परिवर्तित करके अपने जीवनकी रक्षा करता है। इस कथाके दो अन्य सस्करण भी मिलते है। एक बहुत लम्बा है और दूसरा छोटा है। एक गद्यमे है और दूसरा पद्यमे।

अमरसूरिका अम्बदचरित[3] एक जादूसे भरी हुई विनोदपूर्ण रचना है। अम्बद एक बडा भारी जादूगर है। वह आकाशमे उड सकता है, मनुष्योको जानवर बना सकता है और उन्हे फिरसे मनुष्य बना सकनेकी सामर्थ्य रखता है तथा स्वय भी इच्छानुसार आकृति बना सकता है। अम्बद अपनी जादूकी कलाओ-से वृद्धा गोरखाके सात कठिन कामोमे सफलता प्राप्त करता है। बत्तीस सुन्दर स्त्रियोको जीतता है और अपरिमित सम्पत्ति तथा राज्य भी प्राप्त करता है। अम्बद शैवसे जैन बनता है। एक साधारण धार्मिक वृत्तिका अम्बद साधु हो जाता है, अन्तमें समाधिपूर्वक मरण करता है और स्वर्गमे पहुँचकर स्वर्गीय विभूतिका स्वामी बन जाता है। प्रथम उपागमे भी अम्बदकी कथा है परन्तु इस कथाका रूप आधुनिक है।

ज्ञानसागरसूरिकी रत्नाच्युदकथा[4] भी एक बहुत रोचक और हृदयरजक कहानियोसे पूर्ण रचना है।

---

१ यह कथानक भी श्री हर्टेल-द्वारा अँगरेजीमें अनूदित और सम्पादित हो चुका है। इसका एक अनुवाद हो चुका है। ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन कल्चर द्वि० भा०, पृ० स० ५३९।

२ इस कथाके पद्य भागका जर्मन अनुवाद श्री चारलट क्रूसे-द्वारा हो चुका है। और इसका सक्षिप्त पद्य भाग 'अघटकुमारचरित'के नामसे निर्णयसागर प्रेस, बम्बई (१९१७ मे)-द्वारा प्रकाशित हो चुका है। ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन कल्चर द्वि० भा०, पृ० ५४०।

३ यह चरित श्री हीरालाल हसराज जामनगर-द्वारा सम्पादित तथा श्री चारलट क्रूसे-द्वारा जर्मनमे अनूदित हो चुका है।

४ यह ग्रन्थ 'यशोविजय जैन ग्रन्थमाला' भावनगर-द्वारा (१९१७ मे) प्रकाशित हो चुका है और श्री हर्टेलके द्वारा जर्मनमे अनूदित भी हो चुका है। ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन कल्चर द्वि० भा०, पृ०५४१।

इसमें एक इस प्रकारकी कथा है, जिसमें अनीतिपुर नामकी नगरी, अन्याय नामका राजा और अज्ञान नामके मन्त्रीका चरित्र-चित्रण किया गया है। उस सोमशर्मन्की कथा भी है जो हवाई किले बनाता है। प्रस्तुत रचनामें कुछ उपदेशपूर्ण चित्र भी उपस्थित किये गये हैं, जब कि रत्नाच्युद यात्रार्थ जानेकी तैयारी करता है। प्रस्तुत कथाका रचनाकाल पन्द्रहवी शताब्दीका मध्यभाग अनुमानित किया जाता है।

सम्यक्त्वकौमुदी भी एक इसी प्रकारकी धार्मिक तथा मनोरंजक कथाओंसे परिपूर्ण रचना है। इसमें सेठ अर्हद्दास अपने सम्यक्त्व-लाभकी कथा अपनी आठ पत्नियोंको सुनाता है। कुन्दलताको छोडकर सभी स्त्रियाँ उसके कथनपर विश्वास करती हैं। सेठकी अन्य सात स्त्रियाँ भी अपने-अपने सम्यक्त्व लाभकी बात सुनाती हैं। कुन्दलता उनका भी विश्वास नही करती है। नगरका राजा उदितोदय, मन्त्री सुबुद्धि और सुपर्णखुर चोर भी छिपकर इन कथाओंको सुनते हैं। उन्हे इन घटनाओंपर विश्वास होता जाता है और राजाको कुन्दलताके विश्वास न करनेपर क्रोध भी आता है। अन्तमें कुन्दलता भी इन कथाओंसे प्रभावित होती है। सेठ अर्हद्दास, राजा, मन्त्री, सेठकी स्त्रियाँ, रानी और मन्त्रिपत्नी सबके सब जैन-दीक्षा ले लेते है। कुन्दलता भी इनके साथ दीक्षित हो जाती है। तप करके कोई निर्वाण-लाभ करता है और कोई स्वर्गोमे जाता है।

मुख्य कथाके भीतर एक सुयोधन राजाकी कथा भी आयी है, और उसीके अन्दर अन्य सात मनोरंजक और गम्भीर संकेतपूर्ण कहानियोंका भी समावेश किया गया है।

हस्तिनापुरका राजा सुयोधन अपने देशमें शत्रुओं-द्वारा किये जानेवाले उपद्रवोंके निवारणार्थ नगरसे प्रस्थान करता है और अपने स्थानपर राज्य-संचालनके लिए यमदण्ड कोतवालको नियुक्त कर जाता है। वापस आता है और अपनी जनताको यमदण्डके स्नेहपूर्ण व्यवहारसे प्रभावित पाकर उसके प्राण-घातके लिए तैयार हो जाता है। राजा मन्त्री और पुरोहितसे मिलकर एक ही रातमें राज-कोपको स्थानान्तरित कर देता है, परन्तु कार्यकी व्यग्रतावश राजा अपनी खडाऊँ, मन्त्री अँगूठी और पुरोहित अपना यज्ञोपवीत वहीपर भूल आते है। यमदण्डपर राज-कोप लुटवा देनेका जाली अपराध लगाया जाता है और उसे वास्तविक चोरको सात दिनके अन्दर राजाके सामने उपस्थित करनेका आदेश मिलता है। यमदण्ड राज-कोपकी वास्तविक स्थितिका पता लगाने जाता है और उसे राजा, मन्त्री और पुरोहितकी भूलसे छूटी हुई वे तीनो वस्तुएँ मिल जाती है। उसे सच्चे चोरोंका और चोरीके यथार्थ रहस्यका पता लग जाता है और वह उन तीनों ही चीजोंको अपने घर ले जाकर रख आता है। राजा यमदण्डसे एकसे लेकर सातवे दिन तक प्रतिदिन उससे चोरके मिलनेकी बात पूछता है और उत्तरमें वह भी राजाके प्रतिबोधके लिए प्रतिदिन नवीन-नवीन व्यंग्यपूर्ण किस्सा गढता है और बहाना करता है कि किस प्रकार इस रोचक कथाके सुननेमे ही उसका सारा समय निकल जाता है और वह चोरका पता नही कर पाता है। आठवें दिन उसे प्राण-दण्डकी सजा घोषित की जाती है। यमदण्ड बाध्य होकर अपने घरसे उन तीनों वस्तुओंको लाता है और महाजनोंके सामने रखकर राजा, मन्त्री और पुरोहितको ही राज-कोपको लूटनेवाले चोर प्रमाणित करता है। महाजन इन तीनोंको ही पदच्युत कर देते है और तीनो स्थानोंपर उन तीनोंके सुयोग्य पुत्रोंको प्रतिष्ठित करते है।

रचनाकी मुख्य कथाके अन्दर आयी हुई ये अन्तर्कथाएँ एक सूत्रमे पिरोये गये मणियोंकी तरह जगमगा रही है। इनमें गम्भीर व्यंग्य, उन्नत आदर्श, सुन्दर व्यवहार और लोक-मंगलकारी सिद्धान्तोंका पद-पदपर अटूट वैभव बिखरा हुआ है।

सम्यक्त्वकौमुदीकी रचना पंचतन्त्रकी शैलीपर की गयी है। कथाका प्रारम्भ गद्यसे होता है और सम्पूर्ण कथावस्तु चलती भी गद्यमे ही है। परन्तु पात्रविशेषकी गम्भीर बातोंका समर्थन करनेके लिए बीच-बीचमें पद्योंका भी प्रयोग किया गया है, और ऐसा करते समय रचयिताने 'उक्त च', 'अन्यच्च', 'तथाहि' और 'पुनश्च' आदि लिखकर इनके नीचे अनेक ग्रन्थोंके पद्योंको उद्धृत किया है।

इस प्रकार सम्यक्त्वकौमुदीकी मूल कथावस्तु धार्मिक होकर भी अनेक काल्पनिक आख्यानोंको लेकर ... गयी है। शैली हृदयगम और विनोदपूर्ण है। रचना बहुत सरल है। इसके कर्ता और समयका कोई

निश्चय नही है। फिर भी श्री ए० वेवरको जो इस ग्रन्थकी १४३३ ई०की पाण्डुलिपि[1] प्राप्त हुई थी, उसके आधारपर यह तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि प्रस्तुत ग्रन्थका रचनाकाल १४३३ ई० से आगेका नही है।

वादीभसिंहकी 'क्षत्रचूडामणि' भी अनेक साहसिक, धार्मिक और मनोरजक घटनाओ तथा कथाओसे परिपूर्ण उत्कृष्ट रचना है। इसके ग्यारह लम्बोमे जीवन्धरकुमारका सम्पूर्ण चरित्र वर्णित किया गया है। रचनाके प्रायः प्रत्येक पद्यके अन्तमे जो हितकर, मार्मिक, अनुभवपूर्ण और गम्भीर नीति-वाक्योका प्रयोग हुआ है, उनसे इस रचनाकी महत्ता बहुत अधिक बढ गयी है और उस स्थितिमे यदि इसे नीतिका आकर-ग्रन्थ कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी।

जीवन्धरका पिता राजा सत्यन्धर इसके जन्मके पहले ही वासनाओका गुलाम वन जाता है और सारा राज्यकार्य काष्ठागार नामक मन्त्रीको हस्तान्तरित कर देता है। काष्ठागारके मनमें पापबुद्धि जागृत होती है, वह सत्यन्धरको मारकर निष्कण्टक राज्य करना चाहता है। अचानक काष्ठाङ्गार सत्यन्धरके ऊपर आक्रमण कर बैठता है और दोनो ओरसे युद्ध ठनता है। सत्यन्धर इसके पहले ही अपनी गर्भिणी महादेवीको मयूर-यन्त्रमे बैठाकर उडा देता है। वह युद्धजनित हिंसासे विरक्त होकर तपस्वी हो जाता है। जीवन्धरकुमारका स्मशान-भूमिमे जन्म होता है और वह सेठ गन्धोत्कटके यहाँ पालित-पोषित होता है और आर्यनन्दीके निकट शिक्षा लेकर विद्वान् बनता है। राजपुरीके नन्दगोपकी गायोको भीलोके शिकजेसे मुक्त कराता है और श्रीदत्तकी कन्या गन्धर्वदत्ताको वीणा बजानेमें परास्त करके उससे विवाह करता है। एक अधमरे कुत्तेको पचनमस्कार मन्त्र सुनाता है, कुत्ता तुरन्त ही मर जाता है और यमेन्द्र हो जाता है, जीवन्धर गुणमाला और सुरमजरीके चूर्णकी परीक्षा करता है, काष्ठागारके मदोन्मत्त हाथीको वशमें करके गुणमालाके प्राण बचाता है और अन्तमें उसके माता-पिताके अनुरोधमे उसके साथ विवाह कर लेता है।

जीवन्धरके द्वारा तिरस्कृत होनेसे काष्ठागारका हाथी खाना-पीना छोड देता है। काष्ठागार जीवन्धरको पकड लानेके लिए सेना भेजता है और जीवन्धर भी लडनेके लिए सेनाको तैयार करता है, परन्तु गन्धोत्कट उसे इस कार्यसे रोकता है और पीछेसे उसके हाथ बाँधकर स्वय ही जीवन्धरको काष्ठागारके सामने विनीत वेषमें उपस्थित करता है। काष्ठागार इसपर भी जीवन्धरको मार डालनेकी आज्ञा देता है। परन्तु यक्षेन्द्र उसे तत्काल वहाँसे उडा ले जाता है और उसे चन्द्रोदय पर्वतपर छोडता है। यमेन्द्र उसका क्षीरसागरके जलसे अभिषेक करता है और उसे इच्छानुसार रूप-वेष धारण करने, विप दूर करने और समोहक गीत गानेके तीन मन्त्र प्रदान करता है। जीवन्धरके जिनेन्द्रस्तवनसे मेघ-वृष्टि होती है और वनमे लगी हुई आग बुझ जाती है। वह चन्द्राभा नरेशकी पद्मा पुत्रीके सर्पविपको दूर करता है। राजा उसे आधा राज्य प्रदान करता है और इसके साथ पद्माका विवाह कर देता है। उसके स्तवनसे सुदूर पूर्वकालसे बन्द पडे हुए एक सहस्रकूट चैत्यालयके किवाड खुल जाते है। ज्योतिपियोकी वाणी सत्य होती है और जीवन्धर-की सुभद्र सेठकी कन्या क्षेमश्रीसे विवाह हो जाता है। वह एक किसानको गृहस्थ धर्मका उपदेश देता है, उसे अपने बहुमूल्य वस्त्राभरण दे देता है और एकान्तमे उसके पास आयी हुई एक स्त्रीके साथ बात भी नही करता है। हेमा भी नगरीके राजकुमारोको अपनी धनुर्विद्याका कौशल दिखलाता है और इनकी बहन कनक-मालाके साथ विवाह करता है। उसके एक सेठके दरवाजेपर पहुँचते ही सेठके बहुत दिनसे रखे हुए रत्न बिक जाते है और वह निमित्तज्ञोकी सूचनानुसार अपनी विमला कन्याका जीवन्धरके साथ विवाह कर देता है। जीवन्धर एक वृद्ध ब्राह्मणका वेष बनाता है और मधुर सगीत-द्वारा सुरमजरीको मुग्ध करता है। पश्चात् अपना सच्चा रूप प्रकट करता है और सुरमजरीसे विवाह करता है। वह चन्द्रकयन्त्रका भेदन करता है और विदेह देशकी धरणीतिलकाके नरेश गोविन्दराजकी पुत्री लक्ष्मणासे विवाह करता है। यही काष्ठागार और जीवन्धरमे युद्ध छिडता है और जीवन्धर अपने चिर-विरोधीको मार डालता है।

---

१. ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन कल्चर द्वि० भा०, पृ० ५४१ की टिप्पणी।

जीवन्धरको राज्य मिलता है और वह सुखसे राज्य करने लगता है। एक दिन वसन्तोत्सवके समय उद्यानमें वह एक बन्दरकी मायापूर्ण लीला देखकर ससारसे विरक्त हो जाता है और भगवान् महावीरके चरणोंमें दीक्षा लेकर मोक्षको प्राप्त करता है।

मुख्य कथामें अनेक अन्तर्कथाएँ भी पायी जाती है जो बहुत ही रोचक है। शैली इतनी मनोरंजक है कि पाठकका भी जी सम्पूर्ण कथावस्तु एक ही साँसमें पढनेको चाहता है। मुख्य कथाके तीन अन्य रूपान्तर भी उपलब्ध है। एक कृति इसी रचनाके कर्ताकी है और वह 'गद्यचिन्तामणि' है। दूसरा रूपान्तर महाकवि हरिचन्द्रकी 'जीवन्धरचम्पू' में है। और एक रूप 'गुणभद्राचार्य' के उत्तरपुराणमें है।

बौद्धोका अवदानशतक और जातकमाला तथा जैनोके बृहत्कथाकोश, परिशिष्ट पर्व और आराधना-कथाकोश आदि इसी प्रकारके कथासग्रह है, जिनमें लोककथासाहित्यकी विनोदपूर्ण शैलीकी स्वीकृतिके साथ ही जीवनकी उच्चतम साधना और आदर्शोंकी ओर भी सकेत पाया जाता है।

इस प्रकार प्रस्तुत भारतीय आख्यान-साहित्यका विश्वके साहित्यपर काफी प्रभाव पड़ा है। भारतीय कथाएँ यात्रियो, व्यापारियो और साधु-सन्यासियों-द्वारा भारतसे विदेशोंमें भी प्रचारित की गयी और विभिन्न भाषाओंके कथा-साहित्यमें आज भी उनके सहज रूपके दर्शन अप्राप्य नही है।

पचतन्त्रका पहला अनुवाद पल्लवी भाषामें हुआ और इस अनुवादित सस्करणके आधारपर आसुरी (Syriac) और अरबी भाषाओंमें इसके अनुवाद किये गये। ग्यारहवी शताब्दीमें इसका एक अनुवाद ग्रीक भाषामें हुआ और इस अनुवादके आश्रयसे लैटिन, जर्मन, स्लावेक तथा अन्यान्य युरॅपीय भाषाओंमें इसके अनुवाद प्रस्तुत किये गये। इसी प्रकार वेतालपचविंशतिकाका अनुवाद भी विभिन्न प्रान्तीय भाषाओंके साथ जर्मन और अँगरेजीमें भी हुआ है। मगोलियन कहानीकी एक पुस्तक (सिद्दीकूर) में इस ग्रन्थके अनेक अनूदित अंश पाये जाते है। सिंहासनद्वात्रिंशिकाके भी फारसीमें, स्याम तथा मगोलियाकी भाषाओंमें अनुवाद उपलब्ध है। शुकसप्ततिका 'तूतिनामह' के नामसे फारसीमें अनुवाद हुआ और इसके आधारपर अनेक भारतीय कथाओंका एशिया और युरॅप-भरमें प्रसार हुआ।[1] अवदानशतकका चीनी अनुवाद तीसरी शताब्दीमें हो चुका था और कथासरित्सागर तथा परिशिष्ट पर्वकी अनेक कथाओके रूपान्तर चीनी कहानियोंमें दृष्टि-गोचर होते है। सन्त जानकी 'बरलाम एण्ड जोसफ' (Barlaam and Joasaph) नामकी ग्रीक भाषाकी पुस्तकमें बुद्धका आंशिक चरित्र और अनेक जातक कथाओके रूपान्तर पाये जाते है। यह ग्रन्थ लातीनी, फ्रेंच, इटालियन, स्पैनिश, जर्मन अँगरेजी, स्वेडिन और डचमें भी प्राप्य है।[2]

इस प्रकार इस अनुवादपरम्परा-द्वारा जो विदेशोंमें भारतीय आख्यान-साहित्यका प्रसार हुआ है वह इस साहित्यकी महत्ताके साथ इसकी लोकप्रियता, रोचकता और जीवन कल्याणकारिताकी ओर एक स्पष्ट सकेत कर रहा है।

४. रूपकात्मक कथा-साहित्य (Allegorical Tales)

भारतीय आख्यान-साहित्यमें रूपकात्मक साहित्य एक विशेप प्रभावपूर्ण स्थान रखता है। प्रस्तुत साहित्यमें अमूर्त भावोको मूर्त रूपमें चित्रित किया गया है। जबतक हृदयके अमूर्त भाव अपने अमूर्त रूपमें रहते है वे इतने सूक्ष्म होते है कि इन्द्रियोंके द्वारा उनका सजीव रूपमें साक्षात्कार नही हो पाता, परन्तु ज्यो ही उन्हें रूपक और उपमाके साँचेमें ढालकर मूर्त रूप दे दिया जाता है, इन्द्रियोंके द्वारा उनका इतने सजीव रूपमें प्रत्यक्षीकरण होता है कि उन्ही भावोमें एक अद्भुत शक्ति सचरित हुई प्रतीत होने लगती है। और उस समय यही भाव हृदयपर सर्वाधिक गम्भीर प्रभाव छोड़नेमें समर्थ होते देखे जाते है। काव्यमें अरूपभावके रूपविधानके प्रचलनका यही मुख्य कारण है।

---

१ सस्कृत साहित्यकी रूप-रेखा, पृ० ३०७।

२ जातक (प्रथम खण्ड) की कथावस्तु। पृ० २९।

इस प्रकार हम सम्पूर्ण रूपकात्मक साहित्यका सृजन अमूर्तका मूर्तविधान करनेवाली शैलीके आधार-पर हुआ उपलब्ध पाते हैं, और जब हमारा ध्यान इस मूर्तविधान करनेवाली शैलीके उपकरणोकी ओर जाता है तो रूपक, उपमा, अतिशयोक्ति, सारोपा और साध्यवसाना लक्षणा भी इस शैलीके प्रमुख उपकरणोके रूपमे हमारे सामने उपस्थित होते हैं। सारोपा लक्षणा[1] मे उपमान और उपमेय एक समान अधिकरणवाली भूमिकामे उपस्थित रहते है और साध्यवसाना[2] मे उपमेयका उपमानमें अन्तर्भाव हो जाता हैं। सादृश्यमूलक सारोपाकी भूमिकापर रूपकालकारका प्रासाद खडा होता है और सादृश्यमूलक साध्यवसानाकी भूमिकापर अतिश-योक्ति अलकारका।[3]

यद्यपि अमूर्तको मूर्तविधान करनेवाली शैलीका सकेत उपनिपदो,[4] बौद्धसाहित्य[5] और जैन साहित्य[6] में भी पाया जाता है, परन्तु सिद्धर्पिने (वि० ९६२ मे) 'उपमितिभवप्रपचकथा' लिखकर सर्वप्रथम इस

---

१. "सारोपाऽन्या तु यत्रोक्तौ विपयी विषयस्तथा।" काव्यप्रकाश भाण्डारकर ओ० रि० इ०, पूना, पृ० ४७।

२ "विपय्यन्त'कृतेऽन्यस्मिन् सा स्यात् साध्यवसानिका।" काव्यप्रकाश, पृ० ४८।

३ "एव च गोणसारोपालक्षणामभवस्थले रूपकम्, गोणसाध्यवसानलक्षणासभवस्थले त्वतिशयोक्तिरिति फलितम्।" काव्यप्रकाश, वामनी टीका, पृ० ५९३।

४ बृहदारण्यक उपनिषद्के उद्गीथब्राह्मण (१, ३) मे और छान्दोग्य उपनिषद् (१, २)मे एक रूपकात्मक आख्यायिका चित्रण है। गीताके सोलहवें अध्यायमे इन्द्रियोकी पुण्य तथा पापात्मक वृत्तिका दैवी तथा आसुरी सम्पत्तिके रूपमे उल्लेख किया गया हैं।

५. जातक निदानकथाके 'अविदूरे निदान'की मारविजयसम्बन्धी आख्यायिकामे और 'सन्तिके निदान' की अजपाल वादिके नीचेवाली आख्यायिकामे भी रूपकात्मक शैलीका स्पष्ट निदर्शन है।

६. सूत्रकृतागमे रूपकात्मक शैलीके सकेत मिलते है। जैन धर्मकथा-साहित्यके विवरणमे रूपकात्मक शैलीपर लिखे गये इस ग्रन्थके पुण्डरीक दृष्टान्तका और उसमें प्रयुक्त रूपकमालाका उल्लेख किया जा चुका है। उत्तराध्ययनके शुष्कपत्र और बकरेका दृष्टान्त भी इसी शैलीमे चित्रित हुआ है। उत्तराध्ययनके नवें अध्ययन (नमि प्रव्रज्या) मे अनेक रूपकोका उल्लेख हुआ है। भगवान् नमिनाथ विरक्त होकर ज्यो ही अभिनिष्क्रमणमे सलग्न होते है। सम्पूर्ण मिथिलानगरीमे हाहाकार मच जाता है। उस समय इन्द्र ब्राह्मणका वेप बनाता है और भगवान्के पास पहुँचकर प्रश्न करता है – भगवन्, आज मिथिलानगरीमे यह क्या कोलाहल सुनाई पड रहा है ? भगवान् उत्तरमें कहते हैं – आज मिथिलाका पत्र-पुष्पोसे मनोहर एक चैत्यवृक्ष प्रचण्ड आँधीसे गिरा जा रहा है, ये पक्षी शोकाकुल हो रहे है। इस कथानकमे भगवान् नमिनाथ चैत्यवृक्षके रूपमे तथा मिथिलाकी जनता पक्षियोके रूपमे रूपित की गयी है। उत्तराध्ययनके प्रस्तुत अध्ययनमे श्रद्धारूपी नगर, सवर-रूपी किला, क्षमारूपी सुन्दर गढ, तीन गुप्तिरूपी शतघ्नी, पुरुषार्थरूपी धनुष, ईर्यारूपी प्रत्यचा, धैर्यरूपी तूणीर, तपस्यारूपी बाण और कर्मरूपी कवच आदि अनेक रूपकोका उल्लेख हैं। प्रस्तुत ग्रन्थके सत्ताईसवे अध्ययनमे गरयाल बैलोके साथ स्वच्छन्द प्रवृत्ति करनेवाले शिष्योकी तुलना की गयी है। समराइच्च कहा (हरिभद्रसूरि) का मधुबिन्दु-दृष्टान्त विशुद्ध रूपकात्मक शैलीमें लिखा हुआ है।

पिण्डैपणा और आवश्यकमे पाये जानेवाले रूपकोका निर्देश स्वय सिद्धर्पिने ही अपनी 'उप-मितिभवप्रपचकथा'मे किया है।

शैलीकी काव्यपरम्पराका सूत्रपात किया। और आज यह ग्रन्थ भारतीय रूपक-साहित्यका सर्वप्रथम[1] और अनुपम[2] ग्रन्थ माना जाता है। यद्यपि इसके पहलेकी 'मदन जुज्झ' नामकी एक रूपकात्मक सक्षिप्त अपभ्रशरचना भी उपलब्ध है, जिसमे उसकी रचनाका काल वि० स० ९३२ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी गुरुवार अकित है, परन्तु इसकी भाषाकी प्राचीनतामे सन्देह होनेसे उसका सर्वप्रथम रूपकात्मक ग्रन्थके रूपमे हम यहाँ उल्लेख नही कर रहे है। प्रस्तुत ग्रन्थमे जीवके ससार-परिभ्रमणकी कष्टगाथा और उसके कारणोका उपमाके सहारे वडे ही सुन्दर ढंगसे चित्रण किया गया है। भाषा सस्कृत होनेपर भी वहुत सरल और प्राजल है और शैली इतनी आकर्षक है कि ग्रन्थको एक वार प्रारम्भ करके अन्त तक पढे बिना छोडनेको जी नही चाहता। ग्रन्थगत विविध विशेषताओका निर्देश करनेके लिए न यहाँ स्थान है और न प्रसग ही। उनका परिज्ञान तो ग्रन्थको सम्पूर्ण वाँचनेपर ही हो सकता है। हम यहाँ इस ग्रन्थको भारतीय साहित्यका सर्व-प्रथम रूपक ग्रन्थ वतलाकर यह दिखाना चाहते है कि इस रूपक कथाके कर्ताने अपनी रचनामे स्वीकृत शैलीका प्रमुख उपकरण उपमा[3]-को वतलाया है और आवश्यकचूर्णि, पिण्डैषणा तथा उत्तराध्ययनके प्रसगोका उल्लेख करते हुए यह भी सूचित किया है कि हमारी रचनाकी शैली पूर्वाचार्य-परम्परासम्मत भी है।[4]

उत्तरवर्ती रूपकात्मक साहित्यकी शैलीके सृजनमे रूपक, सारोपा और साध्यवसाना लक्षणा ही उपादान उपकरणके रूपमे स्वीकृत दिखलाई देती है। प्रवोधचिन्तामणिके कर्ता जयशेखरसूरिने अपने प्रवन्ध-काव्यके निर्माणमे स्पष्ट रूपसे सारोपा और साध्यवसाना लक्षणा[5] को प्रमुख समर्थक माना है। इसके सिवाय अपनी कल्पना और पूर्ववर्ती आगमोकी रूपकात्मक शैलीको भी अपनी प्रवन्ध-पद्धतिका वीज वतलाया है।[6]

अमूर्तका मूर्तविधान करनेवाली लाक्षणिक शैलीमे लिखा गया दूसरा ग्रन्थ कृष्ण मिश्रका 'प्रवोधचन्द्रोदय' है। इसमे मोह, विवेक, ज्ञान, विद्या, वुद्धि, दम्भ, श्रद्धा, भक्ति, उपनिषद् आदि अमूर्त भावोको स्त्री और पुरुष-पात्रोके रूपमे मूर्तविधान करके आध्यात्मिक अद्वैतवादका प्रतिपादन किया गया है।

---

१ डॉ० जेकोवीने उपमितिभवप्रपचकी अँगरेजी प्रस्तावनामे लिखा है? "I did find something still more important the great literary value of the U Katha and the fact that is the first allegorical work in Indian literature"

२. सिद्धव्याख्यातुराख्यातु महिमान हि तस्य क। समस्त्युपमितिर्नाम यस्यानुपमिति कथा॥ प्रद्युम्नसूरिका समरादित्य-सक्षेप।

३ इहान्तरङ्गलोकाना ज्ञान जल्प गमागमम्। विवाहो वन्धुतेत्यादि सर्वा लोकस्थिति कृता॥७८॥
सा च दृष्टा न विज्ञेया यतोऽस्त्येव गुणान्तरम्। उपमाद्वारत सर्वा वोधार्थं सा निवेदिता॥ ७९॥
उपमितिभवप्रपचका पीठवन्ध।

४ प्रत्यक्षानुभवात् सिद्ध युक्तितो यन्न दुष्यति। तत्कल्पितोपमान तत् प्रत्यक्षेऽप्युपलभ्यते॥ ८०॥
तथाहि यथाऽऽवश्यके – साक्षेप मुद्गशैलस्य पुष्कलावर्तकस्य च। स्पर्द्धा सर्पाश्च कोपाद्या नागदत्तकथानके॥ ८१॥ तथा
पिण्डैषणाया मत्स्येन कथित निजचेष्टितम्। उत्तराध्ययनेऽप्येव सदिष्ट शुष्कपत्रकै॥८२॥
अतस्तदनुसारेण सर्व यदभिधास्यते। अत्रापि युक्तियुक्त तद्विज्ञेयमुपमा यत॥ ८३॥
—उपमितिभवप्रपचकथाका पीठवन्ध।

५ सारोपा लक्षणा क्वापि क्वापि साध्यवसानिका। धौरेयता प्रपद्येते ग्रन्थस्यास्य समर्थने॥५०॥
—प्रवोधचिन्तामणिका प्रथम अधिकार

६ अत्रात्मचेतनादीना यद् दाम्पत्यादिवर्णनम्। तत्सर्व कल्पनामूल सापि श्रेयस्करी क्वचित्॥४७॥
मीनमैनिकयो पाण्डुपत्रपल्लवयोरपि। या मिथ सकथा सूत्रे वद्धा सा किं न वोधये॥४८॥
नायकत्व कषायाणा कर्मणा रिपुसैन्यताम्। आदिशन्नागमोऽप्यस्य प्रवन्धस्येति वीजताम्॥४७॥
—प्रवोधचिन्तामणि, प्रथम अधिकार।

प्रस्तुत नाटकके तीसरे अकमे क्षपणक (दिगम्बर जैनमुनि) नामक पात्रको बहुत ही घृणित और भ्रष्ट रूपमें चित्रित किया है। बौद्ध भिक्षुका चित्रण भी इसी पद्धतिपर किया गया है।

विभिन्न धार्मिक सिद्धान्तोंके आधारपर आक्रमणात्मक साहित्यसृजनकी शैली आधुनिक नही है।[1] सम्भव है, कृष्णमिश्र ने हरिभद्रसूरिका 'धूर्ताख्यान' और हरिषेण तथा अमितगतिकी 'धर्मपरीक्षाओ' का वाचन किया हो और उसके पश्चात्, 'प्रबोधचन्द्रोदय' लिखनेकी तरग उनके मनमे उठी हो। जो कुछ हो 'प्रबोध-चन्द्रोदय' की यह आक्रमणात्मक शैली किसी प्रतिशोधात्मक भाव-बीजसे उत्पन्न हुई मालूम देती है। फिर भी कविने अद्वैतवाद और अध्यात्मविद्या-जैसे नीरस और शुष्क दार्शनिक विषयको जिस नाटकीय मनोरजक शैलीमे चित्रित किया है, नि सन्देह उनका यह प्रयत्न सर्वप्रथम और सर्वोत्तम है।

यद्यपि कृष्णमिश्रके द्वारा अपने नाटकमें रूपकात्मक शैलीकी स्वीकृतिका स्रोत और उसे लिखनेकी मूल प्रेरणा बृहदारण्यक उपनिषद्के उद्गीथ ब्राह्मण (१, ३) मे वर्णित आख्यायिकाके आधारपर गृहीत कही जा सकती है, परन्तु अधिक सम्भव है कि उन्होंने प्रस्तुत शैलीके महान् मूर्तरूपके दर्शन 'उपमितिभव-प्रपचकथा' में भी किये हो।

बुन्देलखण्डके चन्देल राजा कीर्तिवर्माके समयमे इस नाटककी रचना हुई और वि० स० ११२२ में उक्त राजाके सामने यह नाटक अभिनीत हुआ भी बतलाया जाता है।

रूपकात्मक शैलीमे लिखा गया तीसरा ग्रन्थ 'मयण पराजय चरिउ'[2] है। यह अपभ्रश-प्राकृतकी रचना है और इसके कर्ता चगदेवके पुत्र हरिदेव है। इसका रचनाकाल सुनिश्चित नही है, फिर भी यह सुनिश्चित है कि इसकी रचना यश पालके 'मोहराज-पराजय' के पहले हो चुकी थी[3]। इसकी रचना पाँच सन्धियोमें समाप्त हुई है और इनमे मुक्ति कन्याको वशी करनेके लिए कामदेव और जिनराजके बीच जो सग्राम छिडता है, जिनराजके द्वारा कामदेवको पराजित किया जाता है और स्वयवरमें मुक्तिकन्या जो जिनराजको वरण करती है — आदि घटनाओका चित्रण अनेक रूपकोके आधारपर बडे ही आकर्षक ढगसे हुआ है। नागदेव-विरचित संस्कृतका 'मदनपराजय' इसी प्राकृत-रचनाके आधारपर ग्रथित किया गया है।

रूपकात्मक शैलीमे लिखा गया कवि यश पालका 'मोहपराजय'[4] नाटक एक बडी ही महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमे ऐतिहासिक नामोके साथ लाक्षणिक चरित्रोका सम्मिश्रण और मोहपराजयका चित्रण बडी ही कुशलता और निपुणताके साथ किया गया है। सम्पूर्ण रचनामे कही भी क्लिष्ट कल्पना और बन्धकी विषमता दिखलाई नही देती।

इसके प्रथमाकमे मोहराजके सन्देश लेनेके लिए भेजा गया ज्ञानदर्पण नामक गुप्तचर समाचार देता है कि मोहराजने मनुष्यके मानस नगरको घेर लिया है और उसका राजा विवेकचन्द्र, अपनी शान्ति नामक पत्नी और कृपासुन्दरी नामकी कन्याके साथ वहाँसे निकल भागा है। ज्ञानदर्पण शिष्टाचार और सुनीतिकी कीर्तिमजरी नामकी कन्या जो कुमारपालकी स्त्री है, से भेट होनेका भी समाचार सुनाता है और बतलाता है कि पति-परित्यक्ता कुमारपालकी स्त्रीने अपने पति-द्वारा स्वयको और अपने भाई प्रतापको छोड देनेके कारण मोहराजसे सहायताकी प्रार्थना की है जो शीघ्र ही कुमारपालपर चढाई करनेके प्रयत्नमें है।

दूसरे अकमे हेमचन्द्र आचार्यके तपोवनमे कुमारपालकी विवेकचन्द्रके साथ भेंटका उल्लेख और कुमारपालका विवेकचन्द्रकी कन्या कृपासुन्दरीके प्रति आसक्ति-भावका प्रदर्शन है। दोनोके पारस्परिक

---

१ विशेष जानकारी प्राप्त करनेके लिए देखिए, मुनि जिनविजय-द्वारा सम्पादित 'धूर्ताख्यान' की डॉ० ए० एन० उपाध्ये-द्वारा लिखित THE DHURTAKHYANA: A CRITICAL STUDY 'धूर्ताख्यान एक आलोचनात्मक अध्ययन' शीर्षक महत्त्वपूर्ण अँगरेजी प्रस्तावना।

२ भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा प्रकाशित।

३ इस सवन्धका विस्तृत विवेचन नागदेवके समयनिर्णयके प्रसगमे आगे किया है।

४ यह नाटक 'गायकवाड बडौदा सीरीज' में प्रकाशित हो चुका है।

सवादके समय महारानी राज्यश्री अपनी रौद्रता नामकी सखीके साथ उपस्थित होती है और यह दृश्य देख राजामे रूठ जाती है।

तीसरे अकमे पुण्यकेतुकी नीतिसे स्वय महारानी कृपासुन्दरीकी माँग करनेके लिए बाध्य होती है। विवेकचन्द्र इस प्रार्थनाको स्वीकार करता है, परन्तु इस शर्तपर कि सात व्यसनोको प्रश्रय नही दिया जायेगा तथा जनताके नि सन्तान अवस्थामे दिवगत होनेपर राजा उसकी सम्पत्तिको आत्मसात् नही करेगा।

चौथे अकमे द्यूत, मद्य, मास, आखेट, परस्त्रीसेवन आदि सभी व्यसनोको निर्वासित कर दिया जाता है और पचम अकमे मोहराज पराजित होते है और विवेकचन्द्र पुन सिंहासनासीन होते है।

'मोहपराजय' तेरहवी शताब्दीकी रचना है। इसका कर्ता यश पाल चक्रवर्ती अभयदेवका राजकर्मचारी था, जिसने कुमारपालके पश्चात् १२२९ से १२३२ A. D तक राज्य किया। धारापद्रमें जिस समय कुमारविहारसे भगवान् महावीरकी मूर्तिकी स्थापना की गयी थी, उसी समय उक्त रूपकका अभिनय हुआ था।

यश पालके मोहपराजयसे मिलता-जुलता एक रूपकात्मक प्रबन्ध मेरुतुगसूरिकी प्रबन्धचिन्तामणि[1] के परिशिष्ट भागमे पाया जाता है। प्रबन्धचिन्तामणिमे विभिन्न महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रबन्धोका सकलन किया गया है। इसकी रचना वि० स० १३६१ वैशाख शुक्ला पूर्णिमा रविवारके दिन सम्पूर्ण हुई है। अत इस रूपकात्मक प्रबन्धका रचनाकाल भी प्रबन्ध चिन्तामणिका रचनाकाल ही ठहरता है।

प्रस्तुत रूपकात्मक प्रबन्धकी रचना उस समयके दृश्यको ध्यानमे रखकर की गयी है, जब महाराजा कुमारपालने अपने धर्मगुरु आचार्य हेमचन्द्रके निकट जैन धर्मकी दीक्षा लेकर अहिंसाव्रतको अगीकार किया था।

मोहपराजय और इस रूपकात्मक प्रबन्धके तुलनात्मक अध्ययन करनेसे ऐसा मालूम देता है कि मेरुतुगसूरिने यश पालके मोहपराजयसे प्रेरणा लेकर ही अपने इस रूपकात्मक प्रबन्धका प्रणयन किया है।

इस प्रबन्धमे कुमारपाल राजा और अहिंसाके विवाह-सम्बन्धका रूपकात्मक ढगसे चित्रण किया है। त्रिलोकीसम्राट् अर्हद्धर्मकी अनुकम्पा देवीसे अहिंसा कन्याकी उत्पत्ति होती है। आचार्य हेमचन्द्रके आश्रममे पालित-पोषित होकर यह वृद्धकुमारी हो जाती है। कुमारपाल घुडदौडकी क्रीडा करनेके लिए जाते समय इसे देखते है और उसके अनिन्द्य सौन्दर्यपर मुग्ध हो जाते है। राजा आचार्य हेमचन्द्रसे इस कुमारीकी याचना करते है। आचार्य इसकी दुष्पूरणीय प्रतिज्ञा[2] की ओर सकेत करते है। कुमारपाल अहिंसा कुमारीकी प्रिय-सखी सुबुद्धि और स्वय हेमचन्द्राचार्यके द्वारा प्रतिबुद्ध किये जानेपर प्रतिज्ञा-पूर्ति शर्तको स्वीकार करते है और इस वृद्धकुमारीके साथ उनका पाणिग्रहण हो जाता है। इस प्रबन्धकी सक्षिप्त कथा-वस्तु यही है।

यदि हम प्रस्तुत प्रबन्धकी कथा-वस्तुका यश पालके मोहपराजयके द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अकोमे वर्णित कथा-वस्तुसे तुलना करें तो दोनोमें पात्रोके कुछ परिवर्तित नामोके अतिरिक्त अधिक अन्तर प्रतीत नही होता। वहाँ कुमारपाल विनयचन्द्रकी कृपासुन्दरी नामकी कन्यापर मोहित होते है तो यहाँ भी अर्हद्धर्म-

---

१. यह ग्रन्थ मुनि श्री जिनविजयजी-द्वारा सम्पादित होकर हिन्दी भाषान्तरके साथ (वि० १९९७ मे) 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' मे प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रन्थके रूपकात्मक प्रबन्धकी पाद-टिप्पणी (पृ० १५३) में विद्वान् सम्पादकने लिखा है कि यह परिशिष्टात्मक प्रबन्ध, इस ग्रन्थकी बहुसख्यक पोथियो-में लिखा हुआ मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि मेरुतुगसूरिने ही इसकी रचना की है, पर ऐति-हासिक न होकर यह एक रूपकात्मक प्रबन्ध है। इसलिए इसको परिशिष्टके रूपमें ग्रन्थके अन्तमें जोड दिया जाता है।

२ सत्यवाक् परलक्ष्मीभुक् सर्वभूताभयप्रद । सदा स्वदारसतुष्टस्तुष्टो मे स पतिर्भवेत् ।।५।।
सुदूर दुर्गतेर्बन्धून् द्यूतान् सप्त पौरुषान्। निर्वासयति यश्चित्तात् स शिष्टो मे पतिर्भवेत् ।। ६ ।।
मत्सोदर सदाचार सस्थाप्य हृदयासने। तदेकचित्त सेवेत स कृती मे पतिर्भवेत् ।।७।। प्रबन्धचिन्ता-मणि (सस्कृत), पृ० १२७

की अहिंसाकुमारीपर। वहाँकी कृपासुन्दरी विवेकचन्द्रकी सहधर्मिणी शान्तिकी कन्या है तो यहाँकी अहिंसाकुमारी अर्हद्धर्मकी धर्मपत्नी अनुकम्पा देवीकी। वहाँ कृपासुन्दरीको माँगके समय विनयचन्द्रके द्वारा शर्त रखी जाती है और उसी शर्तसे मिलती-जुलती शर्त यहाँ भी अहिंसाकुमारीकी सखी सुबुद्धि-द्वारा उपस्थित की जाती है। सात व्यसनोका निष्कासन दोनोका एक-सा ही है। मोहपराजयके प्रथमाकमे वर्णित पतिपरित्यक्ता कुमारपालकी पत्नी कीर्तिमजरीका नामोल्लेख प्रस्तुत प्रबन्धमे भी पाया जाता है। हाँ, दोनोके इस वर्णनमे इतना अन्तर अवश्य है कि वहाँकी कीर्तिमजरी कुमारपालसे रुष्ट होकर मोहराजसे सहायता माँगती हुई चित्रित की गयी है और यहाँ कुमारपालके स्वर्गवासके अवसरपर वह (अकेली कीर्ति, कीर्तिमजरी नही) देशान्तरमे जाती हुई। इसके सिवाय वहाँका शिष्टाचार कीर्तिमजरीका पिता है तो यहाँका सदाचार अहिंसाकुमारीका सहोदर भाई।

उल्लिखित विवरणसे स्पष्ट हो जाता है कि यश पालके मोहपराजयको मेरुतुगसूरिके प्रस्तुत प्रबन्धका प्रेरणात्मक आधार बतलाना कहाँतक सगत है और यह भी उस स्थितिमे जब कि मोहपराजयकी रचना प्रबन्धचिन्तामणिसे लगभग सवा सौ वर्षसे भी अधिक पूर्वमे हो चुकी थी।

वेकटनाथका 'सकल्पसूर्योदय' भी एक सुन्दर रूपकात्मक नाटक है। इसका रचनाकाल चौदहवी शताब्दी है। 'सकल्पसूर्योदय' मे वेदान्तविद्याकी ही प्रतिष्ठा और महत्ता दिखलायी गयी है। श्री कृष्ण भगवान्-का सकल्प है कि "मै ससारके समस्त व्याकुल और दु खी प्राणियोको ससारके दु खोसे मुक्त करूँगा।" इसी सकल्परूपी सूर्यके उदयकी अवतारणाकी दृष्टिसे प्रस्तुत नाटकका प्रणयन हुआ है। परन्तु सम्पूर्ण नाटकको बाँचनेपर प्रतीत होता है कि पाँच अगकी इस रचना[1] मे नाटककार अपने लक्ष्यमे सफल नही दिखलाई दे रहे है। उनका 'सकल्पसूर्योदय' हो ही नही सका है। हम देखते है कि पचम अकके अन्तमे विवेकके विपक्षी राजा महामोहकी ही तूती बोल रही है। वह दुर्वासनाको आज्ञा दे रहा है[2] कि वह ज्योतिषियोसे कह दे कि महामोहने अपने काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य, डम्भ और स्तम्भ नामक सात मन्त्रियोको मुक्तिक्षेत्र रूपसे प्रसिद्ध सात राजधानियाँ और सातो समुद्रसहित महाद्वीप शासन करनेके लिए दानमें दे दिये है और आजका ससार देवताओका बहिष्कार करके उनके स्थानपर हमारी ही पूजा करेगा और अबसे नमः, स्वस्ति, स्वाहा शब्दोका प्रयोग – 'महामोहाय नमः', 'महामोहाय स्वस्ति', 'महामोहाय स्वाहा' के रूपमें हमारे साथ ही हुआ करेगा। महामोह कह रहा है कि दुर्वासिने, तुम ज्योतिषियोसे कह दो कि वे इस बातको अपनी नोटबुकमें अच्छी तरह दर्ज कर लें।

इस नाटकमें भी हमें स्थान-स्थानपर आक्रमणात्मक शैलीके दर्शन मिलते है। दूसरे अकमें आर्हत, बौद्ध, साख्य, आक्षपाद, सौत्रान्तिक, योगाचार, वैभाषिक, माध्यमिक आदिके मतोका खण्डन किया गया है, उनका परिहास किया गया है और उनके साथ मूर्ख और पापी-जैसे अपशब्दोका प्रयोग किया गया है।

श्री जयशेखरसूरिका 'प्रबोधचिन्तामणि' भी बडा ही महत्त्वपूर्ण और रोचक रूपकात्मक प्रबन्ध है। वि० स० १४६२ मे स्तम्भनक नरेशकी राजधानीमे ग्रन्थकारने प्रस्तुत प्रबन्धकी रचना की।[3] जयशेखर सूरिने

---

१ प्रस्तुत नाटकका सम्पादन आर० कृष्णमाचारि बी० ए० बी० एल० मदुराने किया है और एच० एम० बागुचीने 'मैडिकल हॉल प्रेस, बनारस-द्वारा इसे प्रकाशित किया है। इस सस्करणमे केवल पाँच अक है। नाटकके अन्य किसी सस्करणका प्रयत्न करनेपर भी हमे पता नही चल सका है। इसलिए यह कहना कठिन है कि नाटककार स्वय ही इस रचनाको पूर्ण नही कर सके और अकालमे ही काल-कवलित हो गये या किसी अपूर्ण प्रतिके आधारसे ही इसका प्रकाशन हुआ है। विद्वानोको इस दिशामे खोज करनेकी जरूरत है।

२ सकल्पसूर्योदय, पृ० २५०, २५१।

३ यमरसभुवनमिताब्दे (१४६२) स्तम्भनकाधीशभूषिते नगरे।
श्रीजयशेखरसूरि प्रबोधचिन्तामणिमकार्षीत् ॥ ५ ॥ प्र० चि० प्र०।

अपने प्रबन्धके प्रथमाधिकारमें ही इस बातका निर्देश किया है कि उनके प्रबन्धगत कथावस्तुके विवरणका आधार भगवान् पद्मनाभके शिष्य धर्मरुचि मुनि-द्वारा निरूपित आत्म-स्वरूपका चित्रण है और उसे लेकर ही उन्होंने रूपकात्मक प्रबन्धमे पल्लवित किया है।[1]

प्रबोधचिन्तामणि सात अधिकारोंमे समाप्त हुआ है। पहले अधिकारमे परमात्माके स्वरूपका वर्णन है। दूसरेमे भगवान् पद्मनाभका चरित्र और धर्मरुचि मुनिका चित्रण है। तीसरेमे मोह और विवेककी उत्पत्ति तथा मोहको राज्य-प्राप्ति दिखलायी गयी है। चौथेमे मोहका राज्य, सयमश्रीके साथ विवेकका पाणिग्रहण और विवेकको राज्य-लाभका निरूपण किया गया है। पाँचवेंमे कामके दिग्विजयका विवेचन है। छठेमे विजयके लिए विवेककी यात्राका वर्णन है और सातवें अधिकारमे मोह और विवेकका युद्ध, विवेककी विजय और मोह-को पराजय तथा परमात्मस्वरूपका हृदयग्राही चित्रण किया गया है। छठे अधिकारमे कलिकृत प्रभावके निरूपणके अवसरपर तत्कालीन सामाजिक दशाका बहुत ही यथार्थ और मार्मिक निरूपण हुआ है। इसी अवसरपर कही गयी जयशेखरसूरिकी यह उक्ति कितनी मर्मस्पर्शी है कि "भगवान् महावीरकी सन्तान होने-पर भी आजके साधु विभिन्न गच्छोंमे विभक्त हैं और पारस्परिक सौहार्दके स्थानपर एक-दूसरेके दुश्मन बने हुए हैं[2]।" जयशेखरसूरिके हृदयकी वह गम्भीर टीस आज भी ज्योंकी त्यों ताजी बनी हुई है।

बुच्चरायका 'मयणजुज्झ'[3] भी एक रोचक रूपकात्मक प्रबन्ध है। यह अपभ्रंश भाषामें निबद्ध किया गया है और इसकी रचना १५८९ (वि० स०) आश्विन शुक्ला प्रतिपद, शनिवार हस्तनक्षत्रमें समाप्त हुई है। प्रस्तुत प्रबन्धमें भगवान् पुरुदेव-द्वारा किये गये मदनपराजयका बहुत ही सुन्दर ढगसे चित्रण किया गया है। रचनाका प्रारम्भ निम्न प्रकारसे होता है

जो सव्वट्ठसिमणहुति चवीयो तिन्नाणचित्तन्तरे
उववन्नो सुरदेवकूखरयणो इक्खागकुलमडणो।
भुत्तं भोगसरज्जदेसविमले पाली पवज्जा पुणो
सपत्ते निरवाण देव रिसहो काऊण सो मगल ॥ १ ॥

गाथा ॥ जिणवरह वाकवाणी प्रणमउं सुहमत्तदेहजइजणणी।
वन्नउं सुमयणजुज्झं किमजित्तउ रिसह जिणनाह ॥ २ ॥

रिसह जिणवर पढम तित्थयर,
जिणधम्मउ धरण, जुगलधम्म सव्वइ निवारण,
नाभिरायकुलिकवल, भव्वाणि ससारतारण ॥
जो सुर इदह वदीयउ सदा चलण सिर धारि।
कहि किउ रतिपति जित्तियउ ते गुण कहउ विचारि ॥ ३ ॥
सुणहु भवीयण एहु परमत्थु,
तजि चिंता परिकथा, इक ध्यान हुइ कन्नु दिज्जइ,
मनु विहसइ करल जिनु, हुइ समाधियहु अमीय पिज्जइ,
परचइ जिन्हा चित एहु रसु घालइ कसमल खोइ।
पुनरिप तिन्ह ससारमहि जम्मणमरण न होइ ॥ ४ ॥

---

[1] प्र० चि० २।१०।

[2] एकश्रीवीरमूलत्वात् सौहृदयस्योचितैरपि। सापत्न्यं धारित तेन पृथग्गच्छीयसाधुभि ॥
—प्र० चि० ६।८९।

[3] यह रचना हमे श्री अगरचन्दजी नाहटाकी कृपासे प्राप्त हुई है। इसकी पाण्डुलिपि पौष शुक्ला द्वादशी वि० स० १७६७ मे प० दानधर्म-द्वारा मरोट्टकोट्टमें की गयी। प्रतिके अन्तमे इस तथ्यका इस प्रकार उल्लेख हुआ है "स० १७६७ वर्षे पौषमासे शुक्लपक्षे १२ तिथौ पं० दानधर्मलिखित श्रीमरोट्टकोट्टमध्ये।"

और अन्त निम्न प्रकार होता है

राय विक्कमतणउ सवत्तु,
नवासी पनरसइ शरदरितु आसू बखाणउ,
तिथि पडिवा सुकिलपखु सनिसवारु करनखतु जाणउ,
तिनु दिन बल्हंपि संठियउ, मयणजुज्झ सुविसेसु ।
करत पंढति सुणत नरहु जयउ साजि रिसहेसु ॥

भूदेव शुक्लका 'धर्मविजय'[1] नाटक भी रूपकात्मक साहित्यकी एक छोटी-सी भावपूर्ण रचना है। श्री प० नारायण शास्त्री खिस्तेका अनुमान है कि प्रस्तुत नाटककी रचना १६वी शताब्दीमे हुई है और भूदेव शुक्ल अकबरके समकालीन रहे हैं। धर्मविजय पाँच अकोमे समाप्त हुआ है। इसमे धर्म और अधर्मको नायक तथा प्रतिनायक वनाया गया है। अधर्म अपने परिवार -- दुराचार, क्रोध, असत्य, प्राणिहिंसा, लोभ, परस्परप्रीति और व्यभिचारके द्वारा लोककी समस्त धार्मिक वृत्तियोपर आक्रमण कर लेता है, परन्तु अन्तमे धर्म स्वय अपने और अपने परिवारके द्वारा अधर्म और उसके परिवारका मूलोच्छेद कर डालता है और इस प्रकार अन्तमें धर्मकी विजय होती है।

नाटकके तुलनात्मक अध्ययन करनेसे प्रतीत होता है कि नाटककारने अपने समयके समाजकी प्रवृत्तियो-का सम्पूर्ण प्रतिविम्ब नाटकीय कथावस्तुमें बडी ही कुशलताके साथ उडेल दिया है। उस समय विभिन्न प्रदेशोमे अनाचार, व्यभिचार, झूठ, हिंसा और चोरी आदि अमानवीय वृत्तियोका कितना अधिक और भयकर प्रचार था, यह वात प्रस्तुत नाटकके अध्ययनसे भलीभाँति जानी जा सकती है। जगह-जगह द्यूत-क्रीडाएँ हुआ करती थी, पान-गोष्ठियोमें खुले आम मदिरा-पान होता था, वैभवकी अट्टालिकाएँ और प्रागण वेश्याओंके नृत्यसे मुखरित रहते थे, परकीयाओको स्वाधीन और स्वीय वनाया जाता था तथा धर्माधिकारी धर्मके नाम विधवाओका सतीत्व भग किया करते थे। अधर्मके प्रश्नके उत्तरमें पौराणिकने उस समयकी देशकी परिस्थिति-को पद्योमें सम्पूर्ण रूपसे उपस्थित कर दिया है। पौराणिक अधर्मसे कहता है, "महाराज, इस समय समस्त देशोकी नदियोमे वहुत ही थोड़ा पानी रह गया है। सज्जनोका भाग्य मन्द हो चुका है, दुर्जनको अनेक प्रकारसे आराम मिल रहा है, वृक्षोमें फल वहुत ही कम आ रहे हैं, कुलीन स्त्रियोने मर्यादा तोड दी है और पाखण्डीकी पूजा हो रही है। मेघ कही-कही ही पानी बरसाता है, पृथ्वीकी उर्वरा शक्ति क्षीण हो गयी है, धान्य कम पैदा होने लगा है। युवतियाँ अपने पतिसे द्रोह करने लगी हैं, गृहस्थ युवक परस्त्री-लम्पट हो गये हैं। पिता अपने नालायक पुत्रोका जीवित अवस्थामें ही श्राद्ध करना चाहता है। राजाओमे क्रोध और लोभकी वासनाएँ घर कर चुकी हैं और चोर तथा हिंसक जगलोकी प्रत्येक दिशामे अपना डेरा डाले हुए है।"[2]

कवि कर्णपूरके द्वारा विरचित 'चैतन्यचन्द्रोदय' भी रूपकात्मक शैलीसे लिखा गया नाटक है। इस नाटककी रचना शक सं० १४०७ में[3] नीलगिरि-नरेश गजपति प्रतापरुद्रदेवकी आज्ञासे हुई थी। प्रस्तुत नाटक दस अकोमे समाप्त हुआ है और श्रीकृष्ण चैतन्य[4] के माहात्म्यको दिखलानेकी दृष्टिसे ही इसका प्रणयन हुआ

---

१ यह नाटक 'प्रिन्स ऑव वेल्स सरस्वती-भवन सीरीज' बनारससे राजकीय सस्कृत कॉलेजके सरस्वती-भवनके उपाध्यक्ष, साहित्याचार्य नारायण शास्त्री खिस्ते-द्वारा सम्पादित होकर सन् १९३० मे प्रकाशित हो चुका है।

२ ध० वि० ना० द्वि० अ०।

३ शाके चतुर्दशशते रविवाजियुक्ते गौरो हरिर्धरणिमण्डल आविरासीत्।
तस्मिश्चतुर्नवतिभाजि तदीयलीला ग्रन्थोऽयमाविर्भवत्कतमस्य वक्त्रात्॥ चै० च०, पृ० स० २०-१०।

४. चैतन्यदेव सर्वप्रथम माध्वाचार्य-द्वारा प्रवर्तित ब्राह्म-सम्प्रदायमे दीक्षित हुए थे, परन्तु वादमे इन्होने गौडीय वैष्णव मतका प्रवर्तन किया, जिसका रुद्रसम्प्रदायके अन्तर्गत वल्लभाचार्यके मतसे अधिक साम्य है। चैतन्यदेवकी शिष्य-परम्परामें अनेक वैष्णव कवि वँगला और हिन्दीमे मधुर पदावलीकी रचना कर गये है। —हि० सा० भू०, पृ० ५२

है। फलतः नाटकीय घटनावैचित्र्यका इसमें एकदम अभाव है और इसे पढ़ते-पढ़ते पाठकका जी ऊब जाता है। हाँ, भाषाकी दृष्टिसे अवश्य ही रचना सरस और सुन्दर बन पडी है। दस अकोमे चैतन्यदेवके स्वानन्दावेश, सर्वावतार दर्शन, दानविनोद, सन्यास-परिग्रह, अद्वैतपुरविलास, सार्वभौम अनुग्रह, तीर्थाटन, प्रतापरुद्र-अनुगह, मथुरागमन और महामहोत्सवका अपने ढगका अद्भुत वर्णन किया गया है।

वादिचन्द्रसूरिका 'ज्ञानसूर्योदय' नाटक भी एक सुप्रसिद्ध रूपकात्मक रचना है। वादिचन्द्रसूरि मूलसघी ज्ञानभूषण भट्टारकके प्रशिष्य थे और प्रभाचन्द्र भट्टारकके शिष्य। प्रस्तुत नाटककी रचना माघ सुदी अष्टमी वि० स० १६४८ के दिन मधूकनगरमे हुई थी।[1]

ज्ञानसूर्योदयके अनुशीलनसे प्रतीत होता है कि इसकी रचना कृष्णमिश्रके प्रबोधचन्द्रोदयके आधारपर हुई है और उसमे अपनायी गयी आक्रमणात्मक शैलीकी प्रतिक्रियापूर्ण झाँकी इसमें दिखलाई देती है। प्रबोधचन्द्रोदयमें जैन मुनिका घृणित चरित्र चित्रित किया गया है तो ज्ञानसूर्योदयमे बौद्धोका और श्वेताम्बरोका उपहास किया गया है। प्रबोधचन्द्रोदयकी 'उपनिषत्' ज्ञानसूर्योदयकी 'अष्टशती' है। वहाँ उपनिषत्का पति 'पुरुष' है तो यहाँ अष्टशतीका पति 'प्रबोध' है। प्रबोधचन्द्रोदयकी 'श्रद्धा' ज्ञानसूर्योदयकी 'दया' है। चन्द्रोदयमें श्रद्धा खोयी गयी है तो सूर्योदयमे दया। शेष काम, क्रोध, लोभ, अहकार, दम्भ, विवेक आदि-आदि पात्रोंके चित्रणमे विशेष अन्तर नही है।

नाटककी प्रस्तावनामे कमलसागर और कीर्तिसागर नामके दो ब्रह्मचारियोका निर्देश है जिनकी आज्ञासे सूत्रधार प्रस्तुत नाटकका अभिनय करना चाहता है।

इनके अतिरिक्त 'विद्यापरिणयन' (१७वी शताब्दीका अन्त), 'जीवानन्दन' (१८वी शताब्दीका आदि) और अनन्तनारायणकृत मायाविजय भी रूपकप्रधान रचनाएँ है। पद्मसुन्दरका 'ज्ञानचन्द्रोदय' नाटक अबतक प्रकाशित नही हुआ है और प्रयत्न करनेपर भी हम इसकी पाण्डुलिपि प्राप्त नही कर सके। हमारा अनुमान है कि प्रस्तुत नाटक भी प्रबोधचन्द्रोदयकी शैलीमें लिखा गया रूपकात्मक नाटक होगा और सम्भव है कि पद्मसुन्दरके 'ज्ञानचन्द्रोदय'ने ही वादिचन्द्रसूरिके 'ज्ञानसूर्योदय'को जन्म दिया हो। 'भुवनभानुकेवलिचरित' तथा वाचक यशोविजयकृत 'वैराग्यकल्पलता' इसी प्रकार रूपकप्रधान रचनाएँ हैं।

'वैराग्यकल्पलता', सिद्धर्षिकी उपमितिभवप्रपचकथाके आधारसे तैयार की गयी है। इसके ९ स्तबकोमें अनुसुन्दर चक्रवर्तीकी कथाके व्याजसे ससारी जीवके ससारभ्रमणकी करुण कहानी और उससे उन्मुक्ति लाभके रूपकात्मक शैलीमें लिखे गये बडे ही हृदयग्राही चित्रण विद्यमान हैं।

इसके सिवा अन्य प्राच्य भाषाओंका साहित्य भी रूपकात्मक साहित्यसे अछूता नही है। मलयानलममें लिखा गया 'कामदहनम्' सुप्रसिद्ध रूपकात्मक रचना है। हिन्दीमें भी इस कोटिका साहित्य है, परन्तु बहुत अल्प। हस्तलिखित ग्रन्थोकी विधिवत् खोज होनेपर इस प्रकारका अन्य भी बहुत-सा साहित्य उपलब्ध हो सकता है।

---

१. मूलसघे समासाद्य ज्ञानभूषं बुधोत्तमं। दुस्तरं हि भवाम्भोधिं सुतरं मन्यते हृदि ॥ १॥
तत्पट्टामलभूषणं समभवद्दैगम्बरीये मते, चञ्चद्बर्हकरः सभातिचतुरः श्रीमत्प्रभाचन्द्रमाः।
तत्पट्टेऽजनि वादिवृन्दतिलकः श्रीवादिचन्द्रो यतिस्तेनायं व्यरचि प्रबोधतरणिर्भव्याब्जसंबोधनः ॥२॥
वसु-वेद-रसाब्जाङ्के वर्षे माघे सिताष्टमीदिवसे। श्रीमन्मधूकनगरे सिद्धोऽयं बोधसरम्भः ॥३॥
—ज्ञान० सू० प्र०

ज्ञानसूर्योदयके सिवाय वादिचन्द्रसूरिकी अन्य रचनाएँ भी उपलब्ध है। इनमें-से पवनदूत नामक खण्डकाव्य ही अबतक प्रकाशित हुआ है। श्री प० नाथूरामजी प्रेमीका ज्ञानसूर्योदय नाटकका हिन्दी अनुवाद १९०९ में जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय-द्वारा प्रकाशित भी हो चुका है। पाण्डवपुराण, यशोधरचरित, होलिकाचरित्र आदि रचनाएँ किसी भी रूपमें अबतक प्रकाशित नही हैं।

हिन्दीमें लिखी गयी 'मोह विवेककी कथा' एक सक्षिप्त रूपकात्मक रचना है। दामोदरदास इसके रचयिता है। इसकी एक पाण्डुलिपि काशी नागरी-प्रचारिणी-सभाके पुस्तकालयमे सुरक्षित है। लिपिकाल १८६१ है और इसे पिरानसुखजीने फीरोजाबादमे लिखा है "लिखित पिरानसुखजी फीरोजाबादमें स० १८६१"

प्रस्तुत रचनामें मोह और विवेक, क्रोध और क्षमा, काम और लोभ आदिमें पारस्परिक युद्ध दिखलाते हुए अन्तमें विवेककी विजय दिखलायी गयी है।

इसी प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्रकी 'भारतदुर्दशा' और 'भारतजननी', श्री जयशकर प्रसादजीकी 'कामना' और 'कामायिनी' भी हिन्दीकी उत्तम रूपकात्मक रचनाएँ है।

३ मदनपराजय : एक अध्ययन

मदनकी मूलात्मा और उसका विस्तार

ससारके समस्त व्यापार और प्रवृत्तियोमे कामके ही बीज वर्तमान है।[१] जगत्का ऐसा कोई भी व्यापार नही है, जिसके मूलमें कामका अस्तित्व न हो। एक जीवका दूसरेके साथ राग-द्वेष करने रूप रागात्मक और द्वेषात्मक व्यापारके मूलमें भी कामवृत्ति ही काम करती दिखलाई देती है[२]। सज्ञा, एषणा, तृष्णा, इच्छा–ये सब कामवृत्तिके ही रूपान्तर है। आहार, भय, परिग्रह और मैथुन–इन चार सज्ञाओमे, लोक, वित्त और स्त्री-पुत्र – इन एषणाओमे, भव, विभव और काम – इन तृष्णाओमे कामवृत्ति ही फल-फूल रही है। आधुनिक मनोविज्ञानके आचार्योंने भी जगत्के नाना व्यापारोके मूलमें कामवृत्तिकी ही प्रमुखता प्रतिपादित की है। मदन भी इसी कामवृत्तिका एक व्यापारविशेष है। ऋग्वेदमें कामसे ही सृष्टिकी उत्पत्तिका प्रतिपादन किया गया है :

"कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनोरेत. प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥" (ऋ०१०।२९।४)

– इस ब्रह्मके मनका जो रेत – बीज पहले निकला, वही आरम्भमे काम-सृष्टिकी प्रवृत्ति या शक्ति हुआ। ज्ञाताओने अन्त करणमे विकार-बुद्धिसे निश्चय किया कि यही असत्मे सत्का पहला सम्बन्ध है।

वेदोपनिषद्मे भी इसी तत्त्वको निम्न प्रकार बतलाया है

"एकाकी नारमत, आत्मान द्वेधा व्यभजत्, पतिश्च पत्नी चाभवत्।"

– एकमें वह नही रमा, पति और पत्नीके रूपमें उसने अपने दो भेद किये।

बृहदारण्यकोपनिपद् (४।३।३२) में भी रसोद्भूत आनन्दको जगत् और जीवनकी प्रतिष्ठाका कारण बतलाया है

"एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति।"

– इस आनन्दके अंशमात्रके आश्रयसे ही समस्त प्राणी जीवित रहते है।

इस आनन्दका लौकिक रूप वासना-प्रधान ही माना गया है।

जैन आगममे आहार, भय, परिग्रह और मैथुन सज्ञाओमें विभक्त होनेपर भी कामवृत्तिका नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव रूपसे भी निक्षेप किया गया है। शब्द, रस, रूप, गन्ध और स्पर्शद्रव्य काम है और इच्छा काम तथा मदन कामके भेदसे दो प्रकारके भाव काम माने गये है। इनमें-से प्रशस्त और अप्रशस्त इच्छा –इच्छा काम है और वेदोपयोग रमणेच्छा मदन काम है।

---

१ "अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्। यद्यद्धि कुरुते किंचित् तत्तत् कामस्य चेष्टितम्॥"–मनुः।

२ "इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेपौ व्यवस्थितौ।"

३. "नामं ठवणा कामा, दव्व कामा य भावकामा य। एसो खलु कामाण निक्खेवो चदुविहो होइ॥१६७॥
सद्दरसरूपगधफ्फासा उदयंकरा य जे दव्वा। दुविहा य भावकामा, इच्छाकामा य मयणकामा य॥१६८॥
इच्छा पसत्थमपसत्थिगा य मयणम्मि वेय उवओगे। तेणहिगारो तस्सउ, वयति धीरा निरुत्तमिण॥१६९॥"
—दश० २ अ०।

कामकी धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थ-चतुष्टयमे गणना की गयी है और काम, क्रोध, लोभ, मद, मान, हर्ष भूत अरिषड्वर्गमें भी। इस प्रकार कामवृत्तिके तथोक्त इच्छा-सामान्य अर्थमे रूढ होनेपर भी स्त्री और पुरुषकी पारस्परिक रतीच्छारूप विशेष अर्थमें भी इसका व्यवहार देखा जाता है और 'कामदेव' रूप एक अन्य विशेष अर्थमें इसकी चरितार्थता विख्यात है। 'मदनपराजय' का 'मदन' आगमिक भावकाम और प्रस्तुत कामदेवसे ही विशेषतः सम्बन्धित है।

कामदेवकी उत्पत्ति और उसका रूप वैचित्र्य

[1]शिवपुराणमे कामदेवकी उत्पत्तिके सम्बन्धमे एक विवरण चर्चित पाया जाता है। ब्रह्मा जब सन्ध्याको उत्पन्न कर चुके और उसके सौन्दर्यको देखते-देखते कुछ भाव-मग्न हुए तो उनके मनसे एक महान् अद्भुत और दिव्य पुरुषकी उत्पत्ति हुई। उसके शरीरकी कान्ति सोनेकी तरह कमनीय थी। वक्षःस्थल पुष्ट था। नाक सौम्य थी। कटिभाग और जघाएँ गोल थी, भौहे चपल थी और मुख पूर्णचन्द्रकी तरह प्रसन्न था। नीले वस्त्र पहने था। हाथ, नेत्र, मुख और चरण लाल हो रहे थे। मध्यभाग क्षीण था। दाँत शुभ्र और सुन्दर थे। मदोन्मत्त हाथी-जैसी गन्ध थी। विकसित कमलके समान विशाल और दीर्घ नेत्र थे। केशरसे घ्राणेन्द्रियको सुवासित कर रहा था। शखके समान गला था। उसकी ध्वजामे मीन थी और वाहन मकरका था। पुष्पमय पाँच बाण थे। धनुष भी पुष्पोका ही था। दोनो नेत्रोको घुमाते हुए कटाक्षपातसे मनोहर था और शरीरसे सुगन्धित वायु निकल रही थी। इसके सिवाय शृगार रस उसकी सेवामे सलग्न था।[1]

कामदेवने इस प्रकार उत्पन्न होते ही ब्रह्मासे अपने अनुरूप कर्म और पत्नी आदिके सम्बन्धमे जानकारी प्राप्त करनी चाही। ब्रह्माने कामदेवसे कहा कि तुम इसी रूपसे और अपने इन्ही पुष्पमय बाणोसे ससारके स्त्री और पुरुषोको मोहित करते हुए सनातन सृष्टिको चरितार्थ करो। कामदेव और ब्रह्माके इस प्रश्नोत्तरके पहले ही दक्ष आदिक समस्त ब्रह्मपुत्र कामको देखते ही मोहित हो गये और उनके मन विकृत हो गये। ब्रह्माने कामदेवसे उसके कर्मविधानको समझाकर बतलाया कि कामदेव, तुम्हारे अन्य नाम अब ये हमारे पुत्र बतलायेंगे। तत्पश्चात् मरीचि आदिने कामदेवके इस प्रकार नामान्तर दिखलाये

"कामदेव, तुम प्राणियोके चित्तका मन्थन करते हो, अतः ससारमें तुम्हारी 'मन्मथ' के नामसे प्रसिद्धि होगी। लोकमे तुम्हारे-जैसा अन्य कोई कामरूपी नही है, अत 'काम' के नामसे भी तुम विख्यात होगे। तुम जीवोके चित्तको उन्मत्त करते हो, इसलिए तुम्हारा नाम 'मदन' भी होगा। तुम एक अद्भुत दर्पमय हो, अत 'कन्दर्प' के नामसे तुम प्रसिद्ध रहोगे। कोई भी देव तुम्हारे-जैसा वीर्यवान् न होगा, इसलिए तुम सर्वगामी और सर्वव्यापी रहोगे।[2]"

कामदेवने अपने पौरुषकी परीक्षा करनी चाही। उसने अपने बाणोको ब्रह्मा और उपस्थित मुनि-मण्डलीके ऊपर छोडा। समस्त मुनिजन एकदम मोहित हो गये। स्वय ब्रह्माका चित्त भी अपनी कन्या सन्ध्याके ऊपर चलित हो गया। इस पाप-वृत्तिको देखकर धर्मने शभुका स्मरण किया। वे आये और उन्होने सभीका उपहास और भर्त्सना की। ब्रह्माने कामको शिवके निमित्तसे अग्निसात् होनेका शाप दे दिया, परन्तु कामकी प्रार्थनापर उसे क्षमा कर दिया कि रतिके निमित्तसे वह पुनरपि जीवित हो सकेगा।

कालिकापुराणमें[3] भी इसी आख्यानसे मिलता-जुलता एक आख्यान है। उसमें बतलाया है कि ज्यो ही ब्रह्माने सन्ध्याको उत्पन्न किया, कामने सन्ध्या और ब्रह्मा दोनोके चित्तको चलित कर दिया, इस कारण दोनो ही लज्जित हुए और चतुराननको तो कामके ऊपर बहुत ही क्रोध आया। परन्तु सन्ध्याने घोर तपस्याके पश्चात् विष्णु महाराजसे यह वर माँग लिया कि काम आगामी किसीको पैदा होते ही चचल न कर सके।

---

१ शिवपुराण, रु० स० स० २, सती ख० २, अ० २ श्लोक २३-२९।

२ शिवपुराण, रु० स० सती० ख० तृ० अ० श्लो० ४-७।

३. कालिकापुराण, अ० १९–२२।

तबसे विष्णुने व्यवस्था कर दी कि कामदेव केवल युवकोका मन ही विक्षुब्ध कर सकता है और कभी कही किशोर-किशोरियोका भी।

पूर्वोक्त शापके कारण जब कामदेव महादेवकी नेत्राग्निकी ज्वालामे भस्मसात् हो गया तो रतिने उग्र तप किया और शिवको सन्तुष्ट करके वर प्राप्त किया कि कामदेव अब अमूर्तरूपसे ही देहधारियोमें विद्यमान रहेगा और द्वापरमे श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नके रूपमे मूर्त रूप प्राप्त करेगा।

हरिवंश और भागवतके अनुसार श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न कामदेवके अवतार है। विष्णुधर्मोत्तर (३-५८) के अनुसार कामदेव और उनकी स्त्री रति क्रमश वरुण और उनकी पत्नी गौरीके अवतार है। वेसनगरमें शुगकाल (तृतीय शताब्दी ईसवी पूर्व) का एक तीन फुट ऊँचा मकरध्वज-स्तम्भ पाया गया है, जो ग्वालियर म्यूजियममें सुरक्षित है।[1] बादामीमे रतिके साथ मकरवाहन और मकरकेतन काम-मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। तथा समुद्र और जलके देवता होनेके कारण वरुणका वाहन मकर है। उनकी स्त्री गौरीका वाहन भी मकर है। अग्निपुराण (५१ अध्याय) मे वरुणको मकरवाहन कहा गया है और विष्णुधर्मोत्तर (३-५२) मे मकरकेतन। वरुणका मकरवाहन होना अनेक प्राचीन मूर्तियो और चित्रोमे अकित है।[2] बादामी, मैसूर और भुवनेश्वरके लिगराज मन्दिरकी अनेक मूर्तियाँ इस बातका प्रमाण है। अत पण्डितोका अनुमान है कि कामदेव और यक्षाधिपति वरुण मूलत एक ही देवता है। और नही तो कमसे कम एक ही देवताके दो विभिन्न रूप तो है ही।[3] बौद्ध मार यक्ष कामदेवका रूप है ही।[4]

जैन सम्प्रदायमें कुछ अतिशय रूपवान् महापुरुपोको कामदेव बतलाया गया है। गत अवसर्पिणीके चतुर्थ कालमे भरत क्षेत्रमे २४ कामदेव महापुरुप हुए। इनमे-से कुछ तो उसी भवसे मुक्त हुए और शेष आगामी भवसे मुक्त होगे। वे कामदेव निम्न प्रकार है

१ बाहुबलि, २ अमिततेज, ३ श्रीधर, ४ दशभद्र, ५ प्रसेनजित, ६ चन्द्रवर्ग, ७ अग्निमुक्ति, ८ सनत्कुमार चक्रवर्ती, ९ वत्सराज, १० कनकप्रभु, ११ सेघवर्ण, १२ शान्तिनाथ तीर्थकर, १३ कुन्थुनाथ तीर्थंकर, १४ अरनाथ तीर्थकर, १५ विजयराज, १६ श्रीचन्द्र, १७ राजा नल, १८ हनूमान्, १९ बलराजा, २० वसुदेव, २१ प्रद्युम्नकुमार, २२ नागकुमार, २३ श्रीपाल और २४ जम्बूस्वामी।[5]

उत्तराध्ययन टीका[6] मे कामदेवको यक्षाधिप बतलाया गया है।

कामदेवके धनुप और बाण पुष्पमय है, धनुपकी मौर्वी रोलम्बमाला या भ्रमरश्रेणीकी है, और इनके बाणोसे युवकोका हृदय विदीर्ण हो जाया करता है।[7]

वामनपुराणमे आख्यान है कि कामदेवको जब महादेवने भस्म किया तो उनका मणिखचित धनुष पाँच टुकडोमे विभक्त होकर पृथ्वी पर गिर पडा। रुक्मविभूषित पृष्ठवाला मुष्टिबन्ध (मूठ) चम्पाका फूल होकर पैदा हुआ। वज्र (हीरा) का बना हुआ नाह स्थान बकुल पुष्प हुआ। इन्द्रनीलशोभित कोटि-देश पाटल-पुष्पमे परिवर्तित हो गया। नाह और मुष्टिबन्धका मध्यवर्ती स्थान, जो चन्द्रकान्तमणिकी प्रभासे प्रदीप्त था, जातीपुष्प हुआ और मूठ के ऊपर तथा कोटिके नीचेका हिस्सा, जिसमे विद्रुम मणि जडी गयी थी, मल्लीके रूपमें पृथ्वीपर पैदा हुआ।[8] तबसे कामका धनुष पुष्पमय होकर ही पृथ्वीपर विराजमान है। कामदेवके पुष्प-

---

१. Cunningham A S. Reports P. 42-43 और Plate XIV.

२. R. D Banerji Bas Reliefs of Badami, Mem, A S J. 25, 1928 P 34. तथा Plates XIo. XXIc, XXXIIIa और c आदि।

३ बुद्धचरित, १३-२।

४ हिन्दी साहित्यकी भूमिका, पृ० २०९-२१०।

५ बृहज्जैनशब्दार्णव, पृ० ४१९। ६ उत्तराध्ययनटीका, जेकोबी, पृ० ३९। ७. "मौर्वी रोलम्बमाला, धनुरथ विशिखा, कौसुमा पुष्पकेतो, भिन्न स्यादस्य बाणैर्युवजनहृदय स्त्रीकटाक्षेण तद्वत् ॥६११॥" साहित्यदर्पण, सप्तम परिच्छेद। ८ वामनपुराण, अध्याय ६।

मय पाँच वाणोमें अरविन्द (कमल), अशोक, आम, नवमल्लिका, और नीलोत्पल हैं। किसी-किसीके मतसे द्रावण, शोषण, तापन, मोहन और उन्मादन, या सम्मोहन, समुद्वेगबीज, स्तम्भनकारण, उन्मादन, ज्वलन और चेतनाहरण ये काम-वाण हैं, या सम्मोहन, उन्मादन, शोषण, तापन और स्तम्भन ये ही काम-वाण हैं। एक और मत है कि पाँचो इन्द्रियोके विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये ही पाँच कामदेवके वाण हैं।[1]

मदन-पराजयके रूपान्तर

काम जहाँ एक ओर इस प्रकार विभिन्न एव विचित्र रूपोसे सम्पन्न दिखलाई देता है, दूसरी ओर उसकी मायाका वैचित्र्य भी कम प्रभावपूर्ण नही है। सृष्टिके अणु-अणुमें उसकी मोहनी माया समायी हुई है और चराचर प्राणि-जगत्में ऐसा एक भी न होगा जो इसकी मनहर मायासे प्रभावित न हुआ। परन्तु शाश्वत सुखका अभिलाषी मनुष्य निवृत्तिमार्गका अनुसरण करके उसके प्रभावसे सर्वथा अस्पृष्ट बने रहनेका प्रयत्न करता है और एक दिन उसे एकदम पराजित करके निष्कलक और निष्काम परमात्मा हो जाता है।

निवृत्तिमार्गकी सीमाको पार करते समय कामको जो इस प्रकार पराजित किया जाता है, उसके विभिन्न रूप हमे भारतीय साहित्यमे देखनेको मिलते हैं। शकरके कामदाहका अनेक पुराणो और काव्योमे चित्रण हुआ है (उदाहरणके लिए शिवपुराण रुद्रसहिता, द्वि० ख०, अध्याय १९ और महाकवि कालिदासकृत कुमारसभवका ३रा सर्ग) तथा महात्मा बुद्धकी मार-विजय भी बहुत ही प्रसिद्ध है।[2]

जैन सम्प्रदायमे भी प्रत्येक जिन काम-विजय करके ही मुक्ति-लाभ करता है। परन्तु जिनकी काम-विजय शकर और बुद्धकी काम-विजयकी तरह नही होती। जिनकी काम-विजयके प्रसगमें समस्त प्रकारकी इच्छाओका एकदम उन्मूलन कर दिया जाता है और वही सम्पूर्ण काम-विजयी जिन कहलाते हैं। उसके बाद न उन्हे भूखकी इच्छा सताती है और न प्यासकी पीडा तकलीफ दे पाती है। उस समय वे समस्त कामनाओंसे रहित होकर अनन्तसुख, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और अनन्तवीर्यसे सम्पन्न अर्हत् हो जाते हैं तथा अठारह प्रकारके दोष[3] उनके अन्तस्से कपूरकी भाँति उड जाते हैं।

मदनपराजय और उसके नामान्तर

मदनपराजय एक रूपकात्मक आख्यान है। प्रस्तुत रचनाके आधारभूत 'मयणपराजय चरिउ' के कर्ता हरिदेवने अपनी रचनाको काव्य[4] बतलाया, परन्तु इस रचनाके रचयिता नागदेवने इसका कथा[5] के रूपमें उल्लेख किया है। इसके सिवा दूसरी जगह उन्होने एक स्तोत्रके[6] रूपमे भी लिखा है।

---

१ हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० २१५।

२ जातक, प्रथम खण्ड (हिन्दी सा० स० प्रयाग) के अविदूरेनिदानका 'मारविजय' तथा अश्वघोष-कृत बुद्धचरितका १३वाँ सर्ग।

३. जन्म, जरा, तृषा, क्षुधा, विस्मय, आतक, मरण, भय, अहकार, राग, द्वेष, मोह, चिन्ता, रति, निद्रा, मद, स्वेद और खेद।

४. "णविवि जिणपय विग्घविद्दवण,
पणमामि इदियदलण विसहसेण तह भत्तिभारिण।
कहकहमि भवियणजणह रइमिकव्वु जिणवयणसारिण ॥
सद्दासद्द विसेसयरु लक्खणु णउ जाणेमि।
छदुवि सालकारु तह घिट्टिम कव्वु करेमि ॥३॥" —मयणपराजयचरिउ, प० स०।

५. "कथा प्राकृतवन्धेन हरिदेवेन या कृता।" तथा वक्ष्ये कथा तामहम्।"—म० परा० प्रस्ता०, पद्य ५, ६ तथा प्रश० प० स० २।

६. "साद्यन्त य श्रृणोतीद स्तोत्र स्मरपराजयम्।
तस्य ज्ञान च मोक्ष स्यात् स्वर्गादीना च का कथा ? ॥ १ ॥"
म० परा० प्रश०, तथा म० परा०, प्रश० ४।

मदनपराजयके नामान्तरकी भी यही कथा है। नागदेवने प्रत्येक परिच्छेदके अन्तमें मदनपराजयका 'स्मरपराजय' के नामसे ही उल्लेख किया है। परन्तु प्रशस्तिके पद्यमे स्मरपराजयके साथ मारपराजय[1] का भी एक स्थानपर नामोल्लेख हुआ है। इस प्रकार प्रस्तुत रचना 'स्मरपराजय' अथवा 'मारपराजय' के नामसे ही प्रसिद्ध होनी चाहिए थी, परन्तु मालूम देता है कि प्राकृत 'मयणपराजयचरिउ', जो इस रचनाका मूलाधार है, के आधारपर ही इसका 'मदनपराजय' नामकरण सुप्रसिद्ध हुआ है।

मदनपराजयकी संक्षिप्त कथा

भव नामक नगरमे मकरध्वज नामका राजा राज्य करता था। एक दिनकी बात है, उसके सभाभवनमें शल्य, गारव, कर्म, दण्ड, दोष और आस्रव आदि सभी योधा उपस्थित थे। प्रधान सचिव मोह भी मौजूद था। मकरध्वजने वार्तालापके प्रसगमें मोहसे किसी अपूर्व समाचारको सुनानेकी बात छेडी। उत्तरमे उसने मकरध्वजसे कहा—राजन्! आजका एक ही नया समाचार है और वह यह है कि जिनराजका बहुत ही शीघ्र मुक्ति-कन्याके साथ विवाह होने जा रहा है। मकरध्वजने जिनराजका अबतक नाम नही सुना था और मुक्ति-कन्यासे भी उसका कोई परिचय नही था। सो ज्यो ही उसने अपने प्रधान सचिवसे जिनराजके सम्बन्धमे जानकारी हासिल की, उसे बडा ही आश्चर्य हुआ और मुक्ति-कन्याका परिचय प्राप्त करके तो वह उसपर एकदम मोहित हो गया। उसने विचार किया कि इस प्रकारकी मनोरम मुक्ति-कन्याके साथ तो मेरा ही विवाह होना चाहिए, परन्तु यह तब ही सम्भव है जब पहले सग्राम-भूमिमे जिनराजको पछाड दिया जाये। यह सोचते ही वह जिनराजके साथ लडाई लडनेके लिए चल दिया। परन्तु मोहने अपने नीतिकौशलसे उसे अकेले सग्राम-भूमिमे उतरनेसे रोक दिया। मकरध्वजने मोहकी बात मान ली, किन्तु उसने मोहको आज्ञा दी कि वह जिनराजपर चढाई करनेके लिए शीघ्र ही अपनी समस्त सेना तैयार करके ले आये।

मकरध्वजकी रति और प्रीति नामक दो पत्नियाँ थी। मकरध्वजकी चिन्तित और विषण्ण दशासे इन्हे बहुत ही दुःख और आश्चर्य था। एक रात रतिने साहसपूर्वक मकरध्वजसे उसकी इस सचिन्त और दीन दशाका कारण पूछा। मोहने अपने मनकी बात उसे बतला दी और उससे कहा कि तुम भी मुक्ति-कन्याके निकट जाकर इस प्रकारका यत्न करो जिससे वह जिनराजके प्रति उदासीन हो जाये और अपने विवाहोत्सवके अवसरपर मुझे ही अपना जीवनसगी चुने। रतिको मकरध्वजकी इस प्रवृत्तिसे बडा ही आघात पहुँचा। उसने अपनी शक्ति-भर मकरध्वजको लाख समझाया, परन्तु जब उसे कुछ भी समझमे न आया और इसके विपरीत जब वह रतिके चरित्रपर ही लाछना लगानेको उद्यत हो उठा तो रतिने विवश होकर मकरध्वजकी बात अगीकार कर ली। उसने आर्यिकाका वेष धारण किया और मकरध्वजको प्रणाम करके वह जिनराजके पास चल पडी। रास्तेमे रतिकी मोहसे भेंट हो गयी। मोहने रतिके इस वेषका कारण पूछा। उसने मोहके सामने सारी स्थिति ज्योकी त्यो रख दी। मोहको इस समाचारसे बडा दुःख हुआ। उसने रतिको लौटा लिया और वह उसे अपने साथ लेकर मकरध्वजके निकट जा पहुँचा। मोहने मकरध्वजकी इस रीति-नीतिकी निन्दा करते हुए उसे बहुत ही लज्जित किया। तदनन्तर मोहकी सम्मतिके अनुसार राग और द्वेषके लिए दूतत्वका भार सौपकर उन्हे जिनराजके पास भेजा गया। राग और द्वेष सज्वलनकी सहायतासे जिनराजके दरबारमे पहुँचे और उनसे मकरध्वजका सन्देश जा सुनाया। वे कहने लगे "देव, महाराज मकरध्वजका आदेश है कि आपको मुक्ति-कन्याके साथ विवाह करनेकी अनुमति नही दी जा रही है, आप अपने तीनो रत्न महाराज मकरध्वजके लिए दे दीजिए और उनकी अधीनता स्वीकार कीजिए।" राग-द्वेषकी बात सुनकर जिनराजने उन्हें बुरी तरह फटकारा और मकरध्वजकी प्रत्येक बातको स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया। इतना ही नही, जिनराज कहने लगे "मै मुक्ति-कन्याके साथ अवश्य ही विवाह करूँगा और यदि मकरध्वजने इस कार्यमे जरा भी बाधा डाली तो उसे सपरिकर उन्मूलित कर दूँगा।" जिनराजके उत्तरको सुनकर राग-द्वेष कुछ घट-बढ बात करने लगे तो सयमने उन्हें एक-एक चाँटा लगाकर दरबारसे बाहर निकाल दिया।

---

१ म० परा० प्रश० प० स० २।

सयमसे अपमानित होकर राग-द्वेष मकरध्वजके निकट पहुँचे और उसे जिनराजका उत्तर जा सुनाया। मकरध्वजको इस समाचारसे बहुत ही क्रोध हो आया। उसने अन्यायकाहलिकको बुलाकर उसे समस्त सैन्य तैयार करनेके लिए आदेश दिया और सेनापतिके रूपमे मोहको पट्टबन्ध कर दिया। मकरध्वजकी सेना एकत्रित होने लगी।

इधर ज्यो ही राग-द्वेष दूत जिनराजके निकटसे चले, उन्होने सवेगको तुरन्त ही अपने सैन्यको तैयार करनेकी आज्ञा दी। सवेगकी घोषणाके अनुसार बातकी बातमें जिनराजकी सेनाके समस्त वीर सेनानी एकत्रित हो गये। जिनराजने अपनी सेनाको सब तरहसे सुसज्जित देखा और मकरध्वज, जिनराजके ऊपर चढाई करे, इसके पहले ही जिनराजने अपने सैन्यके साथ मकरध्वजके ऊपर चढाई कर दी।

मकरध्वजको जब इस समाचारका पता चला तो उसने मोहके सामने, आजकी लडाईमें जिनराजको पराजित करनेकी प्रतिज्ञा की और बन्दी बहिरात्माको जिनराजके पास भेजा। मकरध्वजने बहिरात्मा-द्वारा यह समाचार भेजा कि या तो जिनराज आजकी लडाईमे उसकी बाणावलीका सामना करे अथवा उसकी अधीनता स्वीकार करे।

बहिरात्मा मकरध्वजके इस सन्देशको जिनराजसे सुना ही रहा था कि निर्वेगको इस अभद्र बातसे बडा ही क्रोध हो आया। उसने बहिरात्माका सिर मूडकर, उसकी नाक काट डाली और उसे सभा-भवनके द्वारसे बाहर कर दिया। बहिरात्मा मकरध्वजके पास पहुँचा और उसने उसके सामने जिनराजकी प्रबल स्थितिका यथार्थ चित्र रख दिया।

बन्दी बहिरात्माके मुँहसे यह समाचार जानकर और उसकी इस प्रकारकी दुर्दशा देखकर मकरध्वजको बडा ही क्रोध आया और वह तत्काल ही जिनराजकी सेनाके साथ युद्ध करनेके लिए चल दिया। दोनो ओर-से तुमुल युद्ध हुआ। ब्रह्मा और इन्द्रने भी आकाशमे विराजमान होकर इस युद्धको देखा। प्रस्तुत युद्धमें जिनराजके धर्मध्यान योद्धाके द्वारा मोहका सहार कर दिया गया और जिनराजने मकरध्वजको भी पराजित कर दिया। मकरध्वजकी पत्नी रति और प्रीतिने जिनराजकी सेवामे मकरध्वजके प्राणोकी भीख माँगी। जिनराजने एक सीमा-पत्र देकर मकरध्वजके क्षेत्र-प्रवेशकी सीमा निर्धारित कर दी और उसे चेतावनी दी गयी कि इस सीमाको उल्लघन करनेपर उसे प्राणदण्ड दिया जायेगा। रति और प्रीतिके प्रार्थनानुसार उन्हे अपने स्थान तक सुरक्षित रीतिसे भेजनेके लिए शुक्लध्यान वीर साथी दिया गया, परन्तु कामको शुक्ल-ध्यान वीरकी नियतपर विश्वास नही हुआ। उसने आत्म-हत्या कर ली और वह सबके देखते-देखते ही अनग होकर अदृश्य हो गया।

इस दृश्यको देखकर इन्द्रको बहुत प्रसन्नता हुई। उसने दयाके द्वारा मोक्षपुरमे रहनेवाले सिद्धसेनके निकट यह समाचार भेजा कि वह शीघ्र ही अपनी मुक्ति-कन्याके विवाहके लिए आयें। सिद्धसेनने दयासे प्रस्तावित वरकी योग्यताके सम्बन्धमें पूछताछ की और सन्तुष्ट होकर इन्द्रके पास सन्देश भेजा कि वह शीघ्र ही स्वयवरकी तैयारी करें।

इन्द्रकी आज्ञानुसार कुबेरने मुक्ति-कन्याके स्वयवरके लिए एक सुन्दर समवसरण मण्डपकी रचना कर दी। इस मण्डपमे एक कर्म-धनुष लाकर रखा गया और घोषणा की गयी कि इस कर्म-धनुषको भग करने-वालेके गलेमें ही मुक्ति-कन्या वरमाला पहनायेगी। जब उपस्थित जन-समूहमें-से कोई भी इस धनुषको तोडनेके लिए उद्यत नही हुआ तो जिनराजने उसे हाथमें लिया और बातकी बातमें उसे भग कर दिया। यह दृश्य देखकर मुक्तिश्रीको बडी ही प्रसन्नता हुई और उसने तत्काल जिनराजके कण्ठमे तत्त्वमय वरमाला डाल दी। इस उपलक्ष्यमे देवोने एक महामहोत्सव किया और मुक्तिश्रीसे अलंकृत जिनराज सानन्द मोक्षपुर चले गये।

चरित्र-चित्रण

मदनपराजय कोई नाटक नही है और न नाटकीय शैलीमे इसकी कथावस्तुका विस्तार ही किया

गया है। इसलिए यद्यपि इसमे नाटक-जैसी पात्रोके चरित्र-चित्रणकी विचित्रता लक्षित नही होती है फिर भी मदनपराजयकी वस्तुको अपने अपूर्व ढगसे पल्लवित करके घटना-वैचित्र्य और चरित्र-चित्रणका जो इसमे सगठन हुआ है, वह कम महत्त्वका नही है और उसमें कलाकारने अपनी सूक्ष्म निपुणताका पूरा उपयोग किया है।

जिनराज

यद्यपि मदनपराजय जिनराजकी एक बहुत बडी जीवनव्यापी साधनका परिणाम है, परन्तु नागदेवने उनके चरित्राकनमे अपनी रचनाके बहुत ही कम भागका उपयोग किया है। पाठकके लिए जिनराजके सम्बन्धमे सर्व-प्रथम जानकारी मकरध्वजके प्रधान सचिव मोहसे प्राप्त होती है। मोह मकरध्वजसे कहता है "देव, यह वही जिनराज है जो पहले अपने भवनगरमे रहता और दुर्गति-वेश्याके यहाँ पडा रहता था। यह बडा भारी पापी और दुष्कर्मी था, जिसके कारण इसे भयकर दण्ड भी दिये जाते थे। परन्तु काललब्धि बडी ही प्रबल है। एक दिनकी बात है। यह जिनराज दुर्गति-वेश्यासे विरक्त हो गया और अपने श्रुतमन्दिरमे-के तीन रत्नोको लेकर चारित्रपुरका मालिक बन बैठा।"

इस उल्लेखमे नागदेवने जिनराजके अतीत भव और उनकी वर्तमान महत् साधनाका मनोरम चित्र उपस्थित किया है और दिखलाया है कि किस प्रकार जिनराज आज रकसे राजा बन बैठा है। इस चित्रमे जिनराजका वास्तविक परिचय नही मिलता है। यद्यपि यह परिचय भी अपूर्ण नही कहा जा सकता और जिनराज सामान्यकी दृष्टिसे काफी परिपूर्ण है, क्योकि जैनधर्मके सिद्धान्तके अनुसार ससारका पापीसे पापी भी प्राणी अपनी मत्य साधनासे जिनराज और यहाँतक कि मुक्तकी श्रेणीको भी प्राप्त कर सकता है। परन्तु मदनपराजयके नायकस्वरूप जिनराजके परिचयका यहाँ आभासमात्र ही दिया गया है। उनका विशेष और सम्पूर्ण परिचय हमे पचम परिच्छेदमे देखनेको मिलता है, जहाँ जिनराजके द्वारा मदनपराजय हो चुका है और दया मुक्ति-कन्याके लायक वरकी सुयोग्यताके सम्बन्धमें सिद्धसेनको उनका परिचय करा रही है। पाठकको वहाँ पहुँचनेपर ही मदनपराजयके नायक जिनराजके सम्बन्धमे विशेष परिचय प्राप्त होता है कि श्री नाभि-राजाके पुत्रके आदिनाथ—वृषभनाथ ही इस धर्मकथाके नायक है। तीर्थकरत्व उनका गोत्र है। रूपमें वे सुवर्ण-की तरह सुन्दर है। उनका वक्ष स्थल विशाल है। वे सबके प्रिय है और उनका शरीर १००८ लक्षणोसे अलकृत है। वे चौरासी लाख उत्तर गुणोसे सम्पन्न और शाश्वत सम्पत्तिसे सयुक्त है। उनके नेत्र कानो तक पहुँचे हुए और कमलके समान मनोरम है। भुजाएँ घुटनो तक लम्बी है और शरीरकी ऊँचाई पाँच सौ धनुष प्रमाण है।[1]

दूसरे परिच्छेदके अन्तमे जिनराज एक महान् वीरनरेशके रूपमे दिखलाई देते है। मकरध्वजके राग और द्वेष नामक दूतोके द्वारा लायी उसकी आज्ञाको वे बुरी तरह ठुकरा देते है और प्रतिज्ञा करते है "यदि मुझे लडाईके मैदानमे मोह और सेनाके साथ धनुप-बाण लिये हुए मकरध्वज मिल गया तो मै नि सन्देह उसका बध कर डालूँगा।"

चतुर्थ परिच्छेदके प्रारम्भमें ही हमें देखनेको मिलता है कि जिनराज अपनी प्रतिज्ञाके निर्वाहके लिए कितने तैयार है। उस समय प्रतीत होता है कि उनकी प्रतिज्ञा वर्षाकालीन क्षुद्रनदकी वह धारा नही है जो प्रारम्भमे बडे ही वेगके साथ एकदम उमडती है और बसन्तमे ही जिसका नामचिह्न तक लुप्त हो जाता है। वह अपने सकल्पके अनुसार तुरन्त ही सवेगको सैन्य-सम्मेलन करनेका आदेश देते है और सेनाके सम्मिलित होते ही उसे साथ लेकर मकरध्वजके ऊपर चढाई कर देते है। युद्धकालमे आशिनी मकरध्वजकी ओरसे जिन-राजको ललकारती हुई लडाईके लिए जिनराजका आह्वान करती है, परन्तु वे पहले "गर्हित स्त्रीवधो यतः" की नीतिके अनुमार उसे स्त्रीके साथ सग्राम करनेके अनौचित्यको ही बतलाते है। लेकिन जब वह उद्धत

१ म० प० ५।९।११।

होकर जिनराजके ऊपर आक्रमण करनेपर उतारू होती हैं तो उन्हे विवश होकर उसे भूसात् कर देना पडता है।

यह बात जिनराजके लोकोत्तर चरित्रकी परिचायक है कि वे मकरध्वजको पराजित करनेपर भी उसे मार नही डालते। रति और प्रीतिकी प्रार्थनापर वे मकरध्वजकी प्रवेश-सीमा निर्धारित करके उसे जीवन-दान दे देते हैं और जब शुक्लध्यानवीर उनसे मकरध्वजको मार डालनेके लिए कहता है तो वे कहते हैं :

अरे शुक्लध्यानवीर, सुनो, राजनीतिका सिद्धान्त है कि शरणमे आये हुए शत्रुको भी नही मारना चाहिए।

मोक्षपुरकी प्रयाण-वेलामे भी जिनराजको अपने चारित्रपुरके निवासियोकी सुरक्षाकी पूरी चिन्ता है। सयमश्रीकी प्रार्थनापर वे तुरन्त ही वृषभसेन गणधरको बुलवाते हैं और अपनी प्रजाके सरक्षणका सम्पूर्ण दायित्व उन्हे सौपकर ही मोक्षपुरके लिए प्रस्थान करते हैं।

मकरध्वज

मदनपराजयके प्रारम्भमे ही पाठकको मकरध्वजका परिचय प्राप्त हो जाता है। मकरध्वज भव नामक नगरका राजा है। वह साधारण राजा नही है। समस्त देव-देवेन्द्र, नर-नरेन्द्र और नाग-नागेन्द्र आदि देवताओके ऊपर उसका अप्रतिहत शासन है। उसने तीनो लोकोपर विजय प्राप्त कर ली है। वह युवा है। रूपवान् है, महान् प्रतापी है। दानी है। विलासी है। रति और प्रीति नामक उसकी दो पत्नियाँ हैं और उसके प्रधान मन्त्रीका नाम मोह है, जिसकी सहायतासे वह बडे ही आरामके साथ अपने राज्य-कार्यका सचालन किया करता है।[1]

एक दिन अपनी भरी सभामे वह मोहसे किसी नूतन समाचारको सुनानेके लिए अनुरोध करता है और मोहके द्वारा बतलाये गये मुक्ति-कन्याके सौन्दर्य-वर्णन और जिनराजके साथ होनेवाले उसके विवाहके समाचारको सुनकर उसके मनमे आश्चर्य और मोह – दोनो उत्पन्न हो जाते हैं। जिनराजका अश्रुतपूर्व नाम सुनकर वह आश्चर्यान्वित होता है और मुक्ति-कन्याकी सौन्दर्य-वर्णना उसे मोहित कर देती है। इतना ही नही, वह इतना विवेक-विकल हो जाता है कि अकेले ही जिनराजके साथ सग्राम करनेके लिए चल पडता है और मोहके द्वारा समझाये जानेपर ही वह अपनी इस अज्ञवृत्तिमे विरत होता है।

उपलब्ध सस्कृत-साहित्यमे शायद यह पहला उदाहरण है जिसमें पतिने अपनी पत्नीको दूत बनाकर किसी परकीया या कुमारीको अपने प्रति आकर्षित करनेका यत्न किया हो। परन्तु यहाँ मकरध्वजने ऐसी ही एक मूर्खता करनेका दुःसाहस किया है। वह अपनी पत्नी रतिके सामने प्रस्ताव रखता है कि वह मुक्ति-कन्याके पास जाकर उसकी मनोवृत्तिको मकरध्वजके प्रति आकर्षित करे। ऐसा करते समय उसे तनिक भी लज्जा नही लगती है और रतिके लाख समझानेपर भी वह जरा भी नही समझता है। इसके विपरीत वह रतिके सतीत्वपर लाछना लगाता है और ऐसा मिथ्यारोप करते हुए उसे अणुमात्र भी सकोच नही होता है कि रति, तूने अपने मनमे किसी दूसरे पतिकी तजवीज कर ली है। इसीलिए तू मुझे इस शोक-सागरमे डुबोकर मार डालना चाहती है! स्त्रियाँ भला कब एकसे प्रेम कर सकती है।[2]

मकरध्वजने स्वय उन्मार्गमे अग्रसर होते हुए भी रतिके सतीत्वपर जिस बुरी तरहसे आक्रमण किया है, उसका दूसरा उदाहरण कदाचित् ही कही देखनेको मिले! परन्तु उसका यह मोह तब दूर होता है जब मोह उसे बुरी तरहसे डाटता है।

इतना होनेपर भी हम देखते है कि मकरध्वजका स्वाभिमान सुप्त नही है। जिनराजके निकटसे जब राग और द्वेष दोनो दूत वापस आते है और उसे बतलाते हैं कि महाबली जिनेन्द्र तुम्हारी तनिक भी आज्ञा माननेको तैयार नही है तो उसके मनमे प्रतिशोधकी अग्नि प्रज्वलित हो उठती है और वह तत्काल ही जिनराजके विरुद्ध लडाई छेडनेके लिए अपनी सेनाको एकत्रित करनेकी आज्ञा दे देता है। इतना ही नही,

---

१ म० प०, पृ० ३। २ म० प०, प्र० प०, पृ० २५।

वह प्रतिज्ञा करता है कि "प्रभात होते ही यदि मैंने जिनराजकी वही दशा न की जो हरि, हर और ब्रह्माकी की है तो मैं जाज्वल्यमान आगमे प्रवेश कर जाऊँगा।"

मकरध्वजकी प्रतिशोधवृत्ति और जिनराजको पराजित करनेका सकल्प कितने गहरे रूपमे मूर्तिमान् हो उठा है।

एक और जगह मकरध्वजकी वीरोचितवृत्ति देखनेको मिलती है। जिनराजकी बलवत् सेनाको देखकर सज्वलनके मनमें यह विश्वास हो जाता है कि इस सग्राममें निश्चय ही मकरध्वजको पराजित होना पडेगा। वह मकरध्वजसे निवेदन करता है "महाराज, जिनराजकी सेना उतनी समर्थ है कि आप उसे पराजित नही कर सकते। अतः उसके विरुद्ध लडाई लडनेके छलसे कोई अर्थ सिद्ध होनेवाला नही है।" इतना सुनते ही मकरध्वजकी वीरवृत्ति पुनः सजग हो उठती है। वह कडककर कहता है "अरे मूढ, क्षत्रियोकी वृत्तिको तू छल बतला रहा है? मैं जीवनकी परिभाषासे बहुत अच्छी तरह परिचित हूँ और मनुष्य जो थोडे समय तक भी विज्ञान, शूरवीरता और विभव आदि आर्योचित गुणोके साथ प्रसिद्ध होकर जीवित रहता है, सच्चे अर्थमे जीवन इसीका नाम है। वैसे तो कौवेका भी एक जीवन है और वह भी अपना पेट भर ही लेता है।"[1]

मकरध्वजका आवेश अभी उपशान्त नही हुआ है। वह कहता है: "जिनराजने अपने घरके भीतर गरजते हुए बहुत दिन तक चैनकी वशी बजा ली। अब वह हमारे बन्धनमे आ फँसा है। देखते है, कैसे और कहाँ निकलकर भागता है?"

जिनराजके साथ युद्ध करते हुए भी वह अपने मुँहसे ही अपनी पौरुष-वर्णनासे बाज नही आता है। वह जिनराजसे कहता है: "अरे जिनराज, क्या तुम मेरा चरित्र नही जानते हो? रुद्रका गगाको लाँघना, विष्णुका समुद्रमे वास करना, इन्द्रका स्वर्गमे रहना, शेषनागका पातालमे प्रवेश करना, सूर्यका मेरुके निकट छिपना और ब्रह्माका मेरा सेवक होना, यह सब मेरा ही तो प्रताप है। तीनो लोकमें ऐसा कौन है, जो मेरा सामना कर सके?"

परन्तु चतुर्थ परिच्छेदके अन्त तक पहुँचते-पहुँचते मकरध्वजको अपने पौरुषका बिलकुल ही भरोसा नही रह जाता है। जिनराजके द्वारा पराजित होनेसे उसका हृदय इतना टूट जाता है कि उनके द्वारा उसे प्राण-दान देनेपर भी वह अपने ही रक्षक शुक्लध्यानवीरका विश्वास नही करता है और आत्म-घात कर डालता है।

मोह

मोह मकरध्वजका प्रधान सचिव है। एक सच्चे मन्त्रीमे जो बाते पायी जानी चाहिए, वे सब उसमे विद्यमान है। वह मकरध्वजका सच्चा हितैषी है और उसके सन्मार्ग-प्रदर्शनका एक भी अवसर उसने अपने हाथसे नही जाने दिया है। मकरध्वज मुक्ति-कन्याकी रूप-माधुरीपर मोहित होकर जब अकेले ही जिनराज-के साथ लडाई लडने जानेके लिए तैयार होता है तो मोह ही उसे अविचारित प्रवृत्तिसे रोकता है। मुक्ति-कन्याके निकट आर्यिका वेषमे जाती हुई रतिको मोह ही वापस लौटा लाता है और मकरध्वजके इस अन्याय-का खुलकर विरोध करता है। ऐसा करते समय वह भूल जाता है कि वह एक त्रैलोक्याधिपति राजाको डाट लगा रहा है। वह कहता है "देव, बतलाइए तो, यह किस प्रकारकी उत्सुकता तुम्हारे मनमे समायी? तुममे इतनी भी सहनशीलता न निकली जो मैं वापस तो आ जाता। भला, कभी किसीने अपनी पत्नीको भी दूत बनाकर भेजा है? यदि जिनराजके रक्षक रतिको मार डालते तो इस स्त्रीहत्याका पाप कौन अपने सिरपर लेता? ससार-भरमे जो अपयश फैलता, वह अलग। खेद है कि मेरी अनुपस्थितिमे तुम इतना भी विचार न कर सके!"

मोहकी मकरध्वजके प्रति बहुत ही उत्कट भक्ति और निष्ठा है और वह अपनी बुद्धिपूर्वक किये गये प्रत्येक प्रयत्नको मकरध्वजके प्रभावसे ही सफल हुआ बतलाता है। आत्म-प्रशसा सुननेका उसे तनिक भी व्यामोह नही है। जब मोह मकरध्वजको सुनाता है कि मैंने समस्त सैन्यका सम्मेलन कर लिया है और इस

---

१ म० प०, च० प०।

प्रकारका भी यत्न किया है जिससे मुक्ति-कन्या तुम्हारे साथ विवाह करनेके लिए तैयार हो जाये, तो मकरध्वज उसकी दिल खोलकर प्रशंसा करता है।

यह मोहका ही सुझाव था कि जिनराजके ऊपर आक्रमण करनेके पहले उसके सैन्यबल आदिके परिज्ञानके लिए जिनराजके पास दूत भेजा जाना चाहिए। और यह भी मोहका ही प्रस्ताव था कि दूतत्वका दायित्व राग और द्वेपके ऊपर ही छोडा जाना चाहिए।

यद्यपि मोहने मकरध्वजके सामने इस प्रकारका कोई विचार व्यक्त नही किया है कि उसे जिनराजके विरुद्ध सग्राम छेडनेकी कोई तैयारी नही करनी चाहिए और न ऐसा करनेसे उसे सफलता ही मिलेगी, परन्तु जब मिथ्यात्ववीर अकेले ही जिनराजको पराजित कर देनेका दु साहस प्रकट करता है तो मोहके मुँहसे उसका हार्दिक भाव व्यक्त हो ही जाता है और तब मिथ्यात्ववीरसे वह बलपूर्वक कहता है "ऐसा कौन बलवान् है जो सग्राममे जिनराजका सामना कर सके ?"

इस घटनाके पहले ही हमें एक बार और देखनेको मिलता है कि मकरध्वजके उज्ज्वल भविष्यके सम्बन्धमे मोहकी कोई अच्छी धारणा नही है। जिस समय मुक्ति-कन्याके निकट जाते हुए मार्गमे रतिकी मोहसे भेंट हो जाती है और वह कामकी इस मदान्ध वृत्तिका चित्र उसके सामने उपस्थित करती है, तब वह रतिसे स्पष्ट शब्दोमे अपना हार्दिक भाव प्रकट कर देता है। वह कहता है "देवि, आपने बिलकुल ठीक कहा है। परन्तु होनहार दुर्निवार है।"

मोहने 'होनहार दुर्निवार है' कहकर बहुत साफ कर दिया कि अब मकरध्वज महाराजका बहुत ही शीघ्र पतन होनेवाला है।

यह एक आश्चर्यकी बात है कि इस प्रकार तथा अन्य प्रकारोसे भी मकरध्वजके बलाबलके सम्बन्धमे पूरी जानकारी रखते हुए और उसका अनन्य हितैषी होते हुए भी मोहने मकरध्वजके सामने एक बार भी अपना यह हार्द नही रखा है कि उसे जिनराज-जैसे बलवान् नरेशके साथ कदापि सग्राम नही करना चाहिए।

मोह अपनी नाथ-निष्ठाका अन्त तक निर्वाह करता है। वह जिनराजके विरुद्ध लडाई लडनेके लिए बराबर मकरध्वजको प्रोत्साहित करता रहता है और अन्तमे स्वामीकी विजयके पीछे अपने प्राणोकी आहुति तक दे डालता है।

रति और प्रीति

मकरध्वजकी रति और प्रीति नामक दो पत्नियाँ है। इन दोनोमे रति बहुत ही कुशल मालूम देती है। वह मकरध्वजके मुख-मण्डलपर अंकित भाव-भगिमा देखकर ही जान लेती है कि उसके स्वामीको किसी गहरी चिन्ताने व्याकुल कर दिया है। वह अपनी सखी प्रीतिसे इस बातकी चर्चा करती है, परन्तु वह उसे 'अव्यापारेषु व्यापार' कहकर टाल देती है। अन्तमे रति ही अपने सम्पूर्ण साहसको समेटकर मकरध्वजसे उसकी चिन्ताका कारण पूछती है। वह पर-दु खकातर होकर अपने स्वामीकी चिन्ता दूर करना चाहती है, परन्तु विधिका विधान, जो उसके स्वामीकी ओरसे ही उसके ऊपर चिन्ता और दु खका पहाड टूट पडता है। मकरध्वज रतिसे प्रस्ताव करता है कि यदि तुम्हें हमारा तनिक भी दुःख-दर्द है तो तुम्हे इस प्रकारका यत्न करना चाहिए, जिससे अपने विवाहके अवसरपर मुक्ति-कन्या मुझे ही अपना जीवन-सगी चुने।

रति अनेक प्रकारके दृष्टान्तोसे, नीतियोसे और आर्ष कथाओसे मकरध्वजके इस विचारको बदलनेका प्रयत्न करती है, परन्तु उसका कोई परिणाम नही निकलता है। इसके विपरीत मकरध्वजकी ओरसे ही रतिको एक और असह्य लाञ्छनाका पात्र होना पडता है जो उसने किसी अन्य पतिकी तलाश कर ली है और वह मकरध्वजको इस शोकाग्निमे तिल-तिल जलाकर मार डालना चाहती है। रति इस समय लज्जा, घृणा और रोपकी प्रतिमूर्ति बन जाती है और जोरदार शब्दोमें मकरध्वजके इस अपवादका प्रतिवाद करती है। रतिके प्रतिवादको पढते समय हमे 'अभिज्ञानशाकुन्तल'की शकुन्तलाकी वह उक्ति ध्यानमे आ जाती है, जो उसने शापान्ध दुष्यन्तके प्रति तब सुनायी थी जब उसने पूर्वमे स्वीकृत किये गये शकुन्तलाके पत्नीत्व-सम्बन्धको मानने-

से एकदम इनकार कर दिया था और इस प्रकारका अभियोग सूचित किया था मानो परकीय पुरुषकी आकाक्षासे ही उसने यह काण्ड खडा कर दिया है। शकुन्तलाने क्रोधसे काँपते हुए स्वरमे कहा था

"तुम्हे ज्जेव पमाण जानघ धम्मत्थिदि च लोअस्स।
लज्जाविणिज्जिदाओ जाणंति ण किंपि महिलाओ॥"

– राजन्, तुमने जो मेरा पाणिग्रहण किया है, उसका साक्षी धर्मके सिवा और कोई नही है। कुल-ललनाएँ क्या कभी इस प्रकार निर्लज्ज होकर परपुरुषकी आकाक्षा किया करती है ?

परन्तु इतने मात्रसे रतिको छुटकारा नही मिलता है। मकरध्वजसे उसकी चिन्ताके कारणको पूछने-के आरम्भमे ही रतिका यह अप्रकट मानसिक सकल्प था कि वह अपने स्वामीको चिन्तामुक्त करनेका यथा-शक्ति प्रयत्न करेगी और अपने पातिव्रत्यको सफल करेगी। अत मकरध्वजकी प्रस्तुत कार्य-सिद्धिके लिए रतिको अपनी प्रिय सखी प्रीतिका भी समर्थन प्राप्त होता है उसे आर्यिकाका वेष बनाकर मुक्ति-कन्याके निकट प्रस्थान कर ही देना पडता है। रतिकी इस प्रकारकी व्यथाका दूसरा उदाहरण कदाचित् ही उपलब्ध सस्कृत-साहित्यमे कही अन्यत्र देखनेको मिले। उसकी इस व्यथाकी सच्ची अनुभूति इस प्रकारकी परिस्थितिके चक्रमे पडी हुई एक कुलागना ही कर सकती है। पर इस परितापकी अनुभूति उसे अधिक समय तक पीडित नही कर पाती। उसके पातिव्रत्यका प्रताप जोर लगाता है, कुछ दूर चलनेपर ही उसकी मोहसे भेंट हो जाती है और वह उसे वापस ले आता है।

एक भारतीय पतिव्रता नारीकी भाँति मकरध्वजकी हित-चिन्ता रतिके मनको सदैव कुरेदती रहती है। मोहके धराशायी हो जानेपर जिस समय वहिरात्मा मकरध्वजके सामने रणस्थलीसे भाग चलनेका प्रस्ताव उपस्थित करता है, रति तुरन्त ही उसका समर्थन करती है। वह कहती है "देव, वन्दीका कहना विलकुल यथार्थ है। अब इसीमे कल्याण है कि हम लोग यहाँसे भाग चलें। इस समय आपको व्यर्थका अभिमान नही करना चाहिए।"

प्रीतिकी प्रकृतिमे रतिकी तरह मकरध्वजके लिए इस प्रकारकी सक्रिय चिन्ता कही भी देखनेको नही मिलती है। पहली बार जब मकरध्वज मुक्ति-कन्याकी प्राप्तिकी उत्सुकतामे सचिन्त दिखलाई देता है और रति उसकी इस मानसिक चिन्ताके कारणको जाननेकी उत्सुकता प्रकट करती है तो प्रीति इसे 'अव्यापारेपु व्यापार' बतलाकर तटस्थ रह जाती है। यहाँपर भी हमें प्रीति रतिकी तरह सचिन्त और उसके कल्याणा-चरणमे तत्पर दिखलाई नही देती है। जब रति मकरध्वजके सामने बन्दीके रणस्थलीसे भाग चलनेके प्रस्तावके औचित्यका समर्थन करती है तो प्रीति एक मध्यस्थकी तरह इतना ही कहकर रह जाती है "सखि, बेकार बात क्यो करती हो ? मकरध्वज एकदम मूर्ख, पापी और महान् आग्रही है – वह हम लोगोकी बात सुन नही सकते। अब जिनराजको जयश्रीकी प्राप्ति और हमारे वैधव्य योगको कौन टाल सकता है ?"

मालूम होता है, जैसे प्रीति मकरध्वजके स्वभावसे पूरी तरह परिचित है और उसके मतपरिवर्तनके सम्बन्धमे वह एकदम निराश हो चुकी है।

मकरध्वजके पराजित हो जानेपर यह रति और प्रीतिका ही प्रयत्न है कि वे जिनराजसे प्रार्थना करके मकरध्वजके प्राणोकी अभय माँग लेती है। परन्तु नियतिका नियोग, जिस सम्भावित वैधव्य योगको टालनेके लिए रति और प्रीति इतनी दौड-धूप करती है, वह मकरध्वजके आत्मघात कर लेनेसे व्यर्थ हो जाती है और वैधव्यका राहु इनके सौभाग्य सूर्यको बलात् आक्रान्त करके ही छोडता है।

राग और द्वेष

राग और द्वेष मकरध्वजके दूत है। यह इतने स्वामिभक्त है कि इनमे यथेष्ट वीरोचित पौरुष होनेपर भी जिनराजके निकट मकरध्वजका सन्देश पहुँचानेके लिए सहर्ष दूतत्वका भार स्वीकार कर लेते है। इतना ही नही, वे इस स्वीकृत भारको उठाकर उसमें सफलता प्राप्त करनेका भी भरसक प्रयत्न करते है। वे इस बातको अच्छी तरहसे जानते है कि स्वामीका आदेश, चाहे वह अच्छा हो चाहे बुरा हो, जरूर ही पालन

करना चाहिए। अन्यथा सेवक राजाका प्रेम-पात्र नहीं हो सकता। जब ये दोनों जिनराजके दरबारमें जानेके पहले सज्वलनसे भेट करते हैं और सज्वलन इन दोनोंसे इस दूतत्वके भारको वहन करनेके कारणको पूछता है तो ये उसे उक्त उत्तर देकर ही मौन कर देते हैं।

राग द्वेष वस्तुत अपनी दूत-कलामे पूरे कुशल हैं। एक सफल दूतमे जो गुण पाये जाने चाहिए, वे सब उनमें विद्यमान हैं। जब सज्वलन इनमे कहता है कि तुम लोगोंका जिनराजके दरबारमे जाना हितकर न होगा, यह इतनेसे ही भयभीत नहीं हो जाते। इसके विपरीत वे सज्वलनसे यही कहते हैं कि अभ्यागतोंके साथ तो आपको ऐसा व्यवहार नहीं ही करना चाहिए।

परन्तु इन सब गुणोंके बावजूद भी इनमे एक दोष है और वह है इनकी उद्धतता। जब ये स्वामीकी इच्छाके प्रतिकूल जिनराजका प्रतिवाद सुनते हैं तो इन्हे रोष हो आता है और जिनराजके सामने ही ये अपनी चपलता प्रकट करने लगते हैं। यही कारण है जो सयमके द्वारा इन्हे कठोरतम दण्ड दिया जाता है और जिनराजके दरबारसे ये निकाल दिये जाते हैं।

मकरध्वज, बन्दी बहिरात्माको भी कुछ समयके लिए अपना दूत बनाता है, परन्तु अपनी वाचालताके कारण उसकी भी इसी प्रकारकी दुर्गति की जाती है।

रूपक योजना

मदनपराजय यद्यपि एक रूपकात्मक कथा-ग्रन्थ है, परन्तु नागदेवने इसमे हृदयहारी रूपकोंकी इतनी योजना की है कि यदि इसे 'रूपकभण्डार' कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। इन रूपकोंके निर्माणमें सचमुच नागदेवने अपनी एक गम्भीर कलापूर्ण सुरुचिका परिचय दिया है और ऐसा करते समय उन्होंने अपनी कल्पना और प्रतिभाका बडी ही सावधानीके साथ बहुत सूक्ष्म और गहरा उपयोग किया है। इस प्रकार एक-एक रूपक एक-एक जीवन्त चित्रका प्रतीक हो उठा है। मुक्ति-कन्याका रूपक देखिए

"उसका केशपाश मयूरके गलेके समान नीला है, फूलोंके समान कोमल है और सघन तथा कुटिल है। उसमें अनेक प्रकारके सुगन्धित कुसुम गुँथे हुए हैं, जिनपर यमुनाजलकी तरह काले-काले भ्रमर गुनगुनाया करते हैं। उसका मुख सोलह कलाओंसे पूर्ण एव उदित हुए चन्द्र-जैसा है और भ्रूलता इन्द्रके प्रचण्ड भुज-दण्डमे स्थित टेढे धनुषके समान है। उसके नेत्र विशाल हैं और वे विकसित एव वायु-विकम्पित नील कमलोंसे स्पर्धा करते हैं। उसकी नासिका कान्तियुक्त है, सुवर्ण और मोतियोंके आभूषणोंसे भूषित है तथा तिलक वृक्षके कुसुमके समान सुन्दर है। उसका अधर-बिम्ब अमृत रससे परिपूर्ण है और मन्द तथा शुभ्र स्मितसे विलसित हो रहा है। उसका कण्ठ तीन रेखाओंसे मण्डित है और उसमें अनेक प्रकारके नीले, हरे मणियों तथा सुन्दर, उज्ज्वल एव गोल-गोल मोतियोंसे अलकृत हार पडे हुए हैं। उसका शरीर चम्पाके अभिनव प्रसूनकी तरह स्वच्छ और तपाये गये सोनेकी कान्तिके समान गौर है। उसकी बाहु-लता नूतन शिरीषकी पुष्पमालाकी तरह मृदुल है और मध्यभाग प्रथम यौवनमे विकसित तथा कठोर स्तन-कलशके भारसे झुका हुआ और कृश है। उसकी नाभि, जघन, घुटने, चरण और चरण-ग्रन्थियाँ लावण्यसे निखर रही हैं।"

नागदेवकी कल्पनाकी सूक्ष्म तूलिकासे चित्रित किया गया मुक्ति-कन्याका यह चित्र एकदम अपूर्व और मनोहर है। कलाकार, मुक्ति-कन्याके इस चित्रको कतिपय विभिन्न रगोंसे अनुरजित करके एक-दूसरे आकारमें भी उपस्थित कर सकता था, परन्तु मालूम देता है, मकरध्वजको रिझानेकी दृष्टिसे ही उस चटकीले चित्रको तैयार किया है। जो हो, नागदेव-द्वारा चित्रित किया गया मुक्ति-कन्याका यह चित्र उपलब्ध सस्कृत-साहित्यमें बेजोड है।

तृतीय परिच्छेदमें रेखाकित किये गये मकरध्वजकी सैन्यका एक चित्र देखिए

"मकरध्वजका सैन्य, दुष्ट लेश्यारूपी पताका-पटोंसे सघन था। इन पताकाओंमे कुकथारूपी उन्नत दण्ड लगे हुए थे, और ये आकाशमे आन्दोलित होकर दर्शकोंके मनमें आह्लाद उत्पन्न कर रही थी। इसके सिवा यह सैन्य जाति, जरा और मरणरूपी स्तम्भोंसे सुशोभित था। मिथ्यादर्शनरूपी पाँच प्रकारके शब्दोंसे जगत्को

वहरा कर रहा था और दस कामावस्थारूपी छत्रोके कारण इसमें सर्वत्र अन्धकार घनीभूत हो रहा था।"

इस चित्र-दर्शनके साथ जिनराजके सैन्य-चित्रके दर्शन कीजिए

"जीवके स्वाभाविक गुणरूपी अश्वोके खुराघातमे उठी हुई धूलिसे आकाश-मण्डल आच्छन्न हो गया है। चार प्रमाण और सप्तभगी रूप महान् गजोके चीत्कारके सुननेसे दिग्गजोको भी भय होने लगा है। चौरासी लक्षणरूपी महारथके कोलाहलने समुद्रके गर्जनको भी अभिभूत कर दिया है। पाँच समिति और पाँच महाव्रतोके सन्देशने तथा स्याद्वादभेरीके शब्दने दिङ्मण्डलको वहरा कर दिया है। गगनचुम्बी शुभलेश्या रूपी विशाल दण्डोसे अनगकी सेनाको भी भय होने लगा है। लब्धिरूपी पताकाओकी छायासे दिक्चक्र भी आच्छन्न हो गया है और विविध व्रतरूपी स्तम्भोसे सैन्यकी शोभा और अधिक निखर आयी है।"

इन असमान सैन्य चित्रोके चित्रणमे नागदेवने जिस कुशलताका उपयोग किया है, उसमे उनकी सूक्ष्म कल्पना-शक्तिका सहज ही आभास प्राप्त होता है।

शका-शक्तिका चित्र देखिए

"शका-शक्ति वीरश्रीकी वेणी है। कामदेवके भुजवलसे उपार्जित द्रव्यकी रक्षाके लिए नागिन है। शत्रु-भुजाओकी सेनाके भक्षणके लिए यमराजकी जिह्वा है। क्रोधाग्निकी कील है। विजयकी वधू है और मूर्तिमान् मन्त्रसिद्धि है।"

देखिए, जिनराजका यह चित्र कितना सजीव वन पडा है

"वह मोक्षरूपी नदके राजहस है। साधुरूपी पक्षियोके विश्राम-स्थान है। मुक्ति-वधूके पति है। काम-सागरके मन्थनके लिए मन्दराचल है। भव्यजनोके कुलरूपी कमलोको विकसित करनेके लिए सूर्यतुल्य है। मोक्षके दरवाजेके किवाड तोडनेके लिए कुठार है। विषयरूपी विषधरके लिए गरुड है। साधुरूपी सरोवरके विकासके लिए चन्द्रमा है और मायारूपी हथिनीके लिए सिंह है।

मकरध्वजके मनोगजका चित्र भी अपूर्व दिख रहा है

मनोगजकी सूँड विशाल ससार है। चारो पैर कषाय है। दाँत राग और द्वेष है और मनोहर नेत्र दो आशाएँ हैं।

वृषभसेन गणधरका शब्द-चित्र भी देखिए

"वे शास्त्ररूपी समुद्रके पारगामी है। चन्द्रमाकी तरह मनुष्योको आह्लादित करते है। मदनरूपी हाथीके लिए सिंहकी तरह हैं। दोषरूपी दैत्योके लिए अमरेन्द्र हैं। समस्त मुनियोके नायक हैं। कर्मोको नाश करनेमे कुशल हैं। कुगतिके नाशक है। दया तथा लक्ष्मीके लीलायतन है। ससारके पकको प्रक्षालित करनेवाले है। याचकोके मनोरथ पूर्ण करनेवाले है। समस्त गणधरोके ईश है और ज्ञानके प्रकाश है।"

इनके अतिरिक्त वहिरात्मा वन्दी, अन्याय काहलिक, मद-कुजर, धर्म-वीर, अविचार-कारावास, सम्यक्त्ववीर, षडायतन-बाण, आकाक्षा आयुध, आवश्यक-बाण, स्याद्वाद-भेरी, कर्म-धनुष और तत्त्वमाला आदि अनेक अद्भुत रूपक, समुद्रमे रत्नोकी तरह स्थान-स्थानपर इसमे बिखरे हुए दृष्टिगोचर होते है।

भाषा

मदनपराजयकी भाषा रूपकोके जालमें जकडी हुई होनेपर भी दुरूह नही है। सुबोध होनेपर भी परिष्कृत नही है और कही-कही वह इतनी शिथिल मालूम देती है, मानो नागदेवने उसे सँवारनेका तनिक भी यत्न नही किया है। यही कारण है जो हमे इस ग्रन्थमे कुछ ऐसे स्थल देखनेको मिलते है, जो भाषाशास्त्रकी दृष्टिसे स्खलित और असगत है।

१ निम्नलिखित धातुओके प्रयोग विचारणीय है

मिमिलतु के स्थानपर 'अनुमिलतु' का प्रयोग किया गया है (पृ० ५९, प० १५)। निरीक्ष्यसेके स्थानपर 'निरीक्ष्यसि' का प्रयोग हुआ है (पृ० १०६, प० १), और आकर्णतिके स्थानपर 'आकर्णते' प्रयुक्त किया गया है। (पृ० ११९, प० १)।

२ निम्नलिखित कृदन्तके तथा साधारण प्रयोग विचारणीय हैं :

आह्वानके स्थानपर 'आह्वानन' का प्रयोग किया गया है (पृ० १११ प० २)। अवगणयमानःके स्थानपर 'अवगणय्यमाण'का प्रयोग किया है (पृ० ७८ प० ३)। लम्बमानके स्थानपर 'लम्ब्यमान' प्रयुक्त हुआ है (पृ० ८२ प० १४)। त्यक्त्वाके स्थानपर 'त्यज्य' का प्रयोग हुआ है (पृ० ८४ प० २)। सन्धायके स्थानपर 'सन्धित्वा'का (पृ० ९८ प० ४), आहूताके स्थानपर 'आह्वानिता'का (पृ० १०२ प० १), एभिःके स्थानपर 'इमैः' का (पृ० १५ प० १०), चङ्क्रमित्वा या प्रचङ्क्रम्यके स्थानपर 'चङ्क्रम्य'का (पृ० २१ प० ९), जीव्यमानःके स्थानपर 'जीवमान' का (पृ० ४१ प० ५, पृ० ४२ प० ३), क्रुद्धयन्तौके स्थानपर 'क्रुद्धयमानौ' का (पृ० ५८ प० १), और सक्रुद्धयन्के स्थानपर 'सक्रुद्धयमानः' का प्रयोग किया गया है।

३ निम्नलिखित स्थलोपर लोट्के अर्थमें वर्तमान लकारका प्रयोग किया गया है

क्रियते (पृ० ३७ प० ८, पृ० ५१ प० ११), प्रक्षिप्यते (पृ० ७२ प० १३), क्रियते जीव्यते (पृ० ७३ प० २), क्रियते गम्यते (पृ० ९७ प० ४, ५) और (पृ० ९९ प० १४), सस्मर्यते (पृ० १०३ प० ७), वध्यते-क्रियते (पृ० १०८, प० ९, ११) तथा कथ्यते (पृ० ११० प० ६)।

४ निम्नलिखित सन्धिस्थल विचारणीय है

'यतो कुमारी' (पृ० ७० प० १०) में हश् और अत्के परे न होनेपर भी उत्व और पश्चात् ओत्व कर दिया गया है। 'चन्द्रमार्कौ' मे चन्द्रमस् शब्दके अदन्त न होनेपर भी सवर्ण दीर्घ किया गया है (पृ० ७२ प० २)। इसी प्रकार 'हृष्टमनाब्रवीत्' (११६ प० १३) में मनस् शब्दके सान्त होनेपर भी सवर्ण दीर्घ कर दिया गया है तथा 'उत्थित कीदृशोऽसौ' (पृ० ११९ प० १०) में नियम-प्राप्त न होनेपर भी विसर्गका लोप कर दिया गया है। इस प्रकार छन्दोभगकी सुरक्षा तो कर ली गयी है, परन्तु सन्धिगत नियमानुसार प्रयोगोमें स्खलना आ गयी है।

५ निम्नाकित वाक्यासगतियाँ ध्यान देने योग्य हैं :

१. अथाऽसौ जीव (व्य) मानो भूत्वा ' त्रयाणामभिमुखो भूत्वा यथासख्य निपातिता (पृ० ४२, प० ५)। २ तस्य नाशो विजानीयात् (पृ० ३५ प० ३)। ३ रक्ष मे वैधव्यम् (पृ० ८६ प० ९)। ४ ततोऽनन्तर सम्यक्त्ववीरेण यावत् स्वसैन्य भज्यमान दृष्ट तावद्धावन्नागत्य जिनराज प्रति प्रतिज्ञा गृहीतवान् (पृ० ८८ प० ३)। ५ तत्त्वया तद्विद्याबलेनाभीष्टसिद्धिर्भवति (पृ० १०१ प० ११)। ६ तावद्धर्मध्यानेन समरक्रुद्धेनाग्रत स्थित्वा मोहमल्ल' शतखण्डमकार्षीत् (पृ० १०७ प० ९, १०)। ७ शरणागतमपि वैरिण न हन्यते (पृ० ११३ प० ४)। ८ त्वया तप श्रीगुणतत्त्वमुद्रान्, महाव्रताचारदयानयादीन्, एते ह्यवश्य प्रतिपालनीयान् (पृ० १२३, १२४ प० १४, १५, १)। ९ तेन मोहेन ता रतिरमणीमतिक्षीणा चिन्तापरिपूर्णा दृष्ट्वा विस्मितमना स मोह प्रोवाच (पृ० २८ प० १६, पृ० २९ प० १) 'तेन मोहेन' इन दो पदोके आधिक्यसे ही यह वाक्यासगति बन पडी है। १० न (ननु) मे कृष्णमासानि करालाश्च दन्ता (पृ० ९२ प० १२)। यह वाक्यासगति भाषाकी दृष्टिसे नही अपितु अर्थदृष्टिसे है। ११. सप्रापुस्तत्र शीघ्र जिनवरयात्रामगल गायनार्थम् (पृ० १२१ प० ९)।

६ निम्नलिखित विशेषण-विशेष्यभावकी असगति ध्यान देने योग्य है :

१ प्राप्तो मूढनृपैस्त्रय(त्रिभि)श्च सहित (तः) (पृ० ६२ प० ४)। २. ततः स केवलज्ञानवीर क्रुद्धमनो (ना) भूत्वाऽवोचत् (पृ० ९५ प० ५)। ३ नरकगतिकी उक्तिमें "मया विरहभीरुणा (पृ० ९१ प० १०)। ४ निर्घोषै रथजै स्वन प्रपतितम् (पृ० ७९ प० १)।

७. निम्नलिखित पुल्लिग शब्दोका नपुसक लिंगमे किया गया प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है

उपाय – "तथोपाय (य) कर्त्तुमारब्धम(ब्धोऽ)स्ति" (पृ० ७ प० ५)। श्वापद – "श्वापदमेकमागतमस्ति (पृ० ४० प० ८, ९), तथा "एतच्छ्वापदं मया मन्त्रेण कीलितमस्ति" (पृ० ४० प० १०, ११)। अभिलाप – तत् किं परदाराभिलाप कर्त्तु युज्यते ? (पृ० २९ प० १२)। वृत्तान्त – "तदेतद् वृत्तान्त त्वा प्रति कथ्यते" (पृ० ८७ प० १) तथा "वृत्तान्तमुक्त स पुनर्ववाद" (पृ० ११५ प० ९)। भग – "तावद्भङ्गमागत त्वत्सैन्यस्य" (पृ० ९४ प० ८)। पोत – "पोतानीव विभान्ति तानि रुधिरे" (पृ० ८३ प० १४) इनमें-से महाकवि जयसिंहनन्दिके वरागचरितमे भी (१५ सर्गका प्रथम पद्य) वृत्तान्त शब्दको नपुसक लिंगमे प्रयुक्त किया गया है।

८ इसी प्रकार कतिपय पुलिंग शब्दोका स्त्रीलिंगमे भी प्रयोग हुआ है :

जिनराजस्य बाणवर्षा न स्थिरा दृश्यते (पृ० १०६ प० २)। काय–क्षणविध्वसिनी काया (पृ० १०७ प० २)।

एक स्थानपर नपुसक लिंग स्वन शब्दका भी पुल्लिगमे प्रयोग हुआ है :

"निर्घोषै रथजै स्वन प्रपतितम्" (पृ० ७९ प० १)।

९ निम्नलिखित कारककी असगति भी विचारणीय है :

"किमर्थमेतस्य युष्माक मनसि भीतिर्विद्यते ? (पृ० १११ प० १२)।

१०. नीचे लिखी हुई समास असंगति भी विचारणीय है

१. ब्रह्माविष्णुमहेश्वरैरपि (पृ० ५१ प० १५)।

इनके सिवाय कुछ अन्य विशिष्ट प्रयोग भी विचारणीय हैं। शिवासख के स्थानपर 'शिवासखा'का प्रयोग किया गया है (पृ० ७७ प० ११) और पाणिनीयके "राजाह सखिभ्यष्टच्" की बिलकुल उपेक्षा की गयी है। सिकता शब्दके स्थानपर 'शिक्ता' का प्रयोग किया गया है (पृ० ८३।९ प० ११) और मालूम देता है कि छन्दोभगके दोषको बचानेकी दृष्टिसे ही यह किया गया है। 'काया' शब्द देशी भाषाका है और यहाँ (पृ० १०७ प० २) जो उसका स्त्रीलिंगमे प्रयोग हुआ है, वह इस भाषाके प्रबल प्रचारके कारण ही प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। एक स्थानपर काव्यगत प्रसिद्धित्याग दोष भी दिखलाई देता है। यथा – "स्वनान्मृगेन्द्रस्य यथा गजादयः" (पृ० ९० प० ११)। यहाँ सिंहनादके अर्थमें प्रयुक्त हुआ स्वन शब्द मध्यम ही है। इसके अतिरिक्त युद्धविस्तारेणके स्थानपर "युद्धविस्तरेण" (पृ० १०१ प० १) का भी प्रयोग किया गया है। और शिल्पकारकके स्थानमे 'शिल्पिकारक'का ही सर्वत्र – आठ जगह प्रयोग हुआ है (पृ० ३४, ३५, ३७, ३९,)। 'पर किन्तु' का एक साथ प्रयोग किया गया है (पृ० ३० प० १४)। एक स्थानपर 'इत्थमेव' का भी साथ-साथ प्रयोग हुआ है (पृ० ७५ प० ११) और एक जगह 'नानाविधैः प्रकारैः' का भी उल्लेख किया गया है (पृ० १०९ प० १४)।

इसके सिवा एक स्थानपर 'पञ्चेषुना' के णत्वकी उपेक्षा की गयी है (पृ० ७३ प० १), तथा फालके अर्थमे 'फरी' शब्द प्रयुक्त हुआ है (पृ० ९६ प० १०)।

शैली

मदनपराजय रूपक-प्रधान एवं रूपकात्मक ग्रन्थ होनेपर भी पंचतन्त्र और सम्यक्त्वकौमुदीकी शैलीपर लिखा गया है। यद्यपि पचतन्त्रकी तरह मदनपराजयमे मूलकथाके अन्तर्गत अवान्तर कथाओकी एक बहुत लम्बी सख्या नही पायी जाती है, परन्तु इसमे भी मूलकथावस्तुकी चर्चाको प्रामाणिक और प्रभावोत्पादक बनानेकी दृष्टिसे कतिपय स्थलोमे पचतन्त्रकी तरह अवान्तर कथाओका भी समावेश किया गया है। मदनपराजय पचतन्त्रकी ही तरह गद्य-पद्य दोनोमे लिखा गया है और इसमें भी पात्रोकी उक्तियोको प्रभावपूर्ण और जोरदार बनानेकी दृष्टिसे प्रत्येक स्थलपर सुन्दर सुभाषित और समुचित नीतियोका प्रयोग हुआ है।

मूलकथावस्तु गद्यसे प्रारम्भ होती है, परन्तु कथापात्रोके वार्तालापको समर्थित करनेके लिए सुभाषित और नीतियोके रूपमे पद्योका भी प्रचुरतासे व्यवहार किया गया है। पर पचतन्त्रकी इस तथोक्त शैलीकी दृष्टिमे मदनपराजयकी शैलीमे एक और विशेषता है। और वह यह है कि जहाँ पचतन्त्रकी मूल कथावस्तु गद्यमे ही चलती है और पात्रोकी उक्तियोको प्रभावक और बलवत् बनानेकी दृष्टिसे ही पद्य प्रयुक्त किये गये दिखलाई देते हैं, वहाँ मदनपराजयमे मूलकथावस्तुको गद्य और पद्य दोनो ही में चलाया है।

मदनपराजयसे पहले लिखे गये किसी भी रूपकात्मक (Allegorical) ग्रन्थमे मदनपराजय-जैसी सूक्तियो और सुभाषितोकी भरमार नही देखी जाती है। जान पडता है कि नागदेव पचतन्त्रकी शैलीसे बहुत अधिक प्रभावित थे। यही कारण है जो उन्होने मदनपराजयसम्बन्धी अपनी रूपकात्मक रचनाको सर्वप्रथम पंचतन्त्रकी शैलीपर लिखा और प्रधान कथावस्तुके ग्रथन-कालमें जहाँतक उनसे बन पडा उन्होने सुभाषितो और सूक्तियोको प्रयुक्त करनेका एक भी अवसर अपने हाथसे नही जाने दिया।

मदनपराजयके तुलनात्मक अध्ययनसे प्रतीत होता है कि नागदेवकी चित्रण-शैली भारतीय पुण्य पुरातनमे पूर्णत प्रभावित और आकर्षित है। यही कारण है जो हमे जिनराज और मकरध्वजके बीच होनेवाले युद्धमें भारतीय आदर्श यौद्धिक पद्धतिकी झाँकी दिखलाई देती है और जिनराज तथा मुक्ति-कन्याके स्वयवर-की सुन्दर वर्णना हमें स्वयवरके उस भारतीय आदर्श वैवाहिक युगमे ला छोडती है। मदनपराजयकी समर पद्धतिमें कोई नवीनता नही है। भारतीय प्राचीन युद्धपद्धतिके अनुसार युद्धके पूर्व यहाँ भी प्रतिपक्षीके पास दूत भेजा गया है और समरकालीन अस्त्रोमे भी वही पुराने तीर, भाला, परशु, गदा, शक्ति, कुन्त, कृपाण, पट्टिश और चक्र आदि अस्त्र-शस्त्रोका ही उपयोग हुआ है। स्वयवर पद्धतिसे विवाह होना और उसमे भी धनुर्भगको स्थान दिया जाना भारतकी एकदम प्राचीन कल्पना है।

इसी प्रकार प्राचीन परम्पराको ध्यानमे रखते हुए नागदेवने स्त्री-निन्दाके काण्डको अपनी रचनामें भी समाविष्ट कर दिखलाया है। यद्यपि नागदेवने इस काण्डको मुक्ति-कन्याकी प्राप्तिके लिए पागल मकरध्वजके द्वारा रतिकी निन्दा करनेके प्रसगमे उपस्थित किया है, परन्तु इतने मात्रसे हम उन्हे स्त्री-निन्दा करनेवाले प्राचीन आचार्य वर्गकी परम्परासे विभक्त नही कर सकते। यदि मदनपराजयके कर्त्ताको स्त्री-निन्दाका पक्ष इष्ट न होता तो उस प्रसगमें उन्हे एक दो सुभाषितोको उद्धृत करके ही विरत हो जाना चाहिए था, परन्तु हम देखते है कि उन्होंने अपने इस पक्षकी पुष्टिमे लगातार दस पद्योका उद्धरण दिया है, वहाँ उन्होने वेश्याकी निन्दाको सूचित करनेवाले 'मृच्छकटिक' नाटकके एक पद्यमे हेरफेर करके उसे सामान्य स्त्री-निन्दापरक करनेका भी साहस किया है।

ससारमे सभी पुरुषो और स्त्रियोको एकान्तत अच्छा और बुरा नही कहा जा सकता। अच्छाई और बुराई दोनोमें ही समान रूपसे पायी जाती है। कुछ पुरुष अच्छे होते है तो कुछ स्त्रियाँ अच्छी होती है और कुछ स्त्रियाँ बुरी होती है तो कुछ पुरुष बुरे होते है। ऐसी स्थितिमे जहाँ एक स्त्री-लेखकके द्वारा समग्र पुरुष जातिपर किया गया निन्दात्मक आक्रमण समुचित नही कहा जा सकता, उसी प्रकार वहाँ पुरुष-लेखकोके द्वारा समग्र नारी जातिपर किया गया यह निन्दात्मक आक्रमण भी समुचित नही है। यह दलील युक्ति-युक्त नही कही जा सकती कि नारी पुरुषके साधना-मार्गमे बाधक चट्टान है। क्योंकि नारी साधन-मार्गमे पुरुषके भी बाधक होनेकी दलील उसी आसानीके साथ उपस्थित की जा सकती है। सस्कृत साहित्यमे स्त्री-निन्दाकी परम्परा प्राचीन है। उसके मूलमे कौन-सी मनोवृत्ति काम करती रही, इसे ठीक-ठीक नही कहा जा सकता। परन्तु इतना सुनिश्चित है कि पुरुषने अपनी साधना-सम्पत्तिको सुरक्षित रखनेके लिए ही यह किलेबन्दी करनेका आयोजन किया है। यह परम्परा काफी अरसे तक चलती रही और यहाँतक कि अठारहवी शताब्दीके हिन्दी साहित्यमें भी हम इसकी झाकियाँ ले सकते है। यद्यपि आधुनिक आलोचकोने इस परम्पराको समाहित करनेका एक नवीन प्रयत्न किया है,[1] परन्तु तथ्य यही है कि यह एक इस प्रकारकी पुरानी परम्परा रही है,

१. "जैसे एक आलोचक कहता है कि गोसाईजीने स्त्रियोकी बडी निन्दा की है
नारि स्वभाव सत्य कवि कहही। अवगुन आठ सदा उर रहही॥

जिसके संस्कारसे उत्तरवर्त्ती साहित्य भी अछूता नही रह सका । और कवि-सम्प्रदायगत विभिन्न विशेषताओको तरह वह भी निरूढ रूपमे इस अवधि तक चलती रही ।

मदनपराजयगत अन्तर्कथाएँ

मदनपराजयकी मूल कथाके भीतर जिन अन्य कथाओका समावेश हुआ है, उनका निर्देश ही हम अन्तर्कथाओके नामसे कर रहे है । इस तरहकी अन्तर्कथाएँ निम्नप्रकार है

१. ककुद्रुम राजाकी कथा, २. हेमसेन मुनिकी कथा, ३ जिनदत्त सेठकी कथा, ४ सिंह बनानेवालोकी कथा, ५ यद्भविष्यकी कथा और ६ ब्रह्मा और इन्द्रका सवाद ।

नागदेवने अपने मदनपराजयके अन्दर इन अन्तर्कथाओका समावेश तो किया है, परन्तु वे इन कथाओके मूल जनक नही हैं । इतना अवश्य है कि इन कथाओको नागदेवने जहाँसे उठाया है और जिस रूपमें उठाया है, उसमें कुछ परिवर्तन किया है और ऐसा करते समय उन्होने उनका रूप तो अपनी ही भाषामें सजाया है । आगेकी पक्तियोमें हम अपनी जानकारीके अनुसार इन अन्तर्कथाओके मूलस्रोत और उनके परिर्वातित रूपको दिखला रहे है । यह ध्यान देनेकी चीज है कि मदनपराजयके कर्ताने किस प्रकार इन अन्तर्कथाओको अपनी मूलकथामे आत्मसात् करनेका प्रयत्न किया है ।

नागदेवने सर्वप्रथम प्रीतिके मुँहसे ककुद्रुम राजाकी कथा कहलायी है । प्रीति अपनी सखी रतिसे कह रही है "सखि, महाराज मकरध्वज किस कारणसे इतने चिन्तित हो रहे है । मुझे इस सम्बन्धमे कुछ भी मालूम नही है और न मालूम करनेकी मै कुछ आवश्यकता ही समझती हूँ । क्योकि एक नीतिकारका कथन है कि जो मनुष्य अप्रयोजनीय कार्योंमें हस्तक्षेप करता है उसकी ककुद्रुम राजाकी तरह दुर्दशा होती है ।"

इस प्रकार नागदेवने मदनपराजयमे ककुद्रुम राजाकी इस अन्तर्कथाका नाम-निर्देश करनेपर भी उसका थोडा भी स्पष्ट विवरण नही दिया है कि ककुद्रुम राजाने कौन-से अप्रयोजनीय कार्यमे हस्तक्षेप किया था और उसकी किस प्रकारकी दुर्गति हुई ? 'ख' प्रतिमें अवश्य उक्त श्लोकके बाद इतना उल्लेख मिलता है कि "अस्य श्लोकस्य कथा प्रसिद्धा" । सम्भव है नागदेवने अपने मदनपराजयमे उक्त कथाका सम्पूर्ण विवरण भी दिया हो, परन्तु विद्वान् लिपिकार इस कहानीकी प्रसिद्धिसे परिचित हो और अपनी अभिज्ञताके कारण उन्होने कथाका सम्पूर्ण विवरण लिपिबद्ध न किया हो । इसके विपरीत "अस्य श्लोकस्य कथा प्रसिद्धा" यह लिख दिया हो और उत्तरवर्ती लिपिकार भी इसी लेखका प्रतिलेख करते गये हो । जब नागदेवने अन्य समस्त अन्तर्कथाओका अपने ढंगका पूर्ण विवरण दिया है और कही-कही उन्हे पल्लवित भी किया है तो यह सम्भव नही जान पडता कि वे अपनी रचनाकी पहली अन्तर्कथाका ही सम्पूर्ण विवरण न देते । अस्तु ।

प्रस्तुत कथाका मूल स्रोत हमें पंचतन्त्रमे देखनेको मिलता है उसमें ककुद्रुम राजाकी कथा आयी है[1], परन्तु उसमें उस कथाका उत्थान इस प्रकारसे नही पाया जाता, जिस प्रकार नागदेवने अपने मदनपराजयमे किया है । पचतन्त्रकी कथाका उत्थान निम्नप्रकार होता है

"त्यक्ताश्चाभ्यन्तरा येन बाह्याश्चाभ्यन्तरीकृताः । स एव मृत्युमाप्नोति यथा राजा ककुद्रुमः ॥"

—जिसने अपने आत्मीयोको तो छोड दिया और अनात्मीयोके साथ नाता जोड लिया, उसकी ककुद्रुम राजाकी तरह मृत्यु हो जाती है ।

इन पक्तियोसे निन्दा मालूम पडती है, पर यदि यह देखा जाये कि किसने कहा है, किस प्रसगमे कहा है । और किस अवस्थामे कहा है तो स्पष्ट हो जायेगा कि झगडेके समय रावणने मन्दोदरीसे ऐसा कहा है । क्या कोई भी समझदार विवाद अथवा कलहके समय कही हुई बातोको ठीक मानता है ।"

स्व० बाबूश्यामसुन्दरदास साहित्यालोचन, पाँचवाँ सस्करण, पृ० २९४ ।

१ पच० मि० भे० कथा १० ।

इसके अतिरिक्त नागदेवने इस कथाका अपनी रचनामें जिस प्रकारसे उत्थान किया है, पंचतन्त्रमे उसका भी स्रोत विद्यमान है और हम देखते है कि इस उत्थानके निर्वाहमे मूल स्रोतका तनिक भी अनुगमन नही किया गया है। पंचतन्त्रमें पाया जानेवाला स्रोत निम्नप्रकार है

"अव्यापारेषु व्यापारं यो नरः कर्त्तुमिच्छति। स एव निधनं याति कीलोत्पाटीव वानरः ॥"

—जो मनुष्य अप्रयोजनीय कार्योंमे हस्तक्षेप करता है, उसकी कीलको उखाडनेवाले बन्दरकी तरह मृत्यु हो जाती है।

यदि इस कथाका उत्थान सही दिशामे हुआ है तब तो यही मानना चाहिए कि ग्रन्थकारको अपनी रचनामें कील उखाडनेवाले बन्दरकी कहानी ही अभीष्ट रही होगी और यदि उन्हें ककुद्रुम राजाकी कहानी ही अभीष्ट रही हो तब यही मानना होगा कि प्रस्तुत कहानीका प्रारम्भ ही गलत तरीकेपर किया गया है।

मदनपराजयकी दूसरी अन्तर्कथा हेमसेन मुनिराजकी है। इस कथाके मूल स्रोतके सम्बन्धमे अभीतक कुछ विशेष ज्ञात नही हो सका है।

हाँ, इस कथासे कुछ अंशोमें मिलती-जुलती एक कथा हरिषेणाचार्यकृत बृहत्कथाकोश[1] में अवश्य पायी जाती है। यह कथा सुभोग राजाकी है, जिसकी मृत्यु उल्कापातसे हो जाती है और जो अपने मकानके पाखानेके विष्टाका कीडा बनता है।

चौथी कथा सिंह बनानेवालोकी है। जान पडता है, नागदेवने पंचतन्त्रके अपरीक्षितकारक[2]से इस कथाकी वस्तु ली है और उसे अपने ढंगसे गढनेका प्रयत्न किया है। पंचतन्त्रमे इस कथाका प्रारम्भ निम्नप्रकार होता है

"वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्याया बुद्धिरुत्तमा। बुद्धिहीना विनश्यन्ति यथा ते सिंहकारकाः ॥"

सुवर्णसिद्धि चक्रधरके लिए यह कथा सुना रहा है। वह सुनाता है कि "किसी स्थानमें चार ब्राह्मण-पुत्र रहते थे। इन लोगोकी परस्परमे घनिष्ठ मित्रता थी। इसमे-से तीन तो शास्त्रज्ञ थे, परन्तु बुद्धिमान् न थे और एक बुद्धिमान् था, पर शास्त्रका जानकार न था। एक दिन समस्त मित्रोने मिलकर विचार किया कि परदेश जाकर अर्थोपार्जन करना चाहिए। चारो ही अर्थोपार्जनके लिए रवाना हो जाते है। रास्तेमे उन्हें एक जंगलमें मरे हुए सिंहकी हड्डियाँ दिखलाई देती हैं। उन शास्त्रज्ञोमें-से एक कहता है कि हम लोगोको अपने विद्या-बलसे इस मरे हुए सिंहको जीवित करके अपने विद्या-बलका चमत्कार दिखलाना चाहिए, अतः वह हड्डियाँ इकट्ठी करने लगता है। दूसरा शास्त्रज्ञ उन हड्डियोको चमडा, मांस और रुधिरसे संयुक्त कर देता है। तीसरा ज्यो ही उसमे जीवन संचार करने लगता है, सुबुद्धि उसे रोकता है, परन्तु वह अपने संकल्पसे विरत नही होता है। सुबुद्धि एक वृक्षपर चढ जाता है। सिंह जीवित हो जाता है और उन शास्त्रज्ञोंको खा डालता है।"

मदनपराजयमे यही कथा कुछ पल्लवित और परिवर्तित रूपमे दिखलाई देती है। पंचतन्त्रमे जहाँ उन मित्रोके निवासस्थानका कोई निश्चित उल्लेख नही है वहाँ मदनपराजयमे उसके स्थानपर पौण्ड्रवर्द्धन नगरका नामोल्लेख किया गया है और मित्रोके भी शिल्पि (ल्प) कारक, चित्रकारक, वणिक्सुत और मन्त्रसिद्धके रूपमें नामोल्लेख हुए हैं। कथावस्तुमे भी तीन मित्रोके शास्त्रज्ञ परन्तु मूर्ख होनेका और एकके बुद्धिमान् परन्तु अशास्त्रज्ञ होनेका कोई निर्देश नही है। इसी प्रकार घटनाचक्रमें भी पंचतन्त्रीय कथावस्तुकी अपेक्षा विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। मदनपराजयकी प्रस्तुत कथावस्तुके घटनाचक्रके अनुसार चारो मित्र जंगलमें तो अवश्य पहुँचते है, परन्तु पंचतन्त्रकी कथावस्तुके अनुसार उन्हे सिंहकी हड्डियाँ दिखलाई नहीं देती। ये मित्र रातके समय चोर और व्याघ्र आदिसे अपनी रक्षा करनेके लिए एक-एक पहर तक चौकसी करनेका परस्परमें निश्चय कर लेते है। सर्वप्रथम शिल्पकारको पहरा देनेका अवसर प्राप्त होता है और वह अपनी निद्रा-भंग करनेके खयालसे काठका एक सिंह तैयार कर डालता है। चित्रकार अपने जागरण-कालमें उसपर चित्र-

१ बृहत्कथाकोशकी १५१वी कथा, २ पंचतन्त्र अपरीक्षितकारककी तीसरी कथा।

विचित्र चित्रकारी कर डालता है और ज्यो ही मन्त्रसिद्ध अपने बलसे उसे सजीव करनेके लिए उद्यत होता है, वणिक्सुत एक वृक्षपर चढ जाता है। अन्तमें काठका सिंह जीवित हो जाता है और उन तीनो मित्रोकी जीवन-लीला समाप्त कर डालता है।

इस कथानकसे मिलता-जुलता एक कथानक हरिषेणाचार्यकृत बृहत्कथाकोशमे भी पाया जाता है।[1] जिनदत्त सेठ महादमवर मुनिराजके लिए यह कथानक सुना रहे है। धनचन्द्र और धनमित्र नामक सहोदर भाई चम्पानगरीसे आयुर्वेदकी सर्वाङ्ग शिक्षा लेकर अपने घर (बनारस) की ओर लौट रहे थे। रास्तेमे इन्हे एक अन्धा और मरणासन्न सिह दिखलाई दिया। छोटे भाई धनचन्द्रने बडे भाई धनमित्रसे कहा भैया, मै इसे गुणकारी ओपधि देकर जीवित करना चाहता हूँ। धनमित्रने बहुत मना किया, परन्तु उसने एक न मानी। धनमित्र वृक्षपर चढ गया। धनचन्द्रने उस सिहकी आँखोमे दिव्य दवा डाल दी। वह सूझता बन गया और तत्काल ही धनचन्द्रको चाट गया।

मदनपराजयकी पाँचवी अन्तर्कथा यद्भविष्यकी है। नागदेवने इस कथाको सिंह बनानेवालोकी अन्तर्कथामें आये हुए तीन मित्रोके मुखसे शिल्पकारकके लिए कहलायी है। अत. मदनपराजयकी यह प्रत्यन्तर्कथा है और इसके कर्ताने इस प्रत्यन्तर्कथाका उत्थान निम्नप्रकार किया है

"मित्राणां हितकामाना यो वाक्यं नाभिनन्दति। तस्य नाशो (श) विजानीयाद् यद्भविष्यो यथा मृतः ॥"

यद्भविष्यकी इस कथाका स्रोत हमे पचतन्त्रमे[2] देखनेको मिलता है, परन्तु वहाँ यद्भविष्यकी कथाका प्रारम्भ उक्त प्रकारसे नही हुआ है। पचतन्त्रमें उसका उत्थान निम्नप्रकार पाया जाता है

"अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा। द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति ॥"

—अनागतविधाता और प्रयुत्पन्नमति तो सुखी रहते हैं, परन्तु बेचारा यद्भविष्य मारा जाता है।

नागदेवके 'मित्राणा हितकामानाम्' के आशयको अनुसरण करनेवाला एक पद्य जो पचतन्त्रमे आया है उसमे यद्भविष्य मत्स्यकी कथाका निर्देश न होकर एक मूर्ख कछुवेकी कथाकी ही सूचना हुई है। वह पद्य निम्न प्रकार है

"सुहृदां हितकामानां न करोतीह यो वचः। स कूर्म इव दुर्बुद्धिः काष्ठाद् भ्रष्टो विनश्यति ॥"

–जो हितैपी मित्रोकी बात नही मानता है, वह काठसे गिरे हुए मूर्ख कछुवेकी तरह नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार नागदेवने यदि पचतन्त्रके आधारसे ही यद्भविष्यकी कथाकी रचना की है तो उन्होने पचतन्त्रके पद्यमे जो परिवर्तन किया है वह एक विचारणीय विपय है। जान पडता है कि या तो पचतन्त्रकी इस कथाको सम्पूर्णत आत्मसात् करनेकी दृष्टिसे नागदेवने ऐसा किया है या सम्भव है पचतन्त्रकी किसी तत्कालीन प्रचलित पाठ-परम्पराके अनुसार ही नागदेवने उसे ज्योका त्यो अपने ग्रन्थमे उठा लिया है। यह भी सम्भव है कि मदनपराजयकी रचना करते समय नागदेवके सामने पचतत्रकी कोई प्रति न रही हो और अपनी स्मृतिके आधारपर ही उसका उपयोग करते हुए उनके द्वारा इस प्रकारके कतिपय स्खलन हो गये हो।

चतुर्थ परिच्छेदमे ब्रह्मा और इन्द्रके सवादमें ब्रह्माने अपनी, विष्णु और महादेवकी कामके द्वारा पराभूत होनेकी जो कहानी सुनायी है वह एक सवादके रूपमें ही ग्रथित हुई है।

इस प्रकार नागदेवने अपने मदनपराजयमे इन अन्तर्कथाओका निवेश करके मूल कथावस्तुको काफी सुसगठित रूपमे उपस्थित कर दिखाया है और इस प्रकार प्रस्तुत रचना बहुत ही सजीव, रोचक और हृदयस्पर्शी बन पडी है।

मदनपराजयके पद्य

नागदेवने मदनपराजयमे दो प्रकारके पद्योका समावेश किया है। कुछ पद्य तो इस प्रकारके है जिनकी रचना उन्होने स्वयं की है और कुछ इस प्रकारके है जो अन्य कवियोके है, परन्तु जिन्हे अपनी रचनाको

१ बृहत्कथाकोशकी १०२-३ री कथा।

२ पच मि० भे० पद्य ३४४।

मूल्यवान् और उपयोगी बनानेकी दृष्टिसे उन्होने अपनी रचनामे सम्मिलित कर लिया है।

इन सम्मिलित किये गये पद्योके भी तीन प्रकार हैं। एक प्रकार तो उन पद्योका है जो परकीय होते हुए भी 'उक्त च' के नीचे या 'उक्त च' की धारावाही परम्परामे 'अन्यच्च' अथवा 'तथा च' के नीचे ज्योके त्यो उद्धृत कर लिये गये है। ऐसे पद्योका अनायास ही पता चल जाता है कि वे नागदेव-द्वारा प्रणीत नहीं है। दूसरा प्रकार उन पद्योका है जो दूसरोके है, परन्तु 'उक्त च' आदिके रूपसे उनका उल्लेख नही हुआ है। विस्तृत अध्ययन और गम्भीर अनुसन्धानके विना ऐसे पद्योका सहज ही पता नही लगाया जा सकता कि इन पद्योके प्रणेता कौन हैं और उन्हें किन ग्रन्थोसे लेकर रचनाओमें सम्मिलित किया गया है। तीसरा प्रकार उन पद्योका है जो मूलत परकृत हैं, परन्तु जिन्हे तोड-मरोडकर और विना किसी 'उक्त च' आदिका उल्लेख करते हुए मदनपराजयकारने अपनी रचनाका मौलिक अग-सा वना लिया हैं। ऐसे प्रसगमे एकाधिक स्थलपर 'उक्तं च' का भी निर्देश किया है। इसके सिवा पहले और दूसरे प्रकारके पद्य अनेक स्थानोपर मूल ग्रन्थोमे उपलब्ध पाठकी अपेक्षा विभिन्न पाठान्तरको लिये हुए भी दिखलाई देते है। इनमे-से पहले प्रकारके पद्योको उदाहरणके रूपमे उपस्थित करनेकी जरूरत नही मालूम देती। मदनपराजयमे इस प्रकारके सैकडो पद्योका उपयोग हुआ है। हम यहाँ दूसरे-तीसरे प्रकारके पद्योको ही नमूनेके रूपमे उपस्थित करेंगे। दूसरे प्रकारके कतिपय पद्य निम्न प्रकार है :

"किमिह बहुभिरुक्तैर्युक्तिशून्यैः प्रलापैर्द्वयमिह पुरुषाणां सर्वदा सेवनीयम्।
अभिनवमदलीलालालस सुन्दरीणां स्तनतटपरिपूर्णं यौवन वा वन वा ॥ १।१६।"

यह पद्य सुभाषितत्रिशतीके वैराग्यशतकका ३९वाँ पद्य है, जो विना किसी 'उक्त च' के निर्देशके मदनपराजयमें पाया जाता है।

"छायासुप्तमृगः शकुन्तनिवहैरालीढमीलच्छदः कीटैरावृतकोटर' कपिकुलै. स्कन्धे कृतप्रश्रयः।
विस्रब्धो मधुपैर्निपीतकुसुमः श्लाध्यः स एव द्रुम सर्वाङ्गैर्बहुसत्त्वसङ्घसुखदो भूभारभूतोऽपर ॥२।२"

इसी प्रकार मदनपराजयके द्वितीय परिच्छेदके पाँच नम्बरवाले पद्यसे लेकर पन्द्रहवें नम्बर तकके पद्य एकाधिक पाठान्तरके साथ शुभचन्द्राचार्यकृत ज्ञानार्णवसे ज्योके त्यो उठा लिये गये हैं और इनके पूर्वमे 'उक्तं च' आदिके उल्लेख-द्वारा इस वातका कोई आभास नही दिया गया है कि ये पद्य किसी अन्य रचनाके हैं। हमने अपने पाद-टिप्पणोमें इस वातको वतलाया है कि ज्ञानार्णवके ये पद्य किस प्रकरणके है और उनकी कौन-सी प्रकरण-सख्या है। ज्ञानार्णवके अन्य पद्य भी इसी प्रकार नागदेवने अपनी रचनामें सम्मिलित कर लिये हैं।

यशस्तिलकचम्पूका निम्नलिखित एक पद्य भी इसी ढगसे मदनपराजय (परि० १ पद्य ६) में सम्मिलित किया हुआ दृष्टिगोचर होता है

दुराग्रहग्रहग्रस्ते विद्वान् पुसि करोति किम्। कृष्णपाषाणखण्डेषु मार्दवाय न तोयदः ॥६।२७०।"

पचतन्त्रके कुछ पद्य भी इसी पद्धतिसे मदनपराजयमें सम्मिलित हुए दिखलाई देते है। (उदाहरणके लिए, म० परा०, पृ० ९२ पद्य ५९, पृ० ९३ पद्य ६० तथा पृ० १०९ पद्य ८९)।

तीसरे प्रकारके कतिपय पद्य निम्न प्रकार हैं :

"यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति। यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्त्ता भविष्यति ॥'

—दुर्गासप्तशती अ० ५ मं० १२०।

नागदेवने इस पद्यके चतुर्थ चरणमे "स रत्नाधिपतिर्भवेत्" का परिवर्तन करके उसे अपने प्रकरणके अनुसार संगत् विठाया है (परि० २ पद्य १७)।

इसी प्रकार हितोपदेश मित्रलाभके निम्नलिखित पद्यको भी उत्तरार्द्धके चरणोमें परिवर्तित करके उसे किस चतुराईके साथ नागदेवने अपनी कथावस्तुकी धाराका एक मौलिक अग वना लिया है (परि० २ पद्य १८)।

"अर्था पादरजोपमा गिरिनदीवेगोपम यौवनं मानुष्यं जलविन्दुलोलचपलं फेनोपमं जीवितम्।
धर्मं यो न करोति निन्दितमतिः स्वर्गार्गलोद्घाटनं पश्चात्तापयुतो जरापरिगत. शोकाग्निना दह्यते॥"

मदनपराजयके कर्त्ताने उक्त पद्यके उत्तरार्द्धमें निम्नांकित परिवर्तन करके उसे अपने प्रकरणमें आत्मसात् किया है। इस पद्यमे जिनराजने राग और द्वेषसे सासारिक भोगोकी अनित्यता और अपनी अनासक्ति प्रकट की है। पद्यका परिवर्तित उत्तरार्द्ध इस प्रकार है

"भोगा स्वप्नसमास्तृणाग्निसदृशं पुत्रेष्टभार्यादिकं सर्वं च क्षणिकं न शाश्वतमहो त्यक्तं च तस्मान्मया ॥"

कतिपय वे पद्य, जो 'उक्त च'के नीचे उद्धृत किये जानेपर भी इच्छित हेर-फेरके साथ अपनी रचनाके मौलिक अग बना लिये हैं, निम्न प्रकार है

"ये स्त्रीशस्त्राक्षसूत्राद्यै रागाद्यैश्च कलङ्किताः। निग्रहाऽनुग्रहपरास्ते देवाः स्युर्न मुक्तये ॥२।६।"

उक्त पद्य आचार्य हेमचन्द्रके योगशास्त्रका है और इसमें बतलाया गया है कि अमुक प्रकारके देव मुक्ति प्रदान नही कर सकते। परन्तु नागदेवने इसी पद्यके चतुर्थ चरणके स्थानमे "सा सिद्धिस्तान् न वाञ्छति" को रखकर समूचे पद्यको अपनी रचनानुसारी रतिका वह उत्तर पद्य बना लिया है जिसमे रति मकरध्वजसे निवेदन कर रही है कि देव, वह मुक्ति-कन्या इस प्रकारके देवोको तो चाहती ही नही है।[1] साधारण पाठक इस बातको नही जान सकते कि उक्त पद्य नागदेवका स्वयका नही है।

इसी प्रकार पचतन्त्र मित्रभेदके निम्नाकित पद्यके 'राजेति'के स्थानपर 'जिनेति' को रखकर सम्पूर्ण पद्यको अपनी कथासे सुसगत मोहका उत्तर पद्य बना लिया है, जिसमें मोह जिनराजकी नगण्यताको दिखलाता हुआ मकरध्वजके उत्साहकी सवर्धना कर रहा है।[2] वह पद्य निम्न प्रकार है

"सर्पान् व्याघ्रान् गजान् सिंहान् दृष्ट्वोपायैर्वशीकृतान्। राजेति कियती मात्रा धीमतामप्रमादिनाम्॥४१॥"

पचतन्त्र मित्रभेदके निम्नलिखित पद्यके चतुर्थ चरणके स्थानपर "प्रसन्नो मदनो यदा" को जोडकर इस पद्यको भी मूल कथाका एक आत्मीय अग बना लिया गया है।[3] वह पद्य निम्न प्रकार है

"धवलान्यातपत्राणि वाजिनश्च मनोरमाः। सदा मत्ताश्च मातङ्गाः प्रसन्ने सति भूपतौ ॥ ४३ ॥"

इसी प्रकार प्रबोधचन्द्रोदयके निम्नाकित पद्यके उत्तरार्द्धको "न पतन्ति बाणवर्षा यावच्छ्रीकामभूपस्य" के रूपमें परिवर्तित करके उसे भी अपने कथागत प्रकरणमें आत्मसात् कर लिया गया है।[4] वह पद्य निम्न प्रकार है

"प्रभवति मनसि विवेको विदुषामपि शास्त्रसम्भवस्तावत्। निपतन्ति दृष्टिविशिखा यावन्नेन्दीवराक्षीणाम् ॥१।११"

इसके सिवा पचतन्त्रके निचे लिखे पद्यको आधार बनाकर एक स्वतन्त्र ही पद्यकी रचना की गयी है और उसे बडी ही निपुणताके साथ प्रकरणके प्रवाहमे बहाया है। पचतन्त्रका पद्य निम्न प्रकार है

"मृतैः संप्राप्यते स्वर्गो जीवद्भिः कीर्तिरुत्तमा। तदुभावपि शूराणां गुणावेतौ सुदुर्लभौ ॥ मि० भे० ३३३।"

और इसीके आधारपर तैयार किया गया नागदेवका पद्य निम्न प्रकार है तथा मदनपराजयकारने इसे मोहके द्वारा जिनराजके उत्तरमें कहलाया है[5]

"जितेन लभ्यते लक्ष्मीर्मृतेनापि सुराङ्गनाः। क्षणविध्वंसिनी (नः)काया (याः) का चिन्ता मरणे रणे॥"

मदनपराजयके छन्द

मदनपराजयमें निम्नलिखित छन्दोका उपयोग हुआ है: मालिनी, वसन्ततिलका, अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, आर्या, इन्द्रवज्रा, शालिनी, उपेन्द्रवज्रा, मन्दाक्रान्ता, उपजाति और स्रग्धरा। परन्तु कही-कहीपर छन्दोमे शैथिल्य आ गया है।

---

१ म० परा० १।१९। २ म० परा० २।५। ३ म० परा० २।४६। ४. म० परा० २।७९। ५ म० परा० ४।१७।

निम्नांकित छन्दोभङ्गके स्थल विचारणीय हैं

(१) नामवीरमववारयितु समर्थ (पृ० ७४ प० ५)। (२) दन्तावुभौ यस्य च रागद्वेषौ (पृ० ९९ प० ८)। (३) श्मश्रूणि मुखं कति नोल्लिखन्ति (पृ० १०१ प० ६)। (४) एव बहुभि प्रकारै (पृ० १०४ प० ११)। (५) सकलमिति च श्रुत्वा क्षिप्रमाहूय यक्षम् (पृ० ११७ प० ५)। (६) सप्रापुस्तत्र शीघ्र जिनवरयात्रामगल गायनार्थम् (पृ० १२१ प० ९)। (७) चेत्तत्कथमप्यनङ्ग (पृ० १२२ प० ८)।

साहित्यमें मदनपराजयका स्थान

मदनपराजय एक अल्पकाय रचना है, परन्तु हमारा विश्वास है कि रूपकात्मक साहित्यमें उसे एक बहुत अच्छा स्थान प्राप्त है। उसकी शैली रोचक है, आकर्षक है और निराली है तथा कथावस्तुकी धारा भी पाठककी आत्माको बराबर अपने साथ बहाये चलती है। निवृत्तिमार्गका कोई भी पथिक इस धारामें अवगाहन करके अपनेको बलवत् और अनुप्राणित कर सकता है। मदनपराजयसे सम्बन्धित सस्कृतके रूपकात्मक साहित्यके लेखाङ्कनमें नि सन्देह नागदेवकी यह अपूर्व और अमूल्य देन है।

मदनपराजयकी साहित्यिक धारा

भारतीय वाङ्मयमें जहाँ मदनके रूप और उसकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी मान्यताएँ और कल्पनाएँ उपलब्ध होती हैं, वहाँ उसके पराजयका इतिहास भी विविधमुख वैचित्र्य और महत्त्वसे भरा हुआ है। हमें सर्वप्रथम मदनपराजयकी साहित्यिक धाराका रूप 'सुत्तनिपात' के 'प्रधान सुत्त' में दिखलाई देता है। इसमें महात्मा बुद्धकी वाणी-द्वारा ही हमें मदनपराजयके एक रूपकी झाँकी मिल जाती है। महात्मा बुद्ध कहते है जब मैं निर्वाणप्राप्तिके लिए अत्यन्त उत्साहके साथ नेरजना नदीके तटपर ध्यान कर रहा था, तब पापी मार सकरुण वचन बोलता हुआ आया, "तुम कृश और दुर्बल हो गये हो। तुम्हारी मृत्यु निकट है। सहस्र भागसे तुम मर चुके। एक भागसे तुम जीवित हो। हे जीवो! जीना अच्छा है। जीकर पुण्य करोगे। ब्रह्मचर्यका पालन करते और अग्नि-हवन करते बहुत पुण्य होता है। योगचर्यासे तुम्हें क्या करना है? योग-चर्याका मार्ग कठिन है, इसका सफल होना मुश्किल है।" इन गाथाओको बोलता हुआ मार बुद्धके पास खडा हो गया।

ऐसा कहनेवाले मारसे भगवान् बोले, "अरे पापी, प्रमत्त बन्धु, यहाँ क्यो आया? मुझे तो अणुमात्र भी पुण्यसे प्रयोजन नही है। पुण्यसे जिन्हें प्रयोजन है, उन्हें तुम कह सकते हो। मुझमे श्रद्धा, तप, वीर्य, प्रज्ञा विद्यमान है, इस प्रकार मुझ प्रहितात्मको तुम जीनेकी सलाह क्यो दे रहे हो। यह वायु नदीकी धाराओको भी सुखा देती है, फिर मुझ व्रतीके रक्तको क्यो नही सुखाती है? रक्तके सूख जानेपर पित्त और कफ सूख जाता है। मासके क्षीण हो जानेपर चित्त और भी प्रसन्न हो जाता है। स्मृति, प्रज्ञा और समाधि और भी अधिक प्रतिष्ठित होती है। इस प्रकार विहार करते मेरा चित्त काममे नही लगता। सत्त्वकी इस शुद्धिको देखो।" भगवान् कहते गये, "तुम्हारी पहली सेना काम है। दूसरी सेना अरति है। भूख-प्यास तीसरी सेना है। चौथी सेना तृष्णा, पाँचवी आलस्य है। छठी भय, सातवी विचिकित्सा (सशय), आठवी म्रक्ष और घमण्ड है। हे मार! तुम्हारी यह सेना अनिष्टकारक है। लाभ, प्रशसा, सत्कार, अनुचित उपायसे प्राप्त यश, अपनी प्रशसा और परकी निन्दा, यह सब मारकी सेना कार्यकी विघातक है। अशूर मनुष्य इसको नही जीत सकता और जो जीत लेता है, उसको सुख प्राप्त होता है। यह तृण धारण करता हूँ, यहाँ जीनेको धिक्कार है। सग्राममें मेरा मर जाना अच्छा है, पराजित होकर जीना नही। कितने श्रमण ब्राह्मण इसमें फस जाते है। उन्हें दिखाई नही देता। वे उस मार्गको नही जानते, जिससे सुव्रत (ज्ञानी) पार हो जाते है। चारो ओर ध्वजा और वाहनसे युक्त मारको देख मैं युद्धके लिए आगे बढा। मुझे वह पीछे न हटाने पाये। देवता-सहित यह लोक जिस सेनाको नही हटा सकता मैं उस सेनाको प्रज्ञासे, कच्चे बरतनको पत्थर मारकर फोडनेकी तरह, हटा दूँगा। संकल्पोको वशमें कर, स्मृतिको उपस्थित रख अपने शिष्योको शिक्षा देता हुआ एक देशसे

दूसरे देशमे विचरण करता रहा।" भगवान् कहने लगे, "इस प्रकार अप्रमत्त प्रहितात्म और मेरी शिक्षाका पालन करनेवाले वे मेरे शिष्य सहज ही उस पदको प्राप्त करेंगे, जहाँ शोकसे मुक्ति हो जाती है।"

इस तरह मारने सात वर्षो तक भगवान्का पीछा किया, और अन्तमें वह कहने लगा, "इस प्रकार सात वर्ष तक भगवान्का पीछा करते रहनेपर भी मुझे उन सम्बुद्ध स्मृतिमान्में कोई छेद नही मिला। साफ पत्थरके टुकडेको चर्वीका खण्ड समझ कौआ झपटा कि कुछ स्वादवाली कोमल वस्तु मिलेगी, परन्तु कुछ स्वादकी वस्तु न पा कौआ वहाँसे उड गया।" मार कहता गया, "हे गौतम! पत्थरके पास आये कौवेकी तरह मैं निराश हो गया।" अन्तमें शोकाकुल उस मारकी काँखसे वीणा खिसक पडी। तब वह यक्ष दु खी हो वही अन्तर्धान हो गया।"

मारपराजयकी एक बहुत ही विशद धारा हमें जातकट्ठकथा (पृ० ९०–९५) की निदानकथामे दिखलाई देती है, जिसका सार यह है

मारदेवपुत्रने सोचा, "सिद्धार्थकुमार मेरे अधिकारसे बाहर निकलना चाहता है, इसे नही जाने दूँगा।" और अपनी सेनाके साथ बुद्धका पराजय करने निकल पडा। मारसेनाके बोधिमण्ड तक पहुँचते-पहुँचते देवसेनामे-से एक भी खडा न रह सका। सभी सामने आते ही भाग गये।

काल नागराज पृथ्वीमे अन्तर्धान होकर पाँच सौ योजनवाले अपने मजेरिक नामक भवनमें जा दोनो हाथोसे मुँहको ढक लेट रहा। शक्र विजयोत्तर शखको पीठपर रखकर चक्रवालके प्रधान द्वारपर जा खडा हुआ। महाब्रह्मा श्वेत छत्रको चक्रवालके शिरेपर रख (अपने-आप) ब्रह्मलोकको भाग गया। एक भी देवता न ठहर सका। महापुरुष अकेले ही बैठे रहे। मारने भी अपने अनुचरोसे कहा, "तात! शुद्धोदनपुत्र सिद्धार्थके समान दूसरा (कोई) वीर नही है। हम सामनेसे इससे युद्ध नही कर सकेंगे। इसलिए पीछेसे चलकर करें। महापुरुषने भी सब देवताओके भाग जानेके कारण तीनो दिशाओको खाली देखा। फिर उत्तर दिशाकी ओर-से मारसेनाको आगे बढते देख "यह इतने लोग मेरे अकेलेके विरुद्ध इतने प्रयत्नशील है। आज यहाँ माता, पिता, भाई या दूसरा कोई सम्बन्धी नही है। मेरी दस पारमिताएँ ही चिरकालसे परिपोषित मेरे परिजन-के समान है। इसलिए इन पारमिताओको ही ढाल बनाकर इस पारमिता शस्त्रको ही चलाकर मुझे यह सेना-समूह विध्वस करना होगा।" यह सोच दस पारमिताओका स्मरण करते हुए बैठे रहे।

तब मारदेवपुत्रने सिद्धार्थको भगानेकी इच्छासे वायु, वर्षा, पाषाण, हथियार, धधकती राख, बालू, कीचड, अन्धकारकी वर्षा की। पर वह बोधिसत्त्वको न भगा सका तो अपनी परिषद्से बोला, "भटो! क्या खडे हो, इस कुमारको पकडो, मारो, भगाओ।" और इस प्रकार परिषद्को आज्ञा देकर अपने-आप गिरिमेखल हाथीके कन्धेपर बैठ चक्रको ले, बोधिसत्त्वके पास पहुँचकर बोला, "सिद्धार्थ! इस आसनसे उठ। यह तेरे लिए नही मेरे लिए है।" महासत्त्वने उसके वचनको सुनकर कहा, "मार! तूने न दस पारमिताएँ पूरी की, न उपपारमिताएँ, न परमार्थपारमिताएँ ही। न तूने पाँच महात्याग ही किये, न ज्ञातिहित, न लोकहितके काम, न ज्ञानका आचरण। यह आसन तेरे लिए नही मेरे लिए है।"

मार अपने क्रोधके वेगको न रोक सका, और उसने महापुरुषपर चक्र चलाया। महापुरुषने दस पारमिताओका स्मरण किया, और उनके ऊपर वे आयुध फूलोका चँदवा बनकर ठहर गये। यह वही तेज-चक्र था, जिसे यदि और दिनो, मार क्रुद्ध होकर फेंकता तो एक ठोस पाषाण-स्तम्भको बाँसोके कडीरकी तरह खण्ड-खण्ड कर देता। जब वह बोधिसत्वके लिए मालाओका चँदवा बन गया, तब बाकी मारपरिषद्ने आसनसे भगानेके लिए बडी-बडी पत्थरकी शिलाएँ फेंकी। वह पत्थरकी शिलाएँ भी दस पारमिताओका स्मरण करते ही महापुरुषके पास आकर, पुष्पमालाएँ बनकर पृथ्वीपर गिर पडी।

चक्रवालके किनारेपर खडे देवतागण गरदन पसार-पसार सिर उठा-उठाकर देख रहे थे। "भो! सिद्धार्थ कुमारका सुन्दर स्वरूप नष्ट हो गया। अब वह क्या करेगा?"; पारमिताओको पूरा करनेवाले बोधिसत्त्वो-के बुद्धत्वप्राप्तिके दिन आसन प्राप्त होता है, वह मेरे लिए ही है यह कहनेवाले मारसे महापुरुषने पूछा,

"मार ! तेरे दान देनेका कौन साक्षी है ?" मारने मार-सेनाकी ओर हाथ पसारकर कहा, "यह इतने जने साक्षी है।" उस समय 'मै साक्षी हूँ' 'मै साक्षी हूँ' कहकर मार-परिषद्ने जो शब्द किया, वह पृथ्वीके फटनेके शब्दके समान था। तब मारने महापुरुषसे पूछा, "सिद्धार्थ, तूने दान दिया है, इसका कौन साक्षी है ?" महापुरुषने कहा, "तेरे दान देनेके साक्षी तो जीवित प्राणी (सचेतन) है, लेकिन इस स्थानपर मेरे दान (दिये)का कोई जीवित साक्षी नही। दूसरे जन्मोमे दिये दानकी बात रहने दे। वेस्सन्तर जन्मके समय मेरे-द्वारा सात सप्ताह तक दिये गये दानकी यह अचेतन, ठोस महापृथ्वी भी साक्षिणी है। इतना कहकर चीवरके भीतरसे दाहिने हाथको निकाल, "वेस्सन्तर जन्मके समय मेरे-द्वारा सात सप्ताह तक दिये गये दानकी तू साक्षिणी है या नही ?" कह महापृथ्वीकी ओर हाथ लटकाया। महापृथ्वीने "मैं तेरी तबकी साक्षिणी हूँ" इस प्रकार सौ वाणीसे, सहस्र वाणीसे, लाख वाणीसे मार-बलको तितर-बितर करते हुए महानाद किया। तब मारने "सिद्धार्थ ! तूने महादान दिया, उत्तम दान दिया है" कहा। वेस्सन्तरके दानपर विचार करते-करते डेढ सौ योजनके शरीरवाले गिरिमेखल हाथीने दोनो घुटने टेक दिये। मार-सेना दिशा-विदिशाओकी ओर भाग निकली। एक मार्गसे दो जनोका जाना नही हुआ। वे शिरके आभरण तथा पहने वस्त्रोको छोड, जिधर मुँह समाया, उधर ही भाग निकले।

देवगणने भागती हुई मार-सेनाको देख सोचा, "मारकी पराजय हुई, सिद्धार्थ कुमार विजयी हुए। आओ, हम चलकर विजयीकी पूजा करें।" फिर नागोने नागोको, गरुडोने गरुडोको, देवताओने देवताओको, ब्रह्माओने ब्रह्माओको (सन्देश) भेजा और हाथमें गन्धमाला ले, महापुरुषके पास बोधि-आसनके निकट पहुँचे। इस प्रकार उनके वहाँ पहुँचनेपर उस समय प्रमुदित हो सबने "यह श्रीमान् बुद्धकी जय हुई और पापी मार पराजित हुआ" कह बोधि-मण्डपमे महर्षिकी विजय उद्घोषित की।

'निदानकथा'के 'सन्तिकेनिदान'मे बुद्धकी मार-विजयसे सम्बन्धित एक और घटना पायी जाती है। यह घटना उस समयकी है जब बुद्ध मार-विजयके पश्चात् चार सप्ताह तक बोधिवृक्षके निकट ठहरे रहते हैं और पाँचवें सप्ताह बोधिवृक्षसे चल अजपाल बरगदके पास चले जाते हैं। भगवान् बुद्ध तो धर्मचिन्तन और विमुक्ति-सुखकी आनन्दानुभूतिमें तन्मय हो जाते है, परन्तु देवपुत्र मार अपनी पराजयसे एकदम निराश हो सोचता है, "मैंने इतने समय तक शास्ताका पीछा किया और इस ताकमें रहा कि अवसर मिलते ही इनपर आक्रमण करके इन्हें पराजित कर दूँ, परन्तु खेद, वह अवसर ही हाथ नही लगा। शास्तामें ऐसा कोई छिद्र ही दिखलाई नही दिया, जिससे मुझे उन्हें पराजित करनेका अवसर प्राप्त होता। और अब तो यह मेरे अधिकारसे एकदम बाहर हो गये।" इस प्रकार खिन्न होकर मार महामार्गपर बैठे-बैठे ही सोलह बातोका खयाल कर पृथ्वीपर सोलह रेखाएँ खीचता है और सोचता है कि मैंने बुद्धकी तरह किसी भी पारमिताकी पूर्ति नही की। ठीक ऐसे ही समय तृष्णा, अरति और राग नामक मारकी तीन कन्याएँ अपने पिता मारको खोजती हुई यहाँ आ पहुँचती है और पिताको विषण्णचित्त तथा जमीन कुरेदते हुए देखती हैं। मारको खिन्नहृदय देखकर वे पूछती हैं, "तात ! आप किस लिए दु:खी तथा खिन्नचित्त है ?" मार कहता है, "अम्मा ! यह महाश्रमण मेरे अधिकारसे बाहर हो गया। इतने समय तक देखते रहते भी इसके छिद्र नही देख सका। इसीसे मै दुःखी तथा खिन्नचित्त हूँ।" कन्याएँ कहने लगती है, "यदि ऐसा है तो सोच मत करो। हम इसे अपने वशमें करके ले आयेंगी।" मार कहता है, "अम्मा ! इसे कोई वशमे नही कर सकता। यह पुरुष अचल श्रद्धामे प्रतिष्ठित है।" मार-कन्याएँ कहती है, "तात ! हम स्त्रियाँ है। हम उसे भी राग आदिके पाशमे बाँधकर ले आयेंगी। आप चिन्ता न करें।" मार-कन्याएँ अपने पितासे इतना कहती हैं और बुद्धके पास पहुँचकर उनसे कहती है, "श्रमण ! हमें अपने चरणोकी सेवा करने दो।"

भगवान् बुद्ध इन मार-कन्याओके कथनको मनमें तनिक भी स्थान नही देते है और वे उपाधिक्षीण निर्वाणमे ही निरत बने रहते है। तदनन्तर बुद्ध इन कन्याओको उपदेश देते है

"जिसके जयको पराजयमे नही बदला जा सकता, जिसके जीते राग, द्वेष, मोह फिर नही लौट सकते उस बे-निशान (अपद—स्थानरहित) अनन्तदर्शी बुद्धको किस रास्ते पा सकोगे ? जाल रचनेवाली जिसकी

विषयरूपी तृष्णा कही भी ले जाने लायक नही रह गयी। उस अपद, अनन्तदर्शी बुद्धको किस रास्तेसे पा सकेंगे[1] ?"

धर्मोपदेश सुनते ही मार-कन्याएँ कहती है, "पिताने सत्य ही कहा था। अर्हत् सुगतको रागके बन्धनमे लाना आसान नही।" और निराश हो अपने पिताके पास चली जाती है।[2]

अश्वघोषविरचित 'बुद्धचरित'की मारविजय भी जातककथा की मारविजयसे मिलती-जुलती है। इसमे वह अपने विभ्रम, हर्ष, दर्प पुत्रोको और अरति, प्रीति, तृष्णा-कन्याओको लेकर भगवान् बुद्धको विचलित करनेकी चेष्टा करता है, परन्तु उसे सफलता नही मिलती। तदनन्तर वह भूतगणोसे बुद्धको त्रस्त, तर्जित और ताडित करना चाहता है। भूतगण भी अपनी-अपनी भयकर लीलाएँ दिखलाते है, परन्तु वे भी बुद्धको अपने लक्ष्यसे स्खलित नही कर पाते। मार बहुत ही शोकाकुल होता है। अन्तमे आकाश-वाणी होती है

"मार! तुम व्यर्थ प्रयास क्यो करते हो? अपनी हिंसक प्रकृति छोड़ दो और शान्त हो जाओ। जिस प्रकार वायु सुमेरु पर्वतको कम्पित नही कर सकती उसी प्रकार तुम भी बुद्धको तनिक भी चलित नही कर सकते। भले ही आग अपनी उष्णता छोड दे, पानी द्रवता छोड दे, पृथ्वी अपनी स्थिरता छोड दे फिर भी अनेक कल्पोमें पुण्योपार्जन करनेवाले बुद्ध अपने व्यवसायसे विरत नही हो सकते। जिस प्रकार अन्धकारको दूर किये बिना सूर्योदय नही हो सकता, उसी प्रकार बुद्ध-जैसे सकल्प, पराक्रम, तेज और भूत-दयाको परास्त किये बिना तुम बुद्ध-जैसे विजयी नही हो सकते। काठको रगड़नेवाला जैसे आग प्राप्त कर लेता है ओर जमीन खोदनेवाला पानी प्राप्त कर लेता है। उसी प्रकार बन्धन-मुक्तके लिए भी कुछ असाध्य नही है। वह भी सब कुछ प्राप्त कर लेता है। इसलिए मार! जिस महान् वैद्यके अन्तस्में ससारके रागादिक रोगोसे दुःखी प्राणियोके प्रति सहज ही करुणाका भाव भरा हुआ है। उस महान् वैद्यकी सत्प्रवृत्तिमें विघ्न डालनेका तुम्हे कोई अधिकार नही है। यह तो इन रोगियोको ज्ञानकी एक अमूल्य और अचूक औषधि देना चाहते है। जो बुद्ध नानाप्रकारके खोटे मार्गोपर जानेवाली जनताको सन्मार्गपर ले जानेके लिए यत्नशील है उन हितोपदेशीको तुम्हे कदापि क्षुब्ध नही करना चाहिए। ससारमें आज सतोगुणियोके नाश हो जानेसे महान् अन्धकार फैला हुआ है और इसमे भगवान् बुद्ध ही अपने ज्ञानदीपकको प्रज्वलित किये हुए है। इसलिए हे आर्य! अन्धेरेमे जलते हुए दीपकको बुझा देना कभी भी ठीक नही है। समस्त प्राणी ससार-सागरके महान् प्रवाहमे उन्मज्जन-निमज्जन कर रहे है। इन्हें किनारे लगानेवाला कोई भी नही है। भगवान् बुद्धने आज अपने मनको इस ओर प्रवृत्त किया है तो तुम्हे इनके सम्बन्धमे पापकी आशका न करनी चाहिए। हे मार! यह तो मोहपाशोसे जकडी हुई जनता-को उन्मुक्त करना चाहते है, इसलिए इनके सम्बन्धमे तुम्हारा हिंसा-भाव कदापि समुचित नही है।"

यह सुनते ही मार खिन्न और हतोत्साह होकर भाग गया और मारकी सेना भी आश्रयहीन होकर तितर-बितर हो गयी। मार-विजयके अनन्तर आकाश प्रसन्न हो गया, सुगन्धित पानी बरसा और पुष्पोकी भी वर्षा हुई।[3]

बौद्ध और जैन-साहित्यमे जहाँ मारकी पराजय या मदनकी पराजयसे सम्बन्धित घटनाएँ उपलब्ध होती है, वहाँ तदितर साहित्यमे मदनदाह या कामदाहको सूचित करनेवाली घटनाएँ ही प्राय. दृष्टिगोचर होती है। पहले साहित्यमें ऐसी एक भी घटनाका उल्लेख नही मिलता है, जिसमे मुमुक्षुओ-द्वारा मदन या मारका सहार किया गया हो, परन्तु दूसरे साहित्यमे इसका भस्मावशेष रूप ही देखनेको मिलता है। हाँ, रतिके करुण विलाप और उसकी प्रार्थनापर कामके पुनरुज्जीवित होनेकी और अमूर्त्ताकारमें बने रहनेकी घटनाएँ भी पायी जाती है।

---

१ धम्मपद, बुद्धवग्ग १४, २ जातकट्ठकथा, पृ० ९९।

३ बुद्धचरित XIII Edited by E. H. Gohnston D. Litt.

मदनदाहका उल्लेख कविकुल-गुरु कालिदासके कुमारसम्भव[1] मे देखनेको मिलता है। महादेवजी अपनी समाधिमें निमग्न है और मदन उनकी समाधि भग करनेके लिए अपने वाणो-द्वारा उनपर आक्रमण करता है। वे समाधिसे चलित हो जाते है और इसके साथ ही अपनी समाधि भगके कारणको खोज निकालना चाहते है। उन्हें उनकी समाधिसे विचलित करनेवाला कामदेव दिखलाई देता है और वे उसपर एकदम क्रुद्ध हो जाते है। महादेवके तृतीय नेत्रसे आग निकलती है और वह कामको भस्मसात् कर देती है।

शिवपुराणमे भी मदनदाहसे सम्वन्ध रखनेवाली ऐसी ही घटना आयी है। कामके वाणोसे आहत होकर महादेवजीका चित्त पार्वतीके ऊपर चलित हो जाता है और वह अपनी तपस्यासे डिग जाते है। वह सोचते है, "इस प्रकारके उत्तम तपको करनेपर भी इसमें विघ्न क्यो आये? किस कुकर्मीने मेरे चित्तमें विकार उत्पन्न कर दिया? वडे खेदकी वात है कि आज मेरा मन पर-स्त्रीके ऊपर अनुरक्त हो गया। यह कितनी धर्म-विरुद्ध वात है और श्रुतिकी सीमाका यह कितना अकल्पित उल्लघन है?"[2]

यह सोचते ही वह रोपमे आ जाते है। उनके ललाटके मध्यवर्ती तीसरे नेत्रसे आग निकलती है और काम जल जाता है।

मदनपराजयसे सम्वन्ध रखनेवाली जैन-साहित्यिक धारा भी वडी ही आकर्पक और सुन्दर है। इतना ही नही, जैन साहित्यकारोने इस घटनाको इतना अधिक महत्त्व दिया कि उससे सम्वन्धित स्वतन्त्र आख्यान और रूपक ग्रन्थोकी सृष्टि तक कर डाली। वात भी ऐसी ही है। जैन धर्ममे एक मुमुक्षका मुक्तिलाभ तवतक सम्भव नही, जवतक वह मदनके ऊपर विजय प्राप्त न कर ले। ऐसी स्थितिमें जैन साहित्यकारोने यदि इस घटनाको इतना अधिक महत्त्व दिया और उसके आधारपर विभिन्न भाषाओमे स्वतन्त्र ग्रन्थोको लिपिवद्ध किया तो इसमे आश्चर्यकी कोई वात नही है।

मदनपराजयसे सम्वन्वित जैन साहित्यिक धारामे ही जयशेखरसूरिकी 'प्रवोधचिन्तामणि' एक उल्लेखनीय रचना है। परन्तु यह ध्यान देनेकी वात है कि इस रचनामे मदनपराजयके स्थानपर, मोहपराजयको महत्त्व दिया गया है और यह मोहपराजय भी विवेकराजके द्वारा सम्पादित कराया गया है।

'मयणजुज्झ' की मदनपराजयकी धारा भी प्रवोधचिन्तामणिकी मदनपराजयसे मिलती-जुलती है। भगवान् ऋपभदेवने विवेकके साहाय्यसे किस प्रकार काम और मोहको पराजित किया, इस वातका चित्रण कलाकारने अपभ्रशकी कोमल कान्त पदावलीमें वडी ही निपुणताके साथ चित्रित किया है। इसका प्रारम्भिक अंश निम्न प्रकार है

"श्री आदिजिण प्रणम्य ॥
जो सव्वट्ठ विमाणहुति चवीयो तिण्णाण वित्ततरे,
उववन्नो मरुदेविकूखरयणो इक्खागकुलमंडणो।
भुत्त भोगसरज्ज (?) देसविमले पाली पवज्जा पुणो,
सपत्तो णिरवाण देव रिसहो काऊण सो मगल ॥
जिणवरह वाकवाणी प्रणमउ सुहमत्त देहजइजणणी।
वन्नउ सुमयण जुज्झ किम जित्तउ रिसह जिणनाह ॥ २ ॥
रिसह जिणावर पढम तित्थर, जिणधम्म उधरण,
जुगलधम्म सव्वह निवारण, नाभिराय कुलिकमल सव्वाणि ससारतारण।
जो सुर इदह वदियउ सदा चलण सिर धारि।
कहि किउ रतिपति जित्तियउ ते गुण कहउ विचारि ॥ ३ ॥"

---

१ कुमारसम्भव स० ४।

२ किमु विघ्नाः समुत्पन्ना कुर्वतस्तप उत्तमम्। केन मे विकृतं चित्त कृतमत्र कुकर्मिणा ॥४॥
कुवर्णन मया प्रीत्या परस्त्र्युपरि वै कृतम्। जातो धर्मविरोधोऽत्र श्रुतिसीमा विलघिता ॥५॥
शिवपुराण, रु० स० द्वि० पा० ख० ३, अध्याय १९।

और अन्तिम अश निम्न प्रकार है

"रायविक्कमतणउ सवतु नवासी पनरसइ सरदरितु आसू वखाणई,
तिथि पडवा सुकिलपखु सनिसवारु करुनखतु जाणउ।
तिनु दिन बल्वपि सठियपु, मयणजुज्झ सुविसेसु।
कहत पढ़ति सुणत नरहु जपहु सामि रिस हेसु॥"

मदनपराजयकी एक अन्य धाराके दर्शन हमे सहसमल्ल विरचित एक अन्य 'मयणजुज्झ' मे दिखलाई देते हैं। इस रचनामे धर्मदास मुनिवरने जिस प्रकार मदनके मदको निर्मूल किया, उस घटनाका ही अति सक्षिप्त किन्तु सारवत् चित्रण है। इस बातको रचनाकारने स्वय ही अपने शब्दोमे इस प्रकार दिखलाया है

"धरमदास धर धीर कु, जिन मल्यो मदन मइमंत।
सहसमल्ल जिन उच्चरइ, सत सुणो दे चित्त॥
मुनिवर मकरध्वजदह कू नमामि रा रि॥"

इस रचनाकी कथावस्तुका प्रारम्भ नागदेवके मदनपराजय-जैसा ही है और मंदनको पराजित करनेका चित्रण भी मदनपराजयके चित्रणसे मिलता-जुलता है। मदनपराजयकी मयणजुज्झकी प्रस्तावना भी निम्न-प्रकार बाँधी गयी है :

"एक समय मनच्छराय सिंहासन बैठइ,
छत्र चवर फहरहइ ध्वजा ठाड़ी विराजइ।
राणी रति बावगि करण पचू सुख सगा,
करत केलि स्त्री सहित मानमद बढ्यो अनगा॥
मन्त्रिय परिजन बोलि कइ, पूछइ सब विवहार।
को अजीत त्रियलोकमइ संबोधहु मय डार॥
मुनिवर मकरध्वज दह कु नमामि रा रि॥"

अन्तमे भी जब मदन रणस्थलमे युद्ध करता हुआ हार जाता है और बन्धनमे बाँध लिया जाता है तो मदनपराजयकी तरह यहाँ भी रतिने ही उसके बन्धन-मुक्त होनेका मार्ग निकाला है। परन्तु 'मदनपराजय'-की अपेक्षा प्रस्तुत 'मयणजुज्झ' मे यह विशेषता है कि जहाँ 'मदनपराजय' में रतिके प्रयत्न करनेपर मदन जीवन-लाभ प्राप्त करके भी अन्तमे अपने-आप अपनी जीवन-लीला समाप्त कर डालता है — अनगाकारमे परिणत हो जाता है, वहाँ 'मयणजुज्झ'मे प्राण-लाभ करके वह मुनिराजके सामने बडे ही विनम्र भावसे अपने पापोका प्रायश्चित्त करता है और उनकी स्तुति करता है। देखिए, रचनाकारने इस घटनाको कितने सजीव रूपमे उपस्थित किया है

"तब छांड्यो रन मैन दत तिन ले सिर नायो,
तुम्हहि विरुद्धे देव! तात, तइसो फल पायो।
तुम सरि दीठइ कवन आदि कलि कालिज गणधर,
जप तप संजम-अति बलिट्ठ जिन धर्म धुरधर ?
धनि जननी गुरु तत्त्वमय जिण जण्यो विकार-सपन्न।
कर जोरै इक पद खडो प्रणपति करई महन्न॥
मुनिवर मकरध्वजदह कूं नमामि रा रि॥
धनि असुमदल-दलन! चित्त प्रभु राखिहइ चरणे।
अलप बुद्धि जन सहसमल्ल सो कइसै करि वरणई ?

'प्रबोधचिन्तामणि ढाल भाषा बन्ध' और 'ज्ञानशृंगार चौपई'मे भी मदनपराजयकी मनोरम धाराएँ प्रवाहित दिखलाई देती है। इनकी पाण्डुलिपियाँ मुझे श्री अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेरके सौजन्यसे उन्हीके निजी भण्डारसे प्राप्त हुई।

'प्रवोधचिन्तामणि ढाल भाषा वन्ध' राजशेखरसूरिकी संस्कृत 'प्रवोधचिन्तामणि'का ढालवद्ध भाषानुवाद है। इसके कर्ता खरतरगच्छके दयालुपालके शिष्य धर्ममन्दिर गणि हैं। इसकी रचना सुलतानमें मगसिर शुक्ला दशमी वि० स० १७४१ में हुई। सम्पूर्ण रचना ६ खण्ड और ७६ ढालोमें समाप्त हुई है। प्रस्तुत प्रति चैत्र शुक्ला अष्टमी वि० स० १८५१ की लिखी हुई है। इसका लेखन मौजागढमे हुआ है और लेखक श्री १०८ भुवनविशालजीके प्रशिष्य तथा पण्डितप्रवर श्री कनकसेनजीके शिष्य प० चैनरूप हैं।

"सं० १८५१ वर्षे, चैत्रमासे शुक्लपक्षे अष्टमीतिथौ सोमवासरे लिखिता प्रतिरियम् ॥ श्रीमौजगढमध्ये ॥वा०॥ श्री १०८ श्री भुवनविशाल जी तत्शिष्य श्री कनकसेन जी ॥ तत्शिष्य पं० चैनरूप लिखित ॥श्रीरस्तु॥ कल्याणमस्तु ॥"

'ज्ञानभृगार चौपई' भी 'प्रवोधचिन्तामणि'का भाषानुवाद है। इसके कर्ता खरतरगच्छकी कीर्तिरत्नसूरि शाखाके चन्द्रकीर्तिके शिष्य सुमितरग है। इसका प्रणयन मुलताननिवासी श्रावक श्री चाहडमल्ल, नवलखा वर्द्धमान आदिके आग्रहसे आश्विन शुक्ला दशमी (विजयादशमी) वि० स० १७२२ मे हुआ। यह रचना भी ढालवद्ध है और ४७ ढालोमे इसकी समाप्ति हुई है। प्रस्तुत प्रति बहुत ही जीर्ण-शीर्ण स्थितिमे है और इसमें इसके लेखन-कालका कोई निर्देश नही है। हाँ, रचनाकार, उनकी गुरु-परम्परा तथा रचना लिखनेमें प्रेरक महानुभावोका ग्रन्थकारने स्वय ही ग्रन्थकी अन्तिम ढालमे निम्नप्रकार परिचय दिया है

सयवाल कुल सेहरो ए, आचारिज पद धार। की कीरतिरतन सूरीस ए, जिनशासन जयकार ॥
लावण्यशील पाठक तणौं ए, वापुण्य धीर सुसीस। ज्ञान कीरति वणारसी ए, गुणप्रमोद सु जगीस ॥
समयकीरति वाचक सदा ए, हरस कल्लोल पद धार। चन्द्रकीर्ति गुरु सांनिधि ए, शास्त्र भाष्यौ श्रीकार॥
सुमतिनाथ सुपसाउलैं ए, श्री मुलताण मझार। खरतरगछनायक खरौ ए, जिनचद सूरि सुखकार ॥
तासराज मेंमैं ए कीयौ ए, सरस सबध शिवदाय। नयण नयण द्वीप शशि सही ए, अश्विन मास मनभाय ॥
विजय विजय दशमी दिने ए, आदितवार उदार। सुमतिरंग सदा लहै ए, सुरग लाभ श्रीकार॥
सघ सकल मुलतान णो ए, समझदार सिरदार। पारसनाथ प्रमादथी ए, दिन दिन जय जयकार ॥
चाहडमल मल चाहसू ए, राखेवा धर्म रीति। चाहक ग्राहक तव लखौ, वर्धमान बड चीत ॥

प्रस्तुत मदनपराजयकी मदनपराजय धारा भी वडी ही मनोरजक है। परन्तु यह विशेष है कि इसकी मदनपराजय धारा 'प्रवोधचिन्तामणि' की मदनपराजय धारासे एकदम स्वतन्त्र है। 'प्रवोधचिन्तामणि' और इसके परवर्ती प्रस्तुत रूपकात्मक साहित्यमें जहाँ विवेक-द्वारा मोहको पराजित करके मदनपराजयकी धारा प्रवाहित की गयी है, वहाँ इसमें साक्षात् जिनराज-द्वारा ही मदनका पराजय दिखलाया गया है। इसके सिवाय प्रस्तुत 'मदनपराजय'में मोहको 'प्रवोधचिन्तामणि' की तरह कामपुत्रके रूपमे नही रूपित किया गया है, वरन् उसे कामका प्रधानामात्य वतलाया गया है। परीषह विद्या, दिग्वाशिनी विद्या, कामके पराजित और बन्धनबद्ध होनेपर रति और प्रीति-द्वारा उसे बन्धनमुक्त करनेके लिए किये गये प्रयत्न, कामका अन्तमें अनगाकारमे परिणत हो जाना और मुक्ति-कन्याके स्वयवरके समय जिनराज-द्वारा कर्मधनुषका भग किया जाना आदि कल्पनाएँ नागदेवकी एकदम मौलिक हैं। मोह तथा केवलज्ञानवीरके युद्धकालमें मोह-द्वारा अन्धकार स्तम्भका गाढा जाना और कर्मप्रकृतिसमूहका केवलज्ञानवीरके ऊपर छोडा जाना-जैसे रूपक अवश्य जातकट्ठकथाकी 'निदानकथा' में वर्णित बुद्धकी मारविजयकी स्मृतिको सजीव कर देते है।

मदनपराजयमें उपयोग किये गये ग्रन्थ

मदनपराजयमें जिन महत्त्वपूर्ण कृतियोका यथेच्छ उपयोग किया गया है उनका निर्देश करना अत्यावश्यक है :

अजैन : १. मृच्छकटिक २ पचतन्त्र ३ सुभाषितत्रिशती ४. प्रबोधचन्द्रोदय ५. हितोपदेश।

जैन १ यशस्तिलकचम्पू २ वाग्भट्टालकार ३ ज्ञानार्णव ४ योगशास्त्र ५. सागारधर्मामृत ६ सूक्तिमुक्तावली।

ग्रन्थकार

मदनपराजयके कर्ता

प्रो० एच० डी० वेलणकरके 'जिनरत्नकोष'[1] में 'मदनपराजय' के विभिन्न नामधारी तीन कर्ताओका उल्लेख पाया जाता है और एक 'मदनपराजय' का अज्ञात कर्ताके नामसे भी निर्देश हुआ है। तीनो कर्ताओमें जिनदेव, नागदेव और ठक्कुर माइन्ददेव बतलाये गये हैं। श्री जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी सस्था, कलकत्तासे प्रकाशित और श्री प० गजाधरलालजी न्यायतीर्थ-द्वारा अनूदित 'मकरध्वजपराजय'के परिच्छेदके अन्तमें भी 'मदनपराजय' के कर्ताको ठक्कुर माइन्ददेवसुत जिनदेव सूचित किया गया है। यद्यपि उपर्युक्त उल्लेखोके प्रकाशमें 'मदनपराजय' के कर्ताका यथार्थ निश्चय होना दुष्कर है, तथापि हमे इसके अभ्रान्त निर्णयके लिए बहुत भारी श्रम और प्रमाणोकी आवश्यकता नही, क्योकि 'मदनपराजय'के कर्ताने अपने ग्रन्थके आरम्भमें ही अपना और अपनी वशपरम्पराका सक्षिप्त परिचय दे दिया है।

इस प्रस्तावनामे स्पष्ट लिखा है कि श्री मल्लुगित्के पुत्र नागदेवने ही प्रस्तुत 'मदनपराजय'को सस्कृत भाषामें निबद्ध किया है और यह वही कथा है जिसे नागदेवसे पूर्व छठी पीढीके हरिदेवने प्राकृतमें लिखा था।

इस प्रकार जब नागदेव ही प्रस्तुत 'मदनपराजय'के कर्ता स्थिर होते है तो ठक्कुर माइन्ददेव और जिनदेवको किस प्रकार इस ग्रन्थका कर्ता बतलाया गया, यह बात अवश्य विचारणीय रह जाती है। इस सम्बन्धमें डॉक्टर हीरालाल जैनने अपने 'अपभ्रश भाषा और साहित्य' शीर्षक[2] निबन्धमे लिखा है कि "इस काव्यका ठक्कुर माइन्ददेवके पुत्र जिनदेवने अपने 'स्मरपराजय' में परिवर्धन किया, ऐसा प्रतीत होता है।" परन्तु जबतक 'मदनपराजय' और 'स्मरपराजय' नामक दो स्वतन्त्र रचनाएँ उपलब्ध नही होती तबतक यह केवल अनुमान मात्र है। नागदेवने 'मदनपराजय'को ही 'स्मरपराजयस्तोत्र' 'मारपराजय' और 'जिनस्तोत्र'के रूपमे विभिन्न नामोसे अभिहित किया है।[3] अत 'मदनपराजय'का 'स्मरपराजय'मे परिवर्तित अनुमानित करना ठीक प्रतीत नही होता।

जहाँतक माइन्ददेव ठक्कुरको 'मदनपराजय'के कर्ता बतलानेकी बात है, वह तो एकदम अप्रामाणिक है, परन्तु जिनदेवको फिर भी उसके कर्तृत्वसे पृथक् नही किया जा सकता। क्योकि मदनपराजयकी प्राय. समस्त उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियोकी पुष्पिकाओमे "जिनदेवविरचिते मदनपराजये" का उल्लेख हुआ मिलता है। इस सम्बन्धमे मेरा अनुमान है कि 'मदनपराजय'के अपरनामवाले 'जिनस्तोत्र' के कर्ता नागदेव ही 'जिनस्तोत्र' बनानेके कारण 'जिनदेव' रूपसे नामान्तरित किये गये है। वि० स० १५७३ में लिखी हुई मदनपराजयकी सर्वाधिक प्राचीन प्रतिमे "ठक्कुरमाइन्ददेवस्तुतजिनदेवविरचिते मदनपराजये" ऐसा पाठ आया है। इससे प्रतीत होता है कि ठक्कुर माइन्ददेव जिनदेवके कार्यका मूल्याकन करते थे और वह उनके बडे ही प्रशसक थे। 'स्तुत'की जगह 'सुत' पाठान्तरके प्रचार हो जानेसे ही जिनदेवको माइन्ददेवका सुत बतला

---

१. जिनरत्नकोष (भा० ओ० रि० इ० पूना), पृ० ३०० ।

२ 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५०, अक ३, ४, पृ० सं० १२१ ।

३ (क) साद्यन्त यः शृणोतीद स्तोत्र स्मरपराजयम्

(ख) तावद्दुःसहघोरमोहतमसाच्छन्न मन प्राणिना
यावन्मारपराजयोद्भवकथामेता च शृण्वन्ति न ॥ २ ॥

(ग) शृणोति वा वक्ष्यति वा पठेत्तु यः कथामिमा मारपराजयोद्भवाम् ॥ ३ ॥

(घ) अज्ञानेन धिया विना किल जिनस्तोत्रं मया यत् कृतम् ।
मदनपराजयकी अन्तिम प्रशस्ति ।

दिया गया है। अतः यह कल्पना भी निर्मूल हो जाती है कि यदि नागदेव ही जिनदेवके रूपमे नामान्तरित किये गये है तो उन्हे ठक्कुर माइन्ददेवका पुत्र किम प्रकार कहा गया जब कि 'मदनपराजय'की प्रस्तावनामे उन्हे स्पष्ट रूपसे श्री मल्लुगित्का पुत्र वतलाया गया है ?

नागदेवका पाण्डित्य

यद्यपि नागदेवने हरिदेवके प्राकृत 'मयणपराजयचरिउ'के आधारपर ही सस्कृत 'मदनपराजय'को पल्लवित किया है, परन्तु इस सम्वन्धमे दो मत नही हो सकते कि इसे पल्लवित करनेमे नागदेवने अपने प्रखर पाण्डित्य और प्रसन्न प्रतिभाका पूरा-पूरा उपयोग किया है। सम्पूर्ण मदनपराजयके गम्भीर अध्ययनसे स्पष्ट हो जाता है कि नागदेव न केवल जैन सिद्धान्त, दर्शन और काव्य-साहित्यके वेत्ता थे, किन्तु उन्होने जैनेतर पुराण, ज्योतिष, नाटक, काव्य, सामुद्रिक और शकुन-शास्त्रका भी अध्ययन किया था। यही कारण है जो उन्होने अपनी रचनामें आये हुए पात्रोकी उक्तियोको प्रमाणित और समर्थित करनेके लिए जगह-जगह इस साहित्यका यथेष्ट उपयोग किया है। प्राकृत और सस्कृत 'मदनपराजय'के तुलनात्मक अध्ययन करनेमे स्पष्ट हो जाता है कि मदनपराजयकी कथाकी जितनी सार-सम्हार सस्कृत 'मदनपराजय' मे की गयी है, प्राकृत मदनपराजयमे उसका दशमाश भी दिखलाई नही देता। मूलकथामे नागदेव-द्वारा की गयी अनेक सामयिक अन्तर्कथाओकी योजना भी एकदम नवीन है। जहाँतक हमारा अध्ययन है, उसके आधारपर यह निःसकोच कहा जा सकता है कि उपलब्ध मदनपराजय सम्बन्धित रूपकात्मक साहित्यमे नागदेवका 'मदनपराजय' एक सर्वोत्तम रोचक रचना है। वह रचना है, जिसमें मूलकथाकी रसवत् धारा है। सुन्दर और अद्भुत रूपक है एव सुचिन्तित तथा मधुर सूक्तियोकी राशि है।

नागदेवकी अन्य रचनाएँ

जहाँतक नागदेवकी कलमका सम्बन्ध है, उन्होने अपनी कलमसे कही भी इस वातका उल्लेख नही किया है कि उन्होने अपनी कुशल लेखनीसे किसी अन्य साहित्यिक रचनाको प्रसूत किया है और न साहित्यिक इतिहासविदोकी किसी उपलब्ध रचनामे ही पता चलता है कि नागदेवने किन-किन ग्रन्थरत्नोका सृजन किया है। जहाँतक हमारी जानकारी है, मदनपराजय (सस्कृत) ही नागदेवकी एकमात्र रचना है। जिसमे नागदेवके कर्तृत्वका उल्लेख पाया जाता है, परन्तु इसके पूर्व मदनपराजयके हिन्दी-अनुवाद जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी सस्था, कलकत्तावाला सस्करणके प्रकाशित होनेपर भी नागदेव 'मदनपराजय'के कर्ताके रूपमे प्रकाशमे नही आ सके थे। किन्तु तुलनात्मक अध्ययनसे प्रतीत होता है कि नागदेवने मदनपराजयके अतिरिक्त कमसे कम एक रचना और लिखी होगी और वह है 'सम्यक्त्वकौमुदी'। 'सम्यक्त्वकौमुदी'को प्रकाशित हुए एक लम्बा अरसा हो गया परन्तु न तो सम्यक्त्वकौमुदीकारने स्वय ही अपनी रचनामें अपना कुछ परिचय दिया और न इतिहास-शोधकोका ध्यान ही इस ओर आकर्षित हुआ। ऐसी स्थितिमें 'सम्यक्त्वकौमुदी' के कर्त्ताका ठीक-ठीक पता लगाना एकदम कठिन है, फिर भी 'सम्यक्त्वकौमुदी' और 'मदनपराजय'को आमने-सामने रखकर शैली-साम्य, भाषा-साम्य, ग्रन्थोद्धृत पद्य-साम्य, अन्तर्कथा-साम्य और प्रकरण-साम्य आदि आधारोमे तुलनात्मक अध्ययन करनेपर हम इसी परिणामपर पहुँचे है कि 'सम्यक्त्वकौमुदी' के कर्ता नागदेव ही होने चाहिए।

नागदेवका समय और स्थान

नागदेवने मदनपराजयकी प्रस्तावनामे जो अपनी वश-परम्पराका परिचय दिया है। उसके सिवाय वे कव और कहाँ हुए, इस वातका कोई स्पष्ट प्रमाण अवतक सामने नही आ सका है। फिर भी अन्य स्रोतोमे नागदेवके समय तक पहुँचनेका हमने एक प्रयत्न किया है। वे स्रोत निम्न प्रकार है

(१) नागदेवने 'मदनपराजय' और 'सम्यक्त्वकौमुदी'मे जिन ग्रन्थकारोकी रचनाओका उपयोग किया है, उनमे सर्वाधिक परवर्ती पण्डितप्रवर आशाधर है। पण्डित आशाधरने अपनी अन्तिम रचना अनगार-

धर्मामृत-टीका वि० स० १३००में समाप्त की है। अत यदि उनका अन्तिम काल इसी अवधिको मान लिया जाये तो नागदेव वि० स० १३००के पूर्वके नही ठहर सकते।

(२) श्री ए० वेबरको १४३३ A D की लिखी हुई 'सम्यक्त्वकौमुदी' की एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई थी।[1] यदि इस प्रतिको नागदेवके २७ वें वर्पमे भी लिखित मान लिया जाये तो भी उनका आविर्भाव काल वि० स० की चौदहवी शताब्दीके पूर्वार्द्धसे आगेका नही वैठता।

आशा है, भविष्यमे नागदेवके स्थान और समयको सुनिश्चित रीतिसे प्रकाशित करनेवाली कोई साधन-सामग्री प्राप्त होगी और इतिहास प्रेमी विद्वज्जन इस सम्बन्धमे विशेष प्रकाश डालेगे।

श्रावणी पूर्णिमा, २००४
दि० जैन कॉलेज, बड़ौत (मेरठ)

—*राजकुमार जैन*

---

१ 'ए हिस्ट्री ऑव् इण्डियन कल्चर' (द्वितीय भाग) ,पृ० स० ५४ की पादटिप्पणी।

नागदेवविरचितो

मदनपराजयः

प्रथम परिच्छेद

१. यदमलपदपद्मं श्रीजिनेशस्य नित्यं
[1]शतमखशतसेव्यं पद्म[2]गर्भादिवन्द्यम् ।
दुरितवनकुठारं ध्वस्तमोहान्धकारं
सदखिलसुखहेतुं त्रिप्रकारै[3]र्नमामि ॥ १ ॥
यः शुद्ध[4]रामकुलपद्मवि[5]कासना[6]र्को 5
जातोऽर्थिनां सुरतरुर्भुवि चङ्ग[7]देवः ।
तन्नन्दनो [8]हरिरसत्कविनागसिंहः
तस्माद्भिष[9]ग्जनपतिर्भुवि नागदेवः ॥ २ ॥
[11]तज्जावुभौ सुभिषजाविह [12]हेमरामौ
रामात्प्रियंकर इति प्रियदोऽर्थिनां[13] यः । 10
तज्जश्चि[14]कित्सितमहाम्बुधिपारमाप्तः
[15]श्रीमल्लुगिज्जिनपदाम्बुजमत्तभृङ्गः ॥ ३ ॥

---

१. मै, मन, वचन और कायसे श्री जिनेन्द्र भगवान्के उन निर्मल चरण-कमलको नमस्कार करता हूँ, जिनकी इन्द्र उपासना करते है और ब्रह्मा आदिक वन्दना करते है। जो पापरूपी वनके लिए कुठारके समान है, मोह-अन्धकारके नाशक है और वास्तविक 15 सम्पूर्ण सुखको देनेवाले है।

पृथिवीपर पवित्र रघु-कुलरूपी कमलको विकसित करनेके लिए सूर्यके समान चंगदेव हुए। चंगदेव कल्पवृक्षके समान याचकोंके मनोरथ पूर्ण करते थे। इनका पुत्र हरिदेव हुआ। हरिदेव दुर्जन कवि-हाथियोंके लिए सिंहके समान था। इनका पुत्र नागदेव हुआ, जिसकी भूलोकमें महान् वैद्यराजके रूपमें प्रसिद्धि हुई। 20

नागदेवके हेम और राम नामके दो पुत्र हुए। यह दोनों भाई भी अच्छे वैद्य थे। रामके प्रियंकर नामका एक पुत्र हुआ, जो अर्थियोंके लिए बड़ा ही प्रिय था। प्रियंकरके भी श्रीमल्लुगित्

---

१ शत मखा यागा येषा ते तथोक्ता इन्द्रास्तेषा शत तेन सेव्यं वन्दनीयम्। २ पद्मगर्भो विष्णुः। ३ त्रिःप्रकारैः– क०, ग०, च०। मनसा वाचा कर्मणेत्यर्थ.। ४. –सोम– ङ०। एतेन चङ्गदेवस्य तत्सन्तति-परम्परानुवर्तिनो ग्रन्थकर्त्तुर्नागदेवस्य च सूर्यान्वयप्रभवत्व प्रतिपादितम्। ५. विकाशना– क०, ग०, घ०, ङ०, च०। ६. –नार्कं च०। ७. एतन्नामा। ८ चङ्गदेवसुतो हरिदेव। येन सर्वप्रथमं प्राकृतभाषाया मदनपराजयो ग्रथित। अयमेव प्रस्तुतप्रस्तावनाया पञ्चमपद्यपरिगणितो हरिदेवः। ९. एतेन हरिदेवस्य सर्वातिशायि महाकवित्व प्रतीयते। १०. वैद्यशिरोमणि। ११. नागदेवप्रसूतौ। १२. हेमरामदेवनामानौ। १३. –दोऽर्थिना च०। –दोऽर्थनीय ख०। १४. चिकित्सासागरपारगत। चिकित्साक्रियाकुशलश्चिकित्सक इत्यर्थ.। १५ 'श्रीमल्लुगित्' इत्यभिधेय।

तज्ज्ञोऽहं[1] नागदेवाख्यः स्तोकज्ञानेन संयुतः।
छन्दोऽलंकारकाव्यानि नाभिधानानि वेद्म्यहम्[3] ॥ ४ ॥

कथा प्राकृतबन्धेन हरिदेवेन या कृता।
वक्ष्ये संस्कृतब[4]न्धेन भव्यानां धर्मवृद्धये ॥ ५ ॥

५ [5]यस्मिन् भव्यजनप्रबोध[6]जनिका या मोक्षसौख्यप्रदा
संसाराब्धिमहोर्म्मिशोषणकरी नृणामतीव प्रिया।
यस्याः सुश्रवणात् पुराकृतमघं नाशं समूलं व्रजेत्
या दारिद्र्यविनाशिनी भयहरा वक्ष्ये कथां[7] तामहम् ॥६॥

२. [8]अस्ति मनोहरमेकं भवनाम पत्तनं प्रसिद्धम्। तत्रेषु[9]कोदण्डमण्डितो[10]मकर-
१० ध्वजो नाम राजाऽस्ति। तेन मकरध्वजेन[11]सकलसुरसुरेन्द्रनरनरेन्द्र[12]फणिफणीन्द्रप्रभृतयो

नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। श्रीमल्लुगित् जिनेन्द्र भगवान्‌के चरण-कमलके प्रति उन्मत्त भ्रमरके समान अनुरागी था और चिकित्सा-शास्त्र-समुद्रमें पारंगत था।

श्रीमल्लुगित्‌का पुत्र मैं– नागदेव हुआ। मै (नागदेव) अल्पज्ञ हूँ तथा छन्द, अलंकार, काव्य और व्याकरण-शास्त्रमें-से मुझे किसी भी विषयका बोध नहीं है।

१५ हरिदेवने जिस कथा (मदन-पराजय) को प्राकृतमें लिखा था, भव्य जीवोंके धार्मिक विकासकी दृष्टिसे मै उसे संस्कृतमें निबद्ध कर रहा हूँ।

मै यहाँ जिस कथाकी चर्चा कर रहा हूँ, वह भव्यजनोंका विवेक जागृत करनेवाली है और अविनश्वर सुख देनेवाली है। संसार-सागरकी महत् ऊर्मियोंको विलीन करती है और श्रोताओंको अत्यन्त प्रिय है। इतना ही नहीं, इस कथाके सुननेसे पूर्व
२० जन्मके समस्त पाप समूल धुल जाते है और दारिद्र्य तथा भय भाग जाते हैं।

कथा इस प्रकार है :

२. भव नामका एक सुप्रसिद्ध तथा मनोहर नगर था। इस नगरका राजा मकरध्वज था। मकरध्वज अपने सफल धनुष-बाणसे मण्डित था और उसके द्वारा इसने इन्द्र, नर, नरेन्द्र, नाग और नागेन्द्र– सबको अपने अधीन कर रखा था। वह अतिशय रूपवान्

---

१. ततोऽहं ग० । तद्योऽह ख०। २. अयमेव प्रस्तुतग्रन्थस्य मदनपराजयस्य ग्रथक'। ३ पद्येनानेन कविना स्वकीयमौद्धत्य परिहृतम्। ४. एतेन स्फुटित यद्धरिदेवकृतप्राकृतभाषानिबद्धमदनपराजयस्यानुवादात्मकोऽयं-करतलगतो मदनपराजय'। ५ सस्कृतबन्धे। ६. प्रबोधजनका च०। अत्र "प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुप" (अष्टा० ७।३।४४) इत्यनेनेत्वे 'प्रबोधजनिका' इत्येव पद साधु। ७. कथा ख०, च०, क०। एतेन प्रकृत-कथाया धर्मकथात्व प्रतीयते। आदिपुराणेऽपि श्रीभगवज्जिनसेनाचार्यै सन्मार्गदेशकत्वाद्धर्मानुबन्धिनी कवितैव प्रशस्यत्वेनाभिमता। "धर्मानुबन्धिनी या स्यात्कविता सैव शस्यते। शेषा पापास्रवायैव सुप्रयुक्तापि जायते॥ परे तुष्यन्तु वा मा वा कवि. स्वार्थं प्रतीहताम्। न पराराधनाच्छ्रेय श्रेय' सन्मार्गदेशनात्॥" –आदिपु० १।६३।७६। ८. अथास्ति ख०। ९. तत्रेक्षुदण्डकोदण्ड– क०, ख०, ग०, ङ०, च०। कोदण्डं धनु.। "धर्मं कोदण्डकं धनु" इति धनंजयः। १०. मकरो ध्वजोऽस्य तथोक्त, कामदेव इत्यर्थ। ११. सकलसुरेन्द्र– च०। १२. –नरामरन–ग०।

दण्डिताः। एवंविधस्त्रैलोक्यविजयी [1]युवाऽतिरूपवान् महाप्रतापी त्यागी भोगी रतिप्रीतिभार्याद्वयो [2]मोहप्रधानसमन्वितः सुखेन राजक्रिया [3]वर्त्तमानोऽस्थात्।

स च मकरध्वज एकस्मिन् दिने [4]शल्यत्रय[5]गारवत्रय[6]दण्डत्रय[7]कर्माष्टकाष्टा[8]दश-दोषास्रव-विषया[10]भिमानम[11]दप्रमा[12]ददुष्परिणामासंय[13]मसप्त[14]व्यसनभटप्रभृतिभिः सर्वैः [15]सभासदैर्वेष्टितोऽमरराजवद्राजते। एवमन्यैरपि नरनरेन्द्रैः सेवितो मकरध्वजः[16] सभा-मण्डपे मोहं प्रति वचनमेतदुवाच – भो मोह, लोकत्रयमध्ये काचिदपूर्वा वार्त्ता श्रुताऽस्ति? ५

अथ मोहोऽब्रवीत् – देव, वार्त्तैकाऽपूर्वा श्रुताऽस्ति। –तदै(दे)कान्ते भवद्भिः श्रूयताम्।

था। महान् प्रतापी था। दानशील था। विलासी था। रति और प्रीति नामकी उसकी दो पत्नियाँ थीं। इसके प्रधान मन्त्रीका नाम मोह था। मकरध्वज त्रैलोक्य-विजयी था और अपने प्रधान सचिवके सहयोगसे बड़े आरामके साथ राज्यका सचालन करता था। १०

एक दिनकी बात है। मकरध्वजके सभा-भवनमें शल्य, गारव, दण्ड, कर्म, दोष, आस्रव, विषय, अभिमान, मद, प्रमाद, दुष्परिणाम, असंयम और व्यसन आदि समस्त योधा उपस्थित थे। अनेक राजा-महाराजा मकरध्वजकी उपासनामें व्यस्त थे। इसी समय महाराज मकरध्वजने अपने प्रधान सचिव मोहसे पूछा – मोह, क्या तीनों लोकमें-से कहीं कोई अपूर्व बात सुननेका समाचार तो तुम्हे नहीं मिला है? मोहने उत्तरमें कहा– १५

---

१ युवति –ड०, च०। २ –द्वयमोह–ख०। ३. 'राजक्रिया वर्तमानः' इति प्रयोगस्यासंगतत्वात् 'राजक्रिया प्रति वर्त्तमान.' इत्यन्वययोजना विधेया 'राजक्रिया वर्त्तयमानः' इति वा सशोधनीयम्। सुखेन राज्य सचालयस्तस्थाविस्यर्थ। ४ "विविधवेदनाशलाकाभि प्राणिगण श्रृणाति हिनस्ति इति शल्यम्।" –राजवा० ७।८। माया-मिथ्या-निदानभेदाच्छल्यस्य त्रिविधत्वम्। ५ 'गारवत्रय' च० पुस्तके नास्ति। "गारवा परिग्रहगता तीव्राभिलाषा।" –मूलारा० द० गा० ११२१। ऋद्धित्यागा-सहता ऋद्धिगौरवम्, अभिमतरसात्यागोऽनभिमतानादरश्च नितरा रसगौरवम्। निकामभोजने निकामशयनादौ वा आसक्ति सातगौरवम्।" –मूलारा० विजयो० गा० ६१२। ६ "दण्ड मनोवाक्कायानामसद्व्यापारे।"– उत्त० टी० अ० १९। ७. "क्रियन्ते मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगैर्हेतुभिर्जीवेनेति कर्माणि अष्टसख्यानि।"– उत्त० टी० अ० ३३। तानि च ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाभिधानि। ८. क्षुत्पिपासा-जरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयरागद्वेषमोहचिन्तारतिनिद्राविस्मयमदस्वेदखेदा अष्टादश दोषा। द्रष्टव्यम्–आप्तस्व० १५, १६। ९. "यथा सर सलिलावाहिद्वार तदास्रवकारणत्वादास्रव इत्याख्यायते तथा योगप्रणालिकया आत्मन कर्म आस्रवतीति योग आस्रव इति व्यपदेशमर्हति।" –स० सि० ६।२। योगश्च कायवाङ्मन. कर्मात्मक। १०. विषिण्वन्ति–विषयिण सवध्नन्ति स्वात्मकतयेति विषया स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दरूपा। ११. मदोऽहङ्कारः। स चाष्टधा। तथा हि–"ज्ञान पूजा कुल जाति वलमृद्धि तपो वपु। अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मया.॥" –र० श्रा० ११२५। १२ "प्रमाद कुशलेष्वनादर –मनसोऽप्रणिधानम्।" –राजवा० ८।१। स च विकथाकषायेन्द्रियनिद्रास्नेहाना चतुश्चतु पञ्चैकैकभेदात् पञ्चदशधा। तथा हि–स्त्री-भक्तराष्ट्रावनिपालकथात्मिकाश्चतस्रो विकथा। क्रोधमानमायालोभरूपाश्चत्वार कषाया। स्पर्शनरसनघ्राण-चक्षु श्रोत्राणि पञ्चेन्द्रियाणि। एका निद्रा, एकश्च स्नेह इति। १३ "प्राणीन्द्रियेष्वशुभप्रवृत्तेर्विरति संयम।" –स० सि० ६।१२। न सयमोऽसयम। १४. व्यसन निन्द्यकार्यप्रवृत्ति। "व्यसन त्वशुभे सक्तौ पानस्त्रीमृगया-दिषु।" इति विश्वः। तत्तु द्यूतमद्यमासवेश्यापरनारीचौर्याखेटासक्तिभेदात् सप्तविधम्। १५ सभामध्ये क०,ग०, घ०, च०। १६. -ज मण्डपे ग०।

"अपि स्वल्पतरं कार्यं यद्भवेत् पृथिवीपतेः।
तन्न वाच्यं सभामध्ये प्रोवाचेदं बृहस्पति.[1] ॥ १ ॥"

तथा चो(तथो)क्तं च

"षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुष्कर्णः [2]स्थिरीभवेत्।
५ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन [3]षट्कर्णोऽरक्षे[4] एव स. ॥ २ ॥"

३. एवं [5]तद्वचनं श्रावयितुमेकान्ते [6]गत्वा मोहमल्लः कामं प्रत्याह – भो स्वामिन्, संज्वलनेन विज्ञप्तिकेयं प्रेषिता। तद्भवद्भिरवधार्यताम्। एवमुक्त्वा मोहोऽनङ्गहस्ते विज्ञप्तिकामदात्। ततस्तां विज्ञप्तिकां मदनो यावद् वाचयति, तावदतिचिन्तापरिपूर्णो भूत्वा मोहं [7]प्रत्यभणत् – मोह, मया जन्मप्रभृत्येतदिदानीमपूर्वं श्रुतम्। तदेतत्सत्यं १० न भवत्येवं मे मनसि वर्त्तते। यतोऽशेषं त्रैलोक्यं मया जितम्। तदन्यस्त्रिभुवनबाह्यो जिननामा[8] राजा कोऽसौ जातोऽस्तीति। असम्भाव्यमेतत्। तच्छ्रुत्वा मोहो बभाण – हे देव, अवश्यमेवेयं [9]सत्या वार्ता। यतः संज्वलनोऽसौ स्वामिनं प्रति मिथ्योक्तिं[10] न करोत्येव। उक्तं च

महाराज, एक अपूर्व बात अवश्य सुननेमें आयी है; पर उसे आप एकान्तमें चलकर सुनें। १५ क्योंकि बृहस्पतिने बतलाया है कि राज-सभामें राजाके लघु कार्यकी भी चर्चा नहीं होनी चाहिए। कहा भी है :

"तीन व्यक्तियों तक पहुँचकर किसी भी गुप्त बातका भेद खुल जाता है। जब-तक वह दो व्यक्तियों तक रहती है, सुरक्षित रहती है। इसलिए इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिए कि मन्त्र दो व्यक्तियों तक ही सीमित रहे।

२० ३. मोह अपनी अपूर्व बात सुनानेके लिए मकरध्वजको एकान्तमें ले गया। वहाँ उसने मकरध्वजके हाथमें एक विज्ञप्ति दी और कहा, महाराज, संज्वलनने यह विज्ञप्ति भेजी है। इसे देखिए।

जैसे ही मकरध्वजने विज्ञप्ति पढ़ी; उसके ललाटपर चिन्ताकी रेखाएँ उभर आयीं। वह मोहसे कहने लगा : मोह, मैं इतना बड़ा हो गया, लेकिन इस प्रकारकी बात आज २५ ही सुन रहा हूँ। मुझे लगता है, यह बात सच नहीं है। जब मैं तीनों लोक अधीन कर चुका हूँ तो त्रिभुवनसे अतिरिक्त यह 'जिन' नामका राजा कहाँसे आ गया? नहीं, यह बिलकुल सम्भव नहीं है।

उत्तरमें मोह कहने लगा : देव, यह बात असम्भव नहीं, बल्कि बिलकुल सत्य है। क्योंकि संज्वलन आपके साथ कभी भी असत्य-व्यवहार नहीं कर सकता। वह इस बातको ३० खूब समझता है कि "विद्वज्जन, राजाको समस्त देवोंका प्रतीक मानते है। इसलिए राजाको

---

१. पञ्च० मि० भे० १०७। २. स्थिरो भ– ङ०। ३. षट्कर्णाद् र– ग०। ४. –रक्ष्य ख०। -रक्ष्यते सदा ग०। "...षट्कर्णं वर्जयेत् सुधीः॥" –पञ्च० मि० १०८। ५ तस्य वचनमाकर्ण्य एका– ख०, ग०, घ०, ङ, च०। ६. गतो– ग०। ७ प्रत्यवदत् ख०। ८ जिननामरा– ख०, ग०, घ०, ङ०, च०। ९ सत्यवा– ख०, ग०, घ०, ङ०, च०। १०. मिथ्योक्त ख०, ग०, घ०।

"[1]सर्वदेवमयो राजा[2] वदन्ति विबुधा जना ।
तस्मात् त [3]देववत् पश्येन्न व्यलीक कदाचन ॥ ३ ॥"

[4]तथा च

"सर्वदेवमयस्यापि विशेषो भूपतेरयम् ।
[5]शुभाशुभफलं सद्यो नृपाद्देवाज्जवान्तरे ॥ ४ ॥" ५

[6]अन्यच्च, [7]भो स्वामिन्, तं जिनराजं किं न वेत्सि ? पुराऽस्माकं च[8]भवनगरे दुर्गतिवेश्याया[9] आश्रमे[10] यः[11] सततं वसति, चौर्यकर्म्म करोति । [12]भूयो भूयोऽपि कोट्टपालकेन[13] मृत्युनापि [14]बुध्यते [15]मार्य्यते च । [16]एवमेकस्मिन् दिने दुर्गतिवेश्यायां विरक्तो भूत्वा [17]कालादिलब्धिवशेन अस्मच्छ्रुतभाण्डागारं प्रविश्य त्रिभुवनसारं रत्नत्रय [18]प्रभूतार्थं गृहीत्वा तत्क्षणाद् गृहभार्य्यादिसमूहं त्यक्त्वोपशमाश्वमारुह्य विषयभटेन्द्रिय- १० भटैर्दुर्द्धरश्चारित्रपुरं ययौ । अथ तत्र पञ्चमहाव्रतसुभटा ये सन्ति तैः प्रभूतार्थरत्नसंयुक्तं राज्ययोग्यं दृष्ट्वा तस्मै तपोराज्यं दत्तम् । एवं तस्मिंश्चारित्रपुरे [19]गुणस्थानसोपाना-लंकृते[20] दुर्गवद्दुर्गमे सुखेन [21]राज्यक्रियां वर्त्तमानोऽस्ति ।

देवस्वरूप ही समझना चाहिए और उसके साथ मिथ्या व्यवहार कदापि नहीं करना चाहिए।" साथ ही वह इस बातसे भी परिचित है कि "यद्यपि राजा समस्त देवोंका प्रतिनिधि है फिर १५ भी उसमें और देवमें एक अन्तर है । और वह यह है कि राजाके पाससे अच्छा-बुरा परिणाम तत्काल ही मिल जाता है, जब कि देवके पाससे वह जन्मान्तरमें प्राप्त होता है ।" फिर स्वामिन् , क्या जिनराजकी आपको बिलकुल स्मृति नहीं है ?

राजन् , बहुत वर्ष पहले यह जिनराज हमारे इसी भव-नगरमें रहता और दुर्गति-वेश्याके यहाँ पडा रहता था । चोरी करनेकी इसकी रोजकी आदत थी । फलतः यह २० कोतवालके द्वारा पकड़ा जाता, पीटा जाता और यहाँतक कि इसे मृत्यु-दण्ड देने तककी चेतावनी दी जाती ।

एक दिन काललब्धिसे यह दुर्गति-वेश्यासे विरक्त होकर अपने श्रुत-मन्दिरमें घुसा । वहाँ इसे त्रिभुवनके सारभूत अमूल्य तीन रत्न हाथ लगे । इन रत्नोंने इसे इतना आकर्षित किया कि इनके आकर्षणसे यह घर, स्त्री, बाल-बच्चे सबको भूल गया और तुरन्त उपशम- २५ अश्वपर सवार होकर चारित्रपुर चला गया । विषय और इन्द्रिय योधाओंने इसे वश-भर रोका, परन्तु वे रोकनेमें समर्थ न हो सके । देव, इतना ही नहीं, जब चारित्रपुरके पाँच

---

१ "···मनुना सप्रकीर्तित ।' 'न व्यलीकेन कर्हिचित् ॥" –पञ्च० मि० भे० १३१ । २. अत्र 'इति' इत्यध्याहार्यम् । ३. देव– ग० । ४. पञ्च० मि० भे० १३२ । ५ शुभाशुभ ग० । ६. 'अन्यच्च' क०, ग०, घ०, ङ०, च० पुस्तकेषु नास्ति । ७. हे क०, ख०, ग०, घ०, च० । ८. अत्र चस्य प्रयोगश्चिन्त्य । ९ वेश्याया य. ख०, ग०, ङ०, च० । १०. 'आश्रमे' ख०, ग०, घ०, ङ०, च० पुस्तकेषु नास्ति । ११ 'य.' ग०, घ० पुस्तकयोर्नास्ति । १२. भूयोऽपि क०, घ०, च० । १३ मृत्युना पूर्णापूर्णयुता च ङ० । १४. वध्यते ख०, ग०, घ०, ङ०, च० । १५ दीर्यते च ङ० । १६. एव निश्वति क० । १७ 'कालादिलब्धिवशेन' क०, ख०, ग०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति । १८ –भूतार्थ ङ० । १९. गुणस्थानसोपानालकृते क०, ख०, ग०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति । २० दुर्गदुर्गमे ख० । २१ 'राज्यक्रिया वर्तमान.' इत्यत्र पूर्ववत् समाधानप्रकारो-ऽनुसरणीय ।

अन्यच्च, [1]देव, तस्य जिनस्येदानीं मोक्षपुरे विवाहो भविष्यतीति सकलजनपदोत्सवो वर्त्तते।

तच्छ्रुत्वा [2]कामेनाभाणि – भो मोह, तत्र मोक्षपुरे कस्यात्मजा, कीदृशाऽस्ति?

४. अथ मोहोऽवदत् – हे देव, तस्मिन् मोक्षपुरे सिद्धसेनतनुजा[3] मुक्तिनामाऽतिसुन्दरी[4], शिखिगलनिभनीलयमुनाजलनिभमधुकरकुलसेवितसुरभिकुसुमनिचयनिचितमृदुघनकुटिलशिरसिजा, उदितषोडशकलापरिपूर्णशशधरसन्निभवदनबिम्बा, त्रिदशेन्द्रप्रचण्डभुज[5]दण्डसज्जीकृतवक्रकोदण्डसदृशभ्रूलतिका, विकसितचञ्चलनीलोत्पलदलस्पर्द्धिविशाललोचना, निजद्युतिविस्फुरदमलसुवर्णमुक्ताफलभूषणविभूषित[6]ललिततिलककुसुमसमाननासिकाग्रा, अमृतरसपरिपूरितेषत्सुचि(शुचि)स्मितविराजमानबिम्बाधरा, नानाविधेन्द्रनीलहीरकमाणिक्यरत्न[7]खचितमनोहरोज्ज्वलवर्त्तुलमुक्ताफलहारलम्बमानालङ्कृत-

---

महाव्रत-भटोंने देखा कि जिनराज अमूल्य रत्नत्रयीका स्वामी है और यह राज्य-संचालनके सुयोग्य है तो उसे तपोराज्य दे दिया। स्वामिन्, इस प्रकार यह जिनराज आज गुणस्थानरूपी सीढ़ियोंसे सुशोभित और दुर्ग-जैसे दुर्गम चारित्रपुरमें सुखपूर्वक राज्य कर रहा है।

महाराज, इसके सम्बन्धका एक नया समाचार और सुना है। सुना है कि अचिर भविष्यमें जिनराजका मोक्षपुरमें विवाह होगा। इसलिए समस्त जनपदोंमें उत्सव-समारोह मनाया जा रहा है।

मकरध्वजने ज्यों ही मोहकी यह बात सुनी, उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। वह मोहसे कहने लगा : मोह, यह तो बतलाओ, मोक्षपुरमें किसकी कन्या है और उसकी रूपराशि किस प्रकारकी है, जिसके साथ जिनराजका विवाह होने जा रहा है?

४. मोह कहने लगा—महाराज : कन्याके सौन्दर्यके सम्बन्धमें आप क्या पूछते हैं। वह सिद्धसेनकी कन्या है। मुक्ति (सिद्धि) उसका नाम है और सौन्दर्यमें वह अनुपम है। उसका केश-पाश मयूरके गलेके समान नील है, फूलोंके समान कोमल, सघन तथा कुटिल है। उसमें अनेक प्रकारके सुगन्धित कुसुम गुँथे हुए हैं, जिनपर यमुना-जलकी तरह काले भ्रमर गुनगुनाया करते हैं। उसका मुख सोलह कलाओंसे पूर्ण उदित चन्द्र-जैसा है और भ्रू-लता इन्द्रके प्रचण्ड भुजदण्डमें स्थित टेढ़े धनुषके समान है। उसके नेत्र विशाल हैं और वे विकसित एवं वायु-विकम्पित नील कमलोंसे स्पर्द्धा करते हैं। उसकी नासिका कान्तिमान् है। सुवर्ण और मोतियोंके आभूषणसे भूषित है। तथा तिलक-वृक्षके कुसुमके समान सुन्दर है। उसका अधर-बिम्ब अमृत-रससे परिपूर्ण है और मन्द तथा शुभ्र स्मितसे विलसित हो रहा है। उसका कण्ठ तीन रेखाओंसे मण्डित है और उसमें अनेक प्रकारके नीले, हरे मणियों तथा सुन्दर उज्ज्वल एवं गोल-गोल मोतियोंसे अलंकृत हार पड़े हुए हैं। उसका

---

१ हे देव ङ०, च०। २. कामोऽभाणि ख०, घ०, च०। ३ तनूजा ग०। ४ –सुन्दरा क०, ग०, घ०, ङ०, च०। ५. भुजा ख०, च०। ६. 'ललित' च० पुस्तके नास्ति। ७. 'रत्न' च० पुस्तके नास्ति।

रेखात्रयमण्डितकम्बुवद्(म्बु)ग्रीवा, अभिनववरचम्पककुसुमशुभतरद्रुतकनकरुचिनिभ-गौरवर्णाङ्गा(ङ्गी), अभिनवशिरीषदामोपमबाहुलतिका, प्रथमयौवनोद्भिन्नकर्कशस्तनकलश-भरनमितक्षाममध्या[2] । इत्यादिनाभिजघनजानुगुल्फचरणतललावण्यलक्षणोपेतायाः सिद्ध्यङ्गनाया रूपवर्णनं कृत्वा जिनं प्रति दयानामदूतिकया यथा द्वयोर्विवाहघटना भवति तथोपायं(यः)कर्तुमारब्धम(ब्धोऽ)स्ति । ५

एवं तस्य मोहस्य वचनमाकर्ण्य विषयव्याप्तो भूत्वा मकरध्वजोऽभणत्—हे मोह, तदद्य संग्रामे जिनेश्वरं जित्वा सिद्ध्यङ्गनापरिणयनं यद्यहं न करोमि तत्[3] स्वं नाम त्यजामि । इत्युक्त्वा पञ्चविधकुसुमबाणसहितं धनुः करतले गृहीत्वा तत्सङ्ग्रामार्थमगमत्[4] ।

५. अथैवं तमुत्सुकत्वेन निर्गच्छन्तमवलोक्य मोहोऽजल्पत्—देव, वचनमेकं शृणु । १० निजबलमज्ञात्वा सङ्ग्रामार्थं न गम्यते । उक्तं च, यतः

"स्वकीयबलमज्ञाय सङ्ग्रामार्थं तु यो नरः ।
गच्छत्यभिमुखो नाशं याति वह्नौ पतङ्गवत् ॥ ५ ॥"

शरीर चम्पाके अभिनव प्रसूनकी तरह स्वच्छ और तपाये गये सोनेकी कान्तिके समान गौर है । उसकी बाहु-लता नूतन शिरीष-मालाकी तरह मृदुल है । और मध्यभाग प्रथम यौवनसे १५ विकसित तथा कठोर स्तन-कलशके भारसे झुका हुआ और कृश है । उसकी नाभि, जघन, घुटने, चरण और चरण ग्रन्थियाँ लावण्यसे निखर रही है । स्वामिन्, इसके सिवाय दया नामकी दूती इस बातके लिए कटिबद्ध है कि जिनराज और इस मुक्ति-कन्याका यथाशीघ्र विवाह हो जाये ।

मकरध्वज मोहके मुँहसे मुक्ति-कन्याके इस अद्भुत लावण्यका वर्णन सुनकर विषय- २० व्याकुल हो गया । वह मोहसे कहने लगा, मोह, यदि यह बात है तो तुम मेरी प्रतिज्ञा भी सुन लो । 'मै निश्चय करता हूँ कि यदि आजकी लडाईमें जिनराजको जीतकर मैने मुक्ति-कन्याके साथ विवाह नहीं किया तो मै मकरध्वज ही किस कामका ?'

यह कहकर मकरध्वजने कुसुम-बाणवाला धनुष हाथमें ले लिया और जिनराजसे संग्राम करनेके लिए चल पडा । २५

५. जब मोहने देखा कि मकरध्वज जिनराजसे लडाई लडने चल ही पडा है तो वह कहने लगा : अरे महाराज, आप इस प्रकार उत्सुकतासे कहाँ जा रहे है ? मेरी बात तो सुनिए । अपनी शक्तिको बिना पहचाने युद्धके लिए नहीं जाना चाहिए। कहा भी है :

"जो मनुष्य अपने बलका विवेक न रखकर युद्धके लिए तैयार होता है वह अग्निके सम्मुख आये हुए कीट-पतंगकी तरह भस्म हो जाता है ।" और ३०

---

१ 'द्रुत' च० पुस्तके नास्ति । द्रुत तप्तम् । "द्रुत शीघ्रे च विद्राणे" इति विश्वः । २. 'विद्यते'-इति शेषः । ३ स्वनाम घ० । ४ गन्तुमुद्यतो बभूव । ५ तुलना—"अविदित्वात्मनः शक्तिं परस्य च समुत्सुकः । गच्छन्नभिमुखो नाशं याति वह्नौ पतङ्गवत् ॥"—पञ्च० मि० भे० ३५४ ।

तथा[1] च

"भृत्यैर्विरहितो राजा न लोकानुग्रहप्रदः।
मयूखैरिव दीप्तांशुस्तेजस्व्यपि[2] न शोभते ॥ ६ ॥"

अन्यच्च[3]

५ "न विना पार्थिवो भृत्यैर्न भृत्याः पार्थिवं विना।
एतेषां व्यवहारोऽयं परस्परनिबन्धनः ॥ ७ ॥"

तथा[4] च

"राजा तुष्टोऽपि भृत्यानामर्थमात्रं प्रयच्छति।
[5]तेन (ते तु) सम्मानमात्रेण प्राणैरप्युपकुर्वते ॥ ८ ॥

१० एवं[6] ज्ञात्वा[7] नरेन्द्रेण भृत्याः कार्या विचक्षणाः।
कुलीनाः शौर्यसंयुक्ताः शक्ता भक्ता क्रमागताः ॥ ९ ॥"

तथा[8] च

"न भवेद्बलमेकेन समवायो बलावहः।
तृणैरेव कृता रज्जुर्यया [9]नागश्च बद्ध्यते ॥१०॥"

---

१५ "जिस प्रकार तेजस्वी भी सूर्यकिरणोंके अभावमें न स्वयं ही सुशोभित हो सकता है और न प्रकाश ही कर सकता है उसी प्रकार भृत्योंके विना राजा भी लोकका उपकार नहीं कर सकता।" अथ च

"राजाका भृत्योंके बिना काम नहीं चल सकता और भृत्योंका राजाके विना। इस प्रकार राजा और भृत्योंकी स्थिति एक-दूसरेके आश्रित समझनी चाहिए।" साथ ही–

२० "राजा भृत्योंसे प्रसन्न होकर उन्हें केवल धन ही देता है। लेकिन भृत्य यदि राज-सम्मानित होते है तो अवसर आनेपर राजाके लिए अपने प्राण तक निछावर कर डालते है।"

"इस तथ्यको ध्यानमें रखते हुए राजाका कर्तव्य है कि वह कुशल, कुलीन, शूरवीर, समर्थ, भक्त और परम्परासे चले आये हुए भृत्योंको अपने यहाँ स्थान दे।" क्योंकि

२५ नीतिकारोंका कथन है :

"बलाधान एकसे नहीं होता। बलके लिए समुदाय वांछनीय रहता है। अकेला तिनका कुछ नहीं कर सकता। लेकिन रस्सीके रूपमें उन्हीं तिनकोंका समवाय हाथीको भी बन्धनमें रखता है।"

---

१. "भृत्यैर्विना स्वयं राजा लोकानुग्रहकारिभिः। मयूखैरिव ॰॥" –पञ्च॰ मि॰ भे॰ ८८। २. –स्तेजसापि ग॰। ३. पञ्च॰ मि॰ भे॰ ८७। ४. पञ्च॰ मि॰ भे॰ ९१। ५. तेऽपि स– ख॰। ६. पञ्च॰ मि॰ भे॰ ९२। ७. गत्वा ग॰। ८. तुलना–"अल्पानामपि वस्तूना संहतिः कार्यसाधिका। तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिन।" –हितोप॰ मि॰ २७। ९. नागोऽपि ग॰।

एवं तस्य वचनमाकर्ण्य सबाण कार्मुकं परित्यज्योपविष्टः[1][2]। ततो मोहं प्रत्यवोचत्–भो मोह, यद्येवं तत्त्वं सकलसैन्यमेलनं कृत्वा द्रुततरमागच्छ।

ततो मोहो जजल्प[3]–देव[4], एवं भवति[5] युक्तम्[6]। एवमुक्त्वा तं मकरध्वजं प्रणम्य निर्गतः। अथ मोहमल्ले गते सति मकरध्वजः[7]श्रुतावस्थाव्याप्तः श्लोकमेन(त)मपठत्

"मत्तेभकुम्भपरिणाहिनि कुङ्कुमार्द्रे
तस्या पयोधरयुगे रतिखेदखिन्न।
वक्त्रं निधाय भुजपञ्जरमध्यवर्ती
स्वप्स्ये कदा[8]क्षणमहं क्षणदावसाने ॥११॥"

§६. एवंविधमुच्चलितचित्तं[9]शोकज्वरसंतप्ताङ्गमतिक्षीणकायं दृष्ट्वा[10] रतिरमणी प्रीतिसखीं[11] प्रत्यपृच्छत्–हे सखि, सांप्रतमस्मद्भर्त्ताऽयमुच्चलिते[12]चित्तश्चिन्तापरिपूर्णः। कथमेतत्? तदाकर्ण्य[13]प्रीतिः सखीं[14]प्रत्याह–हे सखि, कीदृशावस्थया व्याप्तोऽयमस्त्येवं न जानामि। तत् किमनेन व्यापारेण प्रयोजनम्? उक्तं च यतः

मोह कहता गया .. 'इसलिए आपको अकेले समर-भूमिमें नहीं उतरना चाहिए।'

मोहकी बात सुनकर मकरध्वजने धनुष-बाण एक ओर रख दिया और अपने आसन-पर बैठ गया। वह मोहसे फिर कहने लगा : मोह, यदि तुम्हारा इस तरहका आग्रह है तो समस्त सैन्य तैयार करके तुम यहाँ जल्दी आओ।

मोह मकरध्वजसे कहने लगा : महाराज, अब कही है आपने ठिकानेकी बात। लीजिए, मै यह चला। इतना कहकर उसने मकरध्वजको प्रणाम किया और वह वहाँसे चल पड़ा।

मोह-योधाके चले जानेके पश्चात् मकरध्वज इस प्रकार गम्भीर चिन्तामें निमग्न हो गया और सोचने लगा

"वह समय कब आयेगा जब रात्रिके पिछले समय रति-खेदसे खिन्न होकर मैं क्षण-भरके लिए मदमत्त हाथीके गण्डस्थलके समान विशाल और कुंकुमसे आर्द्र मुक्ति-कन्याके स्तन-युगपर अपना मुख रखकर उसकी भुजाओंमें बँधा रहूँगा।"

§६. एक बार, मकरध्वजकी पत्नी रतिने देखा कि मकरध्वजका चित्त अत्यन्त चंचल हो गया है, शरीर शोकसे सन्तप्त रहने लगा है और एकदम क्षीण भी हो गया है। उसे बड़ी चिन्ता हुई और वह अपनी प्रिय सखी प्रीतिसे पूछने लगी : सखि, पता नहीं, अपने पतिदेवको क्या हो गया है? देखती नहीं, यह रोज ही चिन्तित और चलचित्त बने रहते है।

रतिकी बात सुनकर प्रीतिने कहा : सखि, मालूम नहीं, प्राणनाथकी इस प्रकारकी

---

१ सबाणकार्मुकं प– क०, ख०, ग०। २ अत्र 'स' अध्याहार्य। ३ अजल्पत् ख०। ४ हे देव घ०, च०। ५ भवतु ख०। ६ युक्तमुक्तम् ङ०। ७ श्रुतावस्था पूर्वरागात्मिका, तया व्याप्त सन्। पूर्वरागश्चायम्– "श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथ संरूढरागयो। दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वराग. स उच्यते ॥" –सा० द० ३।१८८। ८ " क्षणमवाप्य तदीयसंगम्।" –पञ्च० मि० भे० २२०। ९ –द्वार स–ख०, च०। १०. अत्र 'अनङ्गम्' इत्यध्याहार्यम्। ११ प्रीति सखी क०, ख०, ग०, घ०, ङ०। १२. –तश्चिन्ता– च०। १३ प्रीतिः प्राह ख०, ङ०। १४. प्रति प्राह ग०।

"अव्यापारेषु व्यापारं यो नरः कर्तुमिच्छति ।
स एव निधनं याति यथा[1] राजा ककुद्रुमः ॥१२॥"

[2]अथ रतिराह–हे सखि, अयुक्तमेतत् त्वयोक्तम् । यत एवं पतिव्रताधर्मो न भवति । अथ सा प्रीतिरब्रवीत्–हे सखि, यद्येवं तर्हि त्वमेव[3] पृच्छां कुरु । एवं सखी-
५ वचनमाकर्ण्यैकदा शय्यागारे शयनस्थमनङ्गं रजन्यां[4] प्रश्नार्थं रतिरालिलिङ्ग । तद्यथा

यद्वत् पर्वतनन्दना पशुपतेरालिङ्गनं चाकरो–
दिन्द्राणी त्रिदशाधिपस्य हि यथा गङ्गानदी[5] चाम्बुधेः ।
सावित्री कमलोद्भवस्य तु यथा लक्ष्मीर्यथा श्रीहरे–
रिन्दो रोहिणि[6] संज्ञिका [7]फणिपतेर्देवी च पद्मावती ॥ ७ ॥

१० एवं च समालिङ्ग्य तमपृच्छत्–देव, युष्माकं सांप्रतं न चाहारः, न निद्रा, न राज्योपरि चित्तम्[8], तत्कथमेतत् ? अन्यच्च

अवस्था क्यों हो गयी है ? कदाचित् उनके सिर कोई महान् जटिल कार्य आ पड़ा हो । जो हो, हमें उनकी इस प्रवृत्तिमें हस्तक्षेप करनेकी कोई जरूरत नहीं मालूम देती । कहा भी है :

१५ "जो मनुष्य अप्रयोजनीय कार्योंमें अपनी टॉग अड़ाता है उसकी ककुद्रुम राजाकी तरह दुर्दशा होती है ।"

रतिने प्रीतिसे कहा : सखि, तुमने यह ठीक बात नहीं कही । पतिव्रताओंका यह धर्म नहीं है कि वे पतिकी किसी प्रकारकी चिन्ता न करें ।

उत्तरमें प्रीतिने कहा : सखि, यदि यह बात है तो प्राणनाथसे तुम ही पूछो कि
२० वे इतने चिन्तित और खिन्न क्यों बने रहते है ?

रतिने सखीकी बात ध्यानमें रख ली ।

एक बार रातके समय महाराज मकरध्वज शयनागारमें शय्यापर लेटे हुए थे । इतनेमें रति अपनी शंका समाहित करनेके लिए मकरध्वजके पास पहुँची । वहाँ जाकर वह मकर-ध्वजका इस प्रकार आलिंगन करने लगी जिस प्रकार पार्वती महादेवका, इन्द्राणी इन्द्रका,
२५ गंगा समुद्रका, सावित्री ब्रह्माका, लक्ष्मी श्रीकृष्णका, रोहिणी चन्द्रका और पद्मावती नागेन्द्रका आलिंगन करती है ।

रतिने इस प्रकार आलिंगन करनेके बाद मकरध्वजसे पूछा – महाराज, आजकल न आप ठीक भोजन करते है, न ठीक नींद लेते है और न राज-काजमें ही आपका चित्त लगता है । सो क्या कारण है ? क्योंकि आप स्वयं जानते हैं :

---

१. " ...कीलोत्पाटीव वानरः ॥" –पञ्च० मि० भे० २१ । वदत्येवं विचक्षणः ङ० । २. अतः पूर्वं "अस्य श्लोकस्य कथा प्रसिद्धा" इति पुस्तकान्तरेभ्योऽधिकः पाठो वर्त्तते ख० पुस्तके । ३. त्वं गत्वा पृ– ख०, ङ० । ४. –न्यामवसर प्राप्य प्र– ख० । ५ –दीवाम्बु– क०, ग०, ङ० । ६. सञ्ज्ञका क०, ख०, ग०, घ०, च० । ७ धरणेन्द्रस्य । ८. चिन्ता ख० ।

त्वया को न जितो लोके, त्वया का स्त्री न सेविता।
सेवा ते न कृता केन, तदवस्थान्वितोऽसि किम् ॥ ८ ॥

७. एवं तया पृष्टो मकरध्वजो वचनमेतदूचे – प्रिये, किं तवानेन व्यापारेण ? ममावस्थामपहरत्येवंविधः कोऽस्ति ? तच्छ्रुत्वा रतिरजल्पत् – काऽवस्था लग्नास्ति[1] ते ? तदवश्यं कथ्यताम्। स[2] आह – प्रिये, यदा संज्वलनेन विज्ञप्तिका प्रेपिता तदा सिद्ध्य- ५ ङ्गनारूपलावण्यवर्णनं श्रुत्वा तद्दिनप्रभृति मम [3]श्रुताऽवस्था लग्ना। तत् किं करोमि ?

अथ रतिराह[4] – हे देव, तत्त्वयात्मनो वृथा शरीरशोषः[5] कृतः। यतो मोह[6]मल्ल- सदृशे सचिवे सति गुह्यमेतन्न कथयसि[7]। उक्तंच[8] यतः

"जनन्या यच्च नाख्येयं कार्यं तत् स्वजने[9] जने।
[10]सचिवे कथनीयं स्यात् कोऽन्यो विश्रम्भ[11]भाजनः ॥१३॥" १०

"संसारमे ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो तुम्हारे वशवर्ती न हो। ऐसी कोई स्त्री नहीं जिसका तुमने उपभोग न किया हो। साथ ही इस प्रकारका कोई मनुष्य भी नहीं है जिसने तुम्हारी सेवा न की हो। फिर समझमें नहीं आता कि आपकी इस प्रकारकी अवस्था क्यों हो गयी है ?"

७. जब रतिने बड़े अनुनय-विनयके साथ मकरध्वजसे इस प्रकारकी बात पूछी तो १५ उत्तरमें मकरध्वजने कहा : तुम हमसे यह बात क्यों पूछती हो ? ऐसा कौन है जो मेरी यह अवस्था दूर कर सके ?

मकरध्वजकी बात सुनकर रतिने कहा : प्राणनाथ, बतलाइए तो आपकी यह हालत क्यों और कैसे हो गयी ?

मकरध्वज कहने लगा : प्रिये, जिस दिन मैंने संज्वलनके द्वारा लायी गयी विज्ञप्ति २० पढ़ी और सिद्धि-कन्याके रूप एवं लावण्यका मनोहर विवेचन सुना उसी दिनसे मेरी यह शोचनीय स्थिति हो गयी है। समझमें नहीं आता कि अब मैं क्या करूँ ?

रतिने कहा : यदि यह बात है तो आपने व्यर्थ ही शरीरको सुखाया। जब मोह-सरीखे सुभट आपके मन्त्री हैं तो यह रहस्यपूर्ण समाचार आपने उन्हें क्यों नहीं बतलाया ? नीतिकारने कहा है : २५

"जो बात माताको नहीं बतलायी जा सकती उसे अपने स्वजनसे कह देना चाहिए और मन्त्रीसे तो अवश्य ही कह देना चाहिए। भला, मन्त्रीको छोड़कर अन्य कौन विश्वास-पात्र हो सकता है ?"

---

१ लग्ना ते घ०, च०। २. स काम आ– घ०, च०। ३. सुरतावस्था क०। ४. अत पर ख० पुस्तके निम्नाङ्कित प्रकीर्णकपद्यमुद्धृतमस्ति–

"ऊची डालितणाइ फल देखि फाटिम हिया।
वौणिन भूमितणाइ जे विडविहि (ची ?) आईय ॥"

५ –शोपण कृतम् च०। ६ मोहसदृशे ग०। ७. कथयति क०, ग०, घ०, च०। ८ तुलना– "स्वामिनि गुणान्तरज्ञे गुणवति भृत्येऽनुवर्त्तिनि कलत्रे। सचिवे चानुपचर्ये निवेद्य दुःख सुखी भवति।"–पञ्च० मि० भे० ११०। ९. सचिवे ज–ख०। १० सत्य तत क– ख०। ११. भाजनम् ख०, ङ।

ततः [1]पञ्चेषुरूचे — हे प्रिये, मोहेनापि ज्ञातमेतद् गुह्यम्। तन्मया सकलसैन्य-मेलनार्थं प्रेपितोऽस्ति। तद्यावत् स नागच्छति यावत्तत्र गत्वा यथा[2] मामिच्छति तथोद्यमस्त्वया कर्त्तव्यः। यत उद्यमात् सकलं भवति। उक्तं च[3] यतः

> "उद्योगिन सततमत्र समेति लक्ष्मी-
> दैवं हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति।
> दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
> यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः ॥१४॥"

[4]तथा च

> "रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिता सप्त तुरगा
> निरालम्बो मार्गश्चरणरहितः सारथिरपि।
> रविर्यात्येवान्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः
> क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे ॥१५॥"

अन्यच्च, यतस्त्वया स्वभावेन पृष्टोऽहं तस्मान्मया कथितम्। तद्यदि ममार्त्ति[5]-मपहरसि तत्त्वं पतिव्रता भवसि।

मकरध्वज उत्तरमें कहने लगा : हे प्रिये, यह समाचार मोहसे भी छिपा नहीं है। उसे इस रहस्यका पूरा पता है। मैंने उसे हाल ही समस्त सैन्यको तैयार करनेके लिए भेजा है। पर तुमसे भी मुझे एक बात कहनी है। जबतक मोह समस्त सैन्य तैयार करके वापस नहीं आता है, तबतक तुम सिद्धि-कन्याके पास जाकर इस प्रकारका यत्न करो जिससे वह जिनराजसे विमुख हो जाये और अपने विवाहोत्सवके अवसरपर मुझे ही अपना जीवन-संगी चुने। मुझे विश्वास है, तुम्हारा उद्योग अवश्यमेव सफल होगा। नीतिविदोंका कहना है :

"लक्ष्मी उद्योगी मनुष्यको ही प्राप्त होती है। यह अकर्मण्योंका कथन है कि सब कुछ भाग्यसे ही मिलता है। इसलिए मनुष्यको चाहिए कि वह दैवको एक ओर रखकर अपनी शक्तिके अनुसार प्रयत्न करे। यत्न करनेपर भी यदि सफलता नहीं मिलती है तो इसमें मनुष्यका कोई अपराध नहीं।" और

"जिसके रथमें केवल एक पहिया है और साँपोंसे बँधे हुए सात घोड़े हैं। मार्गमें कोई अवलम्ब नहीं है। सारथी भी एक पैरवाला है। इस प्रकारका सूर्य भी प्रति दिन अपार आकाशके एक छोरसे दूसरे छोर तक आता-जाता है। इसलिए यह निर्विवाद है कि महान् पुरुष अपने बलसे ही कार्य सिद्ध करते है, दूसरोंके आश्रयसे नहीं।"

प्रिये, तुमने मुझे अपना समझकर सहज भावसे मेरी बात पूछी, इसलिए ही मैंने सब कुछ बतला दिया, अब यह तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम मेरी मनोव्यथा दूरकर मुझे सुखी करो। इसमें ही तुम्हारा पातिव्रत्य निहित है।

---

१. कामः। २. यथानन्तर 'सा (सिद्धयङ्गना)' इत्यध्याहार्यम्। ३. पञ्च० मि० भे० २१४। ४. भोजप्र० १६९। ५. –मार्त्तम–च०।

८. ततो रतिरब्रवीत्–भो देव, युक्तायुक्तं किंचिन्न जानासि। उक्तं च[1]

"स्वाधीनेऽपि कलत्रे नीचः परदारलम्पटो भवति।
सपूर्णेऽपि तडागे काकः कुम्भोदकं पिबति[2] ॥१६॥"

अथ[3] किं काऽपि स्वभार्यादूतत्वमस्ति? तच्छ्रुत्वा कन्दर्पोऽप्यवोचत्–हे प्रिये, युक्तमेतत् त्वयोक्तम्। परं किंतु त्वया विना कार्यमिदं न भवति। यतस्त्रीभिः स्त्रियो विश्वासमायान्ति। उक्तं च[4] यतः ५

"मृगैर्मृगाः सगमनुव्रजन्ति स्त्रियोऽङ्गनाभिस्तुरगास्तुरङ्गैः।
मूर्खाश्च मूर्खैः सुधियः सुधीभिः समानशीलव्यसनेषु सख्यम् ॥१७॥"

तद्वचनं श्रुत्वा सचिन्ता भूत्वा रतिरभणत्–देव, सत्यमिदमुक्तं भवता। परं किं तु यद्येवं [5]दर्शयसि तत्ते सिद्धिर्भार्या भवति। १०

"[6]काके शौच द्यूतकारेषु सत्यं [7]सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोपशान्तिः।
क्लीबे धैर्यं मद्यपे तत्त्वचिन्ता [8]यद्येव स्यात् तद्भवेत् सिद्धिरामा ॥१८॥"

८. पतिदेवकी बात सुनकर रति बड़े असमंजसमें पड़ गयी। वह कहने लगी: स्वामिन्, आपको उचित-अनुचितका-कोई विवेक नहीं है। नीतिकारोने ठीक ही कहा है:

"अपनी पत्नीके सुलभ रहनेपर भी नीच पुरुष सन्तोषकी साँस नहीं लेता। इसपर भी वह पर-स्त्री-लम्पट बनता है। कौवाका भी तो यही हाल है। उसे भरे हुए तालाबका पानी पसन्द नहीं। घड़ेके सड़े हुए पानीसे ही उसे सन्तोष होता है।" १५

रति कहने लगी: देव, फिर क्या किसीने कभी अपनी पत्नीसे भी दूतका काम लिया है, जो कार्य आप मुझे सौंपने चले है?

मकरध्वजने कहा: प्रिये, तुमने बात तो बिलकुल सच कही है, लेकिन तुम्हीं सोचकर बतलाओ, क्या यह कार्य तुम्हारे बिना संभव है? यह कार्य मैं तुम्हे इसलिए सौंप रहा हूँ कि स्त्रियाँ ही स्त्रियोंके प्रति अधिक विश्वासशील देखी जाती है। कहा भी है: २०

"हिरन हिरनोंका सहवास पसन्द करते है, स्त्रियाँ स्त्रियोंका, घोड़े घोड़ोंका, मूर्ख मूर्खोंका और विद्वान् विद्वानोंका। ठीक है, मित्रता समानशील-व्यसनवालोंमें हुआ करती है।" २५

मकरध्वजकी बात सुनकर रतिको बड़ी चिन्ता हुई। उसने मकरध्वजसे कहा: देव, आप ठीक कहते है। परन्तु आपको मुक्ति-कन्या प्राप्त नहीं हो सकती। क्योंकि जिस प्रकार–

"कौवामें पवित्रता, जुवारियोंमे सत्य, सर्पमें क्षमा, स्त्रियोंमें कामकी उपशान्ति, नपुंसकमें धैर्य और मद्य पीनेवालेमें विवेकबुद्धि नहीं हो सकती उसी प्रकार सिद्धि-कन्या भी ३०

१ सुभाषित० मा० १७० । २ पद्यमिद क०, ग०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति। ३ अथ क०, ग०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति। ४ "मृगा मृगैः गावश्च गोभिस्तु।"–पञ्च० मि० भे० ३०५। ५ दर्शयति च०। ६ " राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा।"–पञ्च० मि० भे० १५८। ७. पद्यस्यास्य द्वितीयतृतीयचरणयो पूर्वापरीभावोऽवलोक्यते ग० पुस्तके। ८ राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुत वा ख०।

अन्यच्च, सा सिद्ध्यङ्गना जिननाथं वञ्चयित्वाऽन्येषां नामपृच्छामपि न[1] करोति। उक्तं च यतः

"ये स्त्रीशस्त्राक्षसूत्राद्यै रागाद्यैश्च कलङ्किताः।
निग्रहाऽनुग्रहपरा सा सिद्धिस्तान् न [2]वाञ्छति ॥१९॥"

५ तत्किं वृथाऽनेनार्त्तेन प्रयोजनम्? उक्तं च यतः

"व्यर्थमार्त्तं[3] न कर्त्तव्यमार्त्तात्तिर्यग्गतिर्भवेत्।
यथाऽभूद्धेमसेनाख्यः पक्वे [4]चैर्वारुके कृमि ॥२०॥"

६. अथ कामोऽवादीत्—कथमेतत्? साऽब्रवीत्—

अस्ति कस्मिंश्चित् प्रदेशे चम्पा नाम नगरी सततप्रवृत्तोत्सवा प्रभूतवरजिनालय-
१० जिनधर्माचारोत्सवसहितश्रावका घनहरिततरुखण्डमण्डिता, सकलभूमिभागोत्संगसं-
चरद्वरविलासिनीविलासचलितचतुरचरणरणितनूपुर[5]रस[6]नारव[7]बधिरितदिगन्तराला,

---

तुम्हारी पत्नी नहीं बन सकती।"

फिर देव, वह सिद्धि-कन्या जिनराजको छोड़कर और किसीका नाम तक नहीं लेती है। अन्यको वरण करनेकी तो बात ही छोड़िए। सिद्धि-कन्याके सम्बन्धमें कहा भी
१५ जाता है :

"जो देव, स्त्री, शस्त्र, जप-माला और राग-द्वेषसे कलंकित है तथा निग्रह और अनुग्रहमें तत्पर रहते है, सिद्धि-कन्या उनके पास फटकती तक नहीं है।"

रति कहने लगी : देव, इसलिए मेरी आपसे विनय है कि आप व्यर्थमें आर्त्तध्यान न कीजिए। कहा भी है :

२० "निष्प्रयोजन आर्त्तध्यान नहीं करना चाहिए; क्योंकि आर्त्तध्यानके कारण पशु-पर्यायमें जन्म लेना पड़ता है। जिस प्रकार आर्तध्यान करनेसे हेमसेन मुनि पके हुए खर-बूजाके कीड़ा बने।"

९. कामने कहा : यह कैसी बात? रतिने कहा : प्राणनाथ, सुनिए। और वह कहने लगी :

२५ किसी प्रदेशमें चम्पा नामकी नगरी थी। इस पुरीमें प्रतिदिन उत्सव हुआ करते थे। यह दिव्य जिनालयोंसे विभूषित थी और जैन धर्माचारका आचरण करनेवाले श्रावकोंसे महनीय थी। एक ओर इसमें सघन और हरित वृक्षावली लहरा रही थी तो दूसरी ओर समस्त भूखण्डके उत्सङ्गमें विहार करनेवाली रमणीय रमणियोंके विलास-चलित चतुर चरणोंमें रणित होनेवाले नूपुरोंकी रुनझुन दिगन्तरालमें झुनझुना रही थी। एक ओर ब्राह्मण,

---

१. न च० पुस्तके नास्ति। २ गच्छति च०। वेच्छति ङ०। ३. आर्त्तध्यानमित्यर्थः। ४. "ईर्वारु कर्कटी स्त्रियौ" इत्यमर। वै कर्कटी क—ग०। चैवातुके च०। ५. रचना र—क०, ग०, घ०, ङ०, च०। ६ रावव्र—घ०, च०। ७. बधिरीकृतदि—ग०।

वर्णत्रयगुणशुश्रूष्य[1]शूद्रजनपरिपालितजनपदा, नानाविषयागतानेकपात्रवैदेश्यसार्थसमस्त-ज्ञानसंपन्नोपाध्यायशतशोभिता, प्रचुरपुरवधूवदनचन्द्रज्योत्स्नोद्भा[2]सितवसुधाधवलमालो-पशोभिता। एवंविधाया नगर्यां हेमसेननामानो मुनयः कस्मिंश्चिज्जिनालये महोग्रं तपश्चरणं कुर्वन्तो हि तस्थुः। एवं तेषां तपश्चरणक्रियावर्त्तमानानां कतिपयैर्दिवसैर्मृत्युकालः प्राप्तः। अथ यावत्तेषामासन्नमृत्युर्वर्त्तते, तावत्तस्मिंश्चैत्यालये श्रावकजना विविधकुसुमफलाद्यैरा-राधना[3]पूजां चक्रिरे। ततोऽनन्तरं प्रतिमैकायाश्चरणोपरि सुपक्वमेकमैर्वारुकं यत् स्थापित-मासीत् तद्गन्धजनितार्त्तेन प्राणान् परित्यज्य तत्क्षणात्तस्मिन्नेर्वारुकमध्ये कृमिर्जज्ञिरे। ततः श्रावकजना मिलित्वा [4]महोत्सवपूर्वकं शरीरसंस्कारं चक्रिरे। ५

१० ततो द्वितीयदिने [6]येऽन्ये चन्द्रसेननामानः साधवस्तिष्ठन्ति तान्प्रति श्रावकाः पृच्छां कर्त्तुमारब्धाः – अहो, हेमसेनैरिमै (रेभि) मरणपर्यन्तमस्मिंश्चैत्यालये महोग्रं तपश्चरणं कृतम्। तत्तपःप्रभावादधुना कां गतिमवापुरेवमवलोकनीयो(यं) भवद्भिः। १०

अथ ते कालज्ञानसंपूर्णा मुनयो यावत् पश्यन्ति मोक्षे स्वर्गे पाताले नरके। एतेषु

क्षत्रिय और वैश्यवर्गके गुणोंमें अनुरागशील शूद्रजनोंका निवास था तो दूसरी ओर अनेक देश तथा विदेशोंसे सुपात्र और ज्ञानपिपासु विद्यार्थी भी यहाँ झुण्डके-झुण्ड आ रहे थे। यह नगरी विभिन्न विषयोंके सैकड़ों अधिकारी विद्वानोंसे अलंकृत थी और पुर-वधुओंके मुख-चन्द्रकी ज्योत्स्नासे प्रकाशित वसुधाकी धवल सौधमालासे सुशोभित थी। १५

इस चम्पानगरीमें हेमसेन नामके एक मुनिराज किसी जिनालयमें कठोर तपस्या करते थे। इस प्रकार कठिन तप करते-करते उन्हें बहुत दिन बीत गये और कुछ दिनोंके बाद उनकी मृत्यु-वेला आ पहुँची। जब मुनिराजकी मृत्युका समय अति सन्निकट आ पहुँचा तो समस्त श्रावक वहाँ एकत्रित हो गये और वे अनेक प्रकारके फूल-फल आदिसे उनकी आराधना तथा पूजा करने लगे। २०

संयोगकी बात है, जिस दिन हेमसेन मुनिराज दिवंगत होने जा रहे थे उस दिन उस चैत्यालयमें भगवान्‌की प्रतिमाके सामने एक पका हुआ खरबूजेका फल चढाया हुआ रखा था। खरबूजा इतना पका हुआ था कि उसकी सुगन्ध मुनिराजके पास पहुँची और उनका मन उस फलकी ओर ललचा गया। इस फल-प्राप्तिकी आर्त्त चिन्तामें ही बेचारे मर गये और मरकर तत्क्षण उस फलके अन्दर कीड़ा हो गये। श्रावकोंने मिलकर बड़े उत्सवके साथ मुनिराजका शरीर-संस्कार कर दिया। २५

१०. दूसरे दिन समस्त श्रावक जिनालय पहुँचे और मुनिराज हेमसेनके साथ रहने-वाले चन्द्रसेन आदि मुनियोंसे इस प्रकार पूछने लगे: 'महाराज, मुनिराज हेमसेनने मरणपर्यन्त अत्यन्त दुष्कर तपस्या की थी। कृपया बतलाइए, अब वे किस पर्यायमें विराजमान है?' ३०

मुनिराज अतीत, वर्तमान और भविष्यत्‌के ज्ञाता थे। उन्होंने ध्यान लगाया और

---

१. शुश्रूषा ख०, ङ०। २.–स्नोद्भासिव– च०। ३ महासेनमुनीनामाराधनापूजाम्। ४ 'महोत्सव-पूर्वकं' क०, ग०, घ०, ङ, च० पुस्तकेषु नास्ति। ५.–अन्यदि– ख०। ६ 'ये' ग० पुस्तके नास्ति।

स्थानेषु यदा न तिष्ठन्ति तदा ते विस्मितमानसा बभूवुः। ततो भूयोऽपि यदा पश्यन्ति तदा तत्रैव चैत्यालये [1]सर्वज्ञचरणोपरि पक्वैर्वारुकमध्ये [2]कृमिरूपेण समुत्पन्नाः सन्ति। एवं स्फुटं ज्ञात्वा श्रावकान् प्रत्यभिहितम् – अहो, [3]अस्मिन्नेव चैत्यालये सर्वज्ञचरणोपरि पक्वैर्वारुकमध्ये कृमिरूपेण समुत्पन्नाः सन्ति।

५ एवं तच्छ्रुत्वा तत्क्षणात् तदै(दे)र्वैर्वारुकं भित्त्वा यावदवलोकयन्ति ते तावत् कृमिरूपमस्ति। अथ ते विस्मितचेतसो भूत्वा श्रावकाः पुनरूचुः – भो स्वामिन्, एवमिमै(एभि) र्हेमसेनैर्महोग्रं तपश्चरणं कृतम्। तत्प्रभावादीदृशाया गतेः संभवार्थं किं कारणमिदम्? तदाकर्ण्य चन्द्रसेनमुनयः प्राहुः – अहो, यद्यपि महोग्रं तपश्चरणं क्रियते तथापि ध्यानं बलवत्तरमिति। उक्तं च यतः

१० "आर्त्ते च [4]तिर्यग्गतिमाहु[5]रार्या रौद्रे गति[6] स्यात् खलु नारकी च।
धर्मे भवेद्देव[7]गतिर्नराणां [8]ध्याने च [9]जन्मक्षयमाशु शुक्ले॥२१॥

११. तदाकर्ण्य श्रावकाः प्राहुः – भगवन्, कीदृशमार्त्त[10]ध्यानम्, कीदृशं[11] रौद्रध्यानम्, कीदृशं[12] धर्मध्यानम्? कीदृशं[13] शुक्लध्यानम्? इति सर्वं प्रकटमस्मान् प्रति कथनीयम्।

---

१५ अवधिसे मोक्ष, स्वर्ग और पाताल तथा समस्त संभव स्थानोंमें हेमसेन महाराजकी खोज की, पर वे वहाँ नहीं मिले। चन्द्रसेन आदि समस्त मुनिनाथ बड़े विस्मित हुए। किन्तु जैसे ही उन्होंने पुनः अवधि लगायी तो मालूम हुआ कि हेमसेन महाराज जिन भगवान्के आगे समर्पित किये गये पके खरबूजेमें कीट हुए है। चन्द्रसेन मुनि श्रावकोंसे कहने लगे : "भाइयो, आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि हेमसेन मुनिराज इसी मन्दिरमें जिनेन्द्र २० भगवान्के आगे रखे हुए खरबूजेमें कीट पर्यायसे उत्पन्न हुए है।'

मुनि चन्द्रसेनकी बात सुनकर श्रावक उस खरबूजेको भगवान्के सामनेसे उठा लाये और उसे फोड़कर देखा तो उसमें उन्हें एक कीड़ा दिखलाई दिया।

इस घटनासे श्रावकोंको बड़ा विस्मय हुआ। वे चन्द्रसेन मुनिसे पूछने लगे : महाराज, हेमसेन मुनिराजने जीवन-भर उग्र तपस्या की। फिर उन्हें इस प्रकारके कीट पर्यायमें क्यों २५ जन्म लेना पड़ा? महर्षि चन्द्रसेन कहने लगे : यद्यपि उग्र तपस्या एक महान् वस्तु है। लेकिन उससे अधिक बलवत्तर है ध्यान–एकाग्र चिन्ता-निरोध। आगममें कहा है :

"आर्तध्यानसे पशु पर्याय मिलती है और रौद्रध्यानसे नरकगति। धर्म ध्यानसे देवगति प्राप्त होती है और शुक्लध्यानसे मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेते है।"

११. चन्द्रसेनकी बात सुनकर श्रावक कहने लगे : महाराज, आप हम लोगोंको

---

१ जिनच– क०, ख०, ग०, घ०। २ अत पूर्वं 'हेमसेनमुनय' इत्यध्याहार्यम्। ३. एवंविधि घ०, च०। ४ तुलना–"अनन्तदुःखसंकीर्णमस्य तिर्यग्गतेः फलम्।"–ज्ञाना० २५।४२। ५ –राद्या क०, ग०, घ०। ६. तुलना–" ' 'श्वभ्रपातफलाङ्कितम्।"–ज्ञाना० २६।३६। ७ तुलना–"संभवन्त्यथ कल्पेषु" ''''।" –ज्ञाना० ४१।२०। ८. ध्यानेन ज–ग०। ९ तुलना–" ' जन्मजानेकदुर्वारबन्धव्यसनविच्युतः॥"–ज्ञाना० ४२।५५। १०–मार्त्तं की–ख०, च०। ११. किं रौद्रम् ख०, च०। १२. किं धर्मम् ख०, च०। १३ किं शुक्लम् ख०, चं०।

अथ ते ध्यानचतुष्कस्य निदर्शनं तान् प्रति निवेदयन्ति स्म। तद्यथा

वसनशयनयोषिद्रत्नराज्योपभोग-
[2]प्रवरकुसुमगन्धानेकसद्भूषणानि।
सदुपकरणमन्यद्वाहनान्यासनानि
सततमिति[3] य इच्छेद् ध्यानमार्त्तं तदुक्तम्॥९॥

[4]गगनवनधरित्रीचारिणां देहभाजां
दलनदहनबन्धच्छेदघातेषु यत्नम्।
इति [5]नखकरनेत्रोत्पाटने कौतुकं यत्
तदिह गदितमुच्चैश्चेतसां रौद्रमित्थम्[6]॥१०॥

दहनहननबन्धच्छेदनैस्ताडनैश्च
प्रभृतिभिरिह यस्योपैति तोषं मनश्च।
व्यसनमति सदाऽघे, नानुकम्पा कदाचि-
न्मुनय इह तदाहुर्ध्यानमेवं हि रौद्रम्[7]॥११॥

[8]श्रुतसु[9]रगुरुभक्तिः सर्वभूतानुकम्पा
स्तवननियमदानेष्वस्ति यस्यानुरागः।
मनसि न परनिन्दा त्विन्द्रियाणां प्रशान्तिः
कथितमिह हितज्ञैर्ध्यानमेवं हि धर्म्यम्॥१२॥

विस्तारसे बतलाइए कि आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यानसे आपका क्या आशय है और इनका क्या स्वरूप है?

चन्द्रसेन चारों ध्यानका स्वरूप समझाने लगे :

"जो व्यक्ति सदा वस्त्र, शय्या, स्त्री, रत्न, राज्य, भोगोपभोग, उत्तमोत्तम पुष्प, सुगन्धित द्रव्य, विविध आभूषण, सुन्दर उपकरण, प्रशस्त सवारी और मृदुल आसन आदि प्राप्त करनेकी सदैव इच्छा करता रहता है उसका ध्यान आर्त्तध्यान कहलाता है।" और

"जिसका प्रयत्न सदैव नभचर, जलचर और थलचर प्राणियोंको पीस डालनेमें, मार डालनेमें, बाँध देनेमें, छेदन करनेमें और घात करनेमें रहता है तथा जो व्यक्ति इन प्राणियोंके नाखून, हाथ और नेत्र आदिके भङ्ग करनेमें कौतुक रखते है उनका चिन्तन रौद्रध्यान कहलाता है।" तथा

"जिस व्यक्तिका मन निरन्तर जलाने, मारने, बाँधने, छेदने और ताड़न करने आदिमें ही निमग्न रहता है, पापमें जो तन्मय रहता है और दया जिसे छू नहीं गयी है उस व्यक्तिका ध्यान रौद्रध्यान समझना चाहिए।" और

"जो मनुष्य निरन्तर देव, शास्त्र और गुरुकी भक्ति करता है, समस्त जीवधारियोंपर दया करता है, स्तुति, नियम और त्यागमें अनुरागवान् है, जो परनिन्दा नहीं करता तथा

---

१ व्यसनश–ग०। २ प्रचुरकु–ग०। ३ –मति य–च०। –मपि य–ख०। ४ पद्यमिद सम्पूर्णं क०, ग०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति। ५. नखकरपदने–ङ०। ६ ज्ञाना० २६।८। ७ तुलना–"अनारत निष्करुण-स्वभाव. स्वभावत क्रोधकषायदीप्त। मदोद्धत. पापमति. कुशीलः स्यान्नास्तिको य स हि रौद्रधामा॥"–ज्ञाना० २६।५। ८. सुरश्रुतगु–क०, घ०, ङ०, च०। ९ जिनगु–ग०।

खलु[1] विषयविरक्तानीन्द्रियाणीति यस्य
सततममलरूपे निर्विकल्पेऽव्यये यः।
परमहृदयशुद्धध्यानतल्लीनचेता
यतय इति वदन्ति ध्यानमेवं हि शुक्लम् ॥१३॥

५ तदवश्यं यादृशं ध्यानमन्तकाले चोत्पद्यते तादृशी गतिर्भवति[2]। अन्यच्च
मरणे या मतिर्यस्य सा गतिर्भवति ध्रुवम्।
यथाऽभूज्जिनदत्ताख्यः स्वाङ्ग[3]नार्त्तेन दर्दुरः ॥१४॥

अथ ते श्रावका प्रोचुः—भगवन्, कथमेतत्? ते मुनय प्रोचुः

१२. [4]अस्ति कस्मिश्चित् प्रदेशे राजगृहं नाम नगरम्। तत्र[5] च जिनचरणयुगल-
१० विमलकमलपरमशिवसुखरसास्वाद[6]नलीनमत्तमधुकरजिनदत्तश्रेष्ठिनामा श्रावकः प्रति-
वसति स्म। तस्यैका प्राणप्रिया स्वरूपनिर्जितसुरेशाङ्गनेत्याद्यनेकापूर्वरूपा जिनदत्ताख्या भार्या तिष्ठति। एवं तस्य सागारधर्मक्रियावर्त्तमानस्य जिनदत्तस्य कतिपयैरहोभिरन्त-
कालः प्राप्तः। ततोऽनन्तरं यावत् तस्य प्राणनिर्गमनकालो वर्त्तते, तावत् तस्मिन्नवसरे निजललनाद्भुतलावण्यमवलोक्यार्त्तव्याप्तः[7] सन्नेवंविधमवोचत्। तद्यथा

---

१५ इन्द्रियाँ जिसके वशवर्त्ती है, उस पुरुषका ध्यान धर्मध्यान कहलाता है। तथा-

"जिसकी इन्द्रियाँ सम्पूर्ण विषय-वासनाओसे विरत हो गयी है. जो निरन्तर शुद्ध, निर्विकल्पक और अविनश्वर पदकी ओर उन्मुख है और जिसका पवित्र मन शुद्ध आत्म-ध्यानमें तन्मय है, उस पुरुषका ध्यान शुक्लध्यान कहलाता है।"

मुनिराज चन्द्रसेन कहते गये : श्रावको, इसलिए यह सुनिश्चित है कि प्राणान्त समय
२० प्राणीका जिस प्रकारका ध्यान रहता है, उसे उसी प्रकारका गति-बन्ध हुआ करता है।

आगममें भी इस बातका समर्थन मिलता है :

"मरण समयमें जिसकी जैसी मति होती है उसकी गति भी निश्चयसे उसी कोटिकी होती है। जिस प्रकार जिनदत्त अपने स्त्री-सम्बन्धी आर्तध्यानके कारण मेंढक हुआ।"

श्रावकोंने कहा : भगवन्, यह घटना किस प्रकारकी है? मुनिराज कहने लगे :

२५ १२. किसी प्रदेशमें राजगृह नामका नगर था। उसमें जिनदत्त सेठ नामका एक श्रावक रहता था। जिनदत्त जिनेन्द्र भगवान्के चरण-कमलरूपी परम मोक्ष-सुखके रसा-स्वादमें मत्त मधुकरके समान था। जिनदत्तकी स्त्रीका नाम जिनदत्ता था। जिनदत्ताका सौन्दर्य इन्द्राणीके सौन्दर्यसे भी अधिक मनोहर था। यह दोनों प्राणी बडे आनन्दसे गृहस्थ-जीवन बिता रहे थे। एक दिन अचानक जिनदत्तका अन्तकाल आ उपस्थित हुआ
३० और ज्यों ही उसके प्राण निकलने लगे उसकी नजर अपनी रमणीके रमणीय लावण्यकी ओर सतृष्ण हो गयीं और वह आन्तरिक व्यथाके साथ इस प्रकार विचार करने लगा :

---

१. तुलना—"निष्क्रिय करुणातीत ध्यानधारणवर्जितम्। अन्तर्मुख च यच्चित्तं तच्छुक्लमिति पठ्यते ॥" —ज्ञाना० ४२।२। २. भवेत् च०। ३ स्वाङ्गना—ग०। ४ 'अस्ति' च० पुस्तके नास्ति। ५. तत्र जि—ख०, ङ०। ६ स्वादेन ली—ङ०। —स्वादने ली—क०। ७ व्याप्त एव— ख०, ग०, ङ०।

[1]किमिह बहुभिरुक्तैर्युक्तिशून्यैः प्रलापै-
द्वयमिह पुरुषाणां सर्वदा सेवनीयम् ।
अभिनवमदलीलालालसं सुन्दरीणां
[2]स्तनतटपरिपूर्णं यौवनं वा वनं वा ॥ १५ ॥

एषा स्त्रीषु मनोहराऽतिसुगुणा संसारसौख्यप्रदा
वाङ्माधुर्ययुता विलासचतुरा भोक्तुं न लब्धा मया ।
दैवं हि प्रतिकूलतां गतमलं धिग् जन्म मेऽस्मिन्भवे
यत्पूर्वं खलु दुस्तरं [3]कृतमघं दृष्टं मयैतद्[4] ध्रुवम् ॥ १६ ॥

तथा च
असारे खलु संसारे सारं शीतांशु[5] चन्द्रमाः ।
चन्दनं मालतीमाला बालाहेलावलोकनम्[6][7] ॥ १७ ॥

एवं जल्पन् महाज्वरसंतप्ताङ्गः स्वाङ्गनार्त्तध्यानात्[8] पञ्चत्वमवाप । तत्क्षणात्[9] स्वगृहाङ्गणवाप्यां दर्दुरोऽजनि ।

१३. ततोऽनन्तरं तस्य भार्या कतिपयैर्दिनैस्तस्यामेव वाप्यां पानीयमानयनार्थं यावद् गता तावत् तां दृष्ट्वा पूर्वभवसंस्मरणात्[10] तस्याः संमुखो धावन्नागतः । अथ सा

"युक्तिशून्य सैकड़ों प्रलापोंमें कोई सार नहीं है । पुरुषोंके उपभोगकी संसारमें दो ही वस्तुएँ है । एक तो प्राथमिक मद-क्रीड़ाओंसे अलस और स्तन-तटपरिपूर्ण सुन्दरियोंका यौवन और दूसरा वन ।"

उसके चिन्तनकी धारा यहाँ आकर ही न रुकी । वह आगे सोचने लगा :

"यह जिनदत्ता समस्त स्त्री-सृष्टिमें मनोहर है । गुणवती है । संसारके सुखको देनेवाली है । मधुरभाषिणी है और विलासमें चतुर है । फिर भी मैं इसका भोग नहीं कर सका । मेरा भाग्य प्रतिकूल हो गया है । मुझे धिक्कार है कि मैंने यह पर्याय व्यर्थ ही खो दी ! मैंने पूर्वजन्ममें जो दुस्तर पाप किये थे अब उन्हींका परिणाम अनुभव कर रहा हूँ ।" और भी

"इस असार संसारमें शीतरश्मि चन्द्रमा, चन्दन, मालती-माला और रमणीका सविलास अवलोकन — यही तो सारभूत है ।"

इस प्रकार अपनी स्त्रीके आर्तध्यानसे पीडित जिनदत्तको महान् ज्वर हो आया और अन्तमें वह मर गया । मरकर वह तुरन्त अपने घरके आँगनकी बावडीमें मेंढक हो गया ।

१३ कुछ दिनोंके बाद जिनदत्तकी पत्नी जिनदत्ता पानी भरनेके लिए उस बावडीपर पहुँची । जिनदत्ताको देखकर उस मेंढकको पूर्व भवका स्मरण हो आया और वह दौड़कर जिनदत्ताके सामने आ उछला । जिनदत्ता मेंढकको उछलकर सामने आते हुए देख

---

१. पद्यमिद क०, ख०, ग०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति । २ " "स्तनभरपरिखिन्न " ॥" —सुभाषितत्रि० २।३९ । ३ तनम—ख० । ४ मया तद्गुनम् ग० । ५ शीतांशु च० । ६. हेलालीलाद— ग० । ७ —वगाहनम् ख० । ८ जिनदत्त. । ९ —णाच्च गृ —च० । १०. 'स जिनदत्त' इत्यध्याहार्यम् ।

तद्दर्शनभयभीता सती शीघ्रं गृहाभ्यन्तरं विवेश। एवं यदा[1] यदा सा स्त्री प्रतिदिनं तद्वाप्यां गच्छति तदा तदा स[2] संमुखो धावन्नागच्छति। एवं प्रकारेण भूरि दिनानि गतानि।

ततः कतिपयैर्दिवसैस्तन्नगरबाह्यप्रदेशस्थोद्यानवने केचित् सुभद्राचार्यनामानो ५ मुनयो मुनिशतपञ्चकसमेता विहारकर्म कुर्वन्तश्चाजग्मुः। अथ तेषामागमनमात्रेण तद्वनं सुशोभितं जातम्। तद्यथा

शुष्काशोककदम्बचूत[3]वकुलाः खर्जूरकादिद्रुमा
जाताः पुष्पफलप्रपल्लवयुताः शाखोपशाखान्विताः।
शुष्काब्जाकरवापिकाप्रभृतयो जाताः पयःपूरिताः
१० क्रीडन्ति स्म सुराजहंसशिखिनश्चक्रुः स्वरं कोकिलाः॥ १८॥
जातीचम्पकपारिजातकजपासत्केतकीमल्लिकाः
पद्मिन्यः प्रमुखाः क्षणाद्विकसिताः प्रापुर्मधूपास्ततः।
[4]कुर्वन्तो मधुरस्वरं सुललितं तद्गन्धमाघ्राय ते
गायन्तीव हि गायकाः स्युरपरे (स्वरपरा) भातीदृशं तद्वनम्॥१९॥

१५ एवं तद्वनं फलकु[5]सुमविराजमानमवलोक्य वनपालको विस्मितमना मनसि चिन्तयामास–केन कारणेनेदं वनं सहसा सुशोभितं संजातम्। तत्किमेषां मुनीनामाग-

डर गयी और अपने घरके भीतर घुस गयी। इस प्रकार जब-जब जिनदत्ता पानी भरनेके लिए उस बावड़ीपर पहुँचती, वह मेंढक उछलकर उसके सामने आता। इस तरह बहुत दिन निकल गये।

२० एक बार सुभद्राचार्य नामके मुनिराज पाँच सौ मुनियोंके साथ विहार करते हुए राजगृहके बाहरी उद्यानमें आये। उनके आने मात्रसे वह उद्यान इस प्रकार हरा-भरा हो आया :

"सूखे अशोक, कदम्ब, आम, बकुल और खजूरके वृक्षोंमें शाखाएँ फूट आयीं। उनमें लाल-लाल पल्लव, सुगन्धित फूल और सुन्दर फल लग आये। सूखे तालाब, बावड़ी २५ और कुँए पानीसे लहराने लगे। उनमें राजहंस और मोर क्रीडा करने लगे तथा कोकिलाएँ पंचम स्वरमें काकली सुनाने लगीं।

जो जाती, चम्पक, पारिजात, जपा, केतकी, मालती तथा कमल मुरझाये हुए थे वे सब तत्क्षण विकसित हो गये। इनकी सुगन्धि और रसके लोभी मधुकर इनपर मधुर गुञ्जन करने लगे और रस तथा गन्धपानमें निरत हो गये। गायक भी इधर-उधर श्रुतिमधुर ३० गीत गाने लगे।"

वनपाल उद्यानको इस प्रकार फूला-फला तथा इसकी अकस्मात् उत्पन्न हुई स्वाभाविक सुषमा देखकर बड़ा विस्मित हुआ। वह सोचने लगा : कुछ समझमें नहीं आ

१ 'यदा यदा' ख० पुस्तके नास्ति। २. 'स' घ०, च० पुस्तकयोर्नास्ति। ३ –तकुला ग०। ४ कुर्वन्त क०, च०। ५ 'फलकुसुम–' इत्याद्यादारभ्य 'केन कारणेनेद वनम्' इति पर्यन्त पाठ क०, ग०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति।

मनप्रभावात्? किंवा [1]किंचिदरिष्टमस्य क्षेत्रस्य भविष्यत्येवं न विज्ञायते मया। तदह-मेतानि फलानि [2]राज्ञो दर्शनकरणार्थं नेष्यामि। एवं चिन्तयित्वा नानाविधफलानि गृहीत्वा तत्पुरनराधिराजदर्शनार्थमुत्सुकत्वेन [3]ययौ। अथ नृपसकाशमागत्य प्रणामं कृत्वा तस्या-कालोद्भवफलानां दर्शनमचीकरत्।

अथ तान्यकालफलानि समालोक्य विस्मितचेता नरपतिरवोचत्–अरे वनपालक, किमेतानि फलान्यकाले? तदाकर्ण्य स चाह[4]–भो देव, किमाश्चर्यं कथयामि। केचिन्मु-नीश्वरा मुनिशतपञ्चकसमेता अस्मद्वनमागताः। तत्क्षणात् तेषामागमनमात्रेण तद्वनं सहसा फलकुसुमविराजमानं मनोहरं संजातमिति। ५

१४ [5]एवं तद्वचनमात्रश्रवणात् सिंहासनादु[6]त्थाय सप्तपदानि त[7]द्दिशि [प्र-][8]चङ्क्रम्य परमभावेन प्रणामं कृत्वा स राजा सान्तःपुरः सपरिवारो वन्दनार्थं [9]चचाल। अथ तद्वार्त्तामाकर्ण्य तत्पुरनिवासिनः सर्वे श्रावकजना जिनदत्तभार्यादिप्रभृताः[10]श्रावकाङ्गनाः परमभक्त्या वन्दनार्थं निर्ययुः। ततो मुनिसकाशं संप्राप्य त्रिःपरीत्य गुरुभक्तिपूर्वकं प्रणम्य सर्वे तत्रोपविविशुः। अथ तत्रैके वैराग्यपरां दीक्षां पार्थयन्ति स्म। [11]एके धर्मभाक- १०

रहा है, क्या मुनियोंके आगमनके प्रभावसे वह उद्यान इस तरह हरा-भरा हो गया है अथवा इस क्षेत्रका कोई कल्याण होने जा रहा है? वह सोचता है–इस समय मुझे इन फलोंको राजाके पास दिखलाने ले जाना चाहिए। इस तरह सोच-विचारके बाद वह उद्यानके विविध फलोंको लेकर उत्सुकताके साथ राजाकी सेवामें जा पहुँचा। १५

राजाके पास पहुँचकर उसने उन्हें प्रणाम किया और असमयमें फले हुए वे सब फल उनके सामने रख दिये। राजा इन फलोंको देखकर आश्चर्यमें पड गया। वह वनपालसे कहने लगा: अरे वनपाल, यह फल बिना मौसमके कहाँसे आ गये? वनपालने कहा: महाराज, मै ठीक नहीं कह सकता, यह आश्चर्यपूर्ण घटना कैसे घटी? हाँ, पाँच सौ मुनियोंके सघसहित कोई मुनिराज अपने उद्यानमें अवश्य आये है। और मेरा ध्यान है कि उनके आनेके साथ ही उद्यान तत्काल फल और फूलोसे मनोहर और अलंकृत हो गया। २०

१४. जैसे ही राजाने वनपालके मुखसे मुनियोंके आगमनका समाचार सुना वह तत्काल सिंहासनसे उठ बैठा और उस दिशामें सात कदम आगे चलकर मुनिराजोंको भाव-पूर्वक नमस्कार किया। इसके पश्चात् वह अन्त पुर और अपने परिकरके साथ मुनि-वन्दना-के लिए चल पडा। जब पुरवासियोंको पता चला कि राजा मुनि-वन्दनाके लिए जा रहे है तो पुरवासी समस्त श्रावक और जिनदत्ताप्रमुख श्राविकाएँ भी भक्तिसे गद्गद होकर मुनि-दर्शनके लिए चल दीं। २५

मुनियोंके निकट पहुँचते ही सबने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। तीन प्रदक्षिणा की और नमस्कार करके यथास्थान बैठ गये। उपस्थित श्रावक-श्राविकाओंमें-से कोई विराग- ३०

१ अरिष्टं शुभम्। "अरिष्टे तु शुभाशुभे" इत्यमर। २ राज्ञी क०, ग०, च०। ३ आययौ ख०, ग०, घ०, ङ०। ४. चावदत् ग०। उवाच क०। ५. एव वचन–ख०, ङ, च०। ६ समुत्थाय च०। ७ तद्दिश क०, ख०, ग०, घ०, च०। ८ गत्वेत्यर्थ.। ९ प्रचचाल क०, ख०, ग०, ङ०। १० श्रावकजनाः ख०। ११ वाक्यमिद ख०, ग० पुस्तकयोर्नास्ति।

र्णयन्ति स्म। एके गद्यपद्यस्तुतिवचनैः स्तुतिं चक्रिरे। एके तान् मुनीनवलोक्य 'अद्य वयं धन्या' एव मनसि दध्रिरे। एके स्वातीतानागतभवपृच्छां कुर्वन्ति स्म[1]। एवं यावत् तत्र [2]लोकमहोत्सवो वर्त्तते तावत् तस्मिन्नवसरे सा जिनदत्ताङ्गना [3]संमुखं स्थित्वा प्रणम्योवाच – भगवन्, अस्मद्भर्त्तुर्जिनदत्तस्य कीदृशी गतिः संजाता, [4]तत् कथनीयं भवद्भिः।
५ तच्छ्रुत्वा ते ज्ञानदृष्ट्या विलुलोकिरे। ततः प्रोचुः – हे पुत्रि, किं कथ्यते ? [5]कथनं योग्य न भवति। ततः साऽब्रवीत् – भो भगवन्, [6]किमस्मिन् भवद्भिः शङ्का [7]कर्त्तव्या ? यतोऽस्मिन् संसारे उत्तमो जीवोऽप्यधमः स्यादधमोऽप्युत्तमः स्यात्। अथ ते प्राहुः – हे पुत्रि, यद्येवं तत्तव भर्त्ता स्वगृहाङ्गणवाप्यां दर्दुरो भूत्वाऽऽस्ते।

१५. तदाकर्ण्य [8]सा विस्मितमनसा चिन्तयामास – अवश्यमिदं सत्यम्। यतस्त-
१० द्वाप्यां प्रतिदिनं मम संमुखो धावन्नागच्छति यो दर्दुरः स एव मम भर्त्ता भवति। यतो नान्यथा मुनिभाषितमिति। एवं चिन्तयित्वा भूयोऽपि मुनिं पप्रच्छ। तद्यथा

वशीकृतेन्द्रियग्रामः कृतज्ञो विनयान्वितः।
निष्कषायः प्रसन्नात्मा सम्यग्दृष्टिर्महाशुचिः॥ २०॥

दीक्षाकी प्रार्थना करने लगे। कोई धर्म-चर्चा सुनने लगे। कोई गद्य-पद्यमय स्तवनोंसे स्तुति
१५ करने लगे। कोई मुनिदर्शन कर अपनेको धन्य-धन्य कहने लगे। कोई अपने अतीत भव पूछने लगे।

वहाँ इस प्रकार जन-समूह आनन्द लाभ ले ही रहा था कि ऐसे समय जिनदत्ताने मुनिराजको प्रणाम किया और कहने लगी : महाराज, कृपाकर बताइए, हमारे स्वामी जिनदत्त किस पर्यायमें पहुँचे है ?

२० मुनिराज अवधि जोड़कर कहने लगे : हे पुत्रि, क्या बतावें ? कुछ कहते नहीं बनता।

जिनदत्ता कहने लगी – महाराज, इस सम्बन्धमें आप बिलकुल शंका न करें। क्योंकि ससारमें परिणामोंके वश उत्तम जीव भी अधम हो जाता है और अधम भी उत्तम हो जाता है।

मुनिराजने कहा : पुत्रि, यदि तुम्हारी ऐसी समझ है, तो यह जानो कि तुम्हारा पति
२५ तुम्हारे घरके आँगनकी बावड़ीमें मेंढक हुआ है।

१५. मुनिराजकी बात सुनकर उसे बड़ा विस्मय हुआ। वह सोचने लगी, मुनिराजका कथन अवश्य ही सत्य है। क्योंकि उस बावडीमें प्रतिदिन जो मेंढक उछलकर मेरे सामने आता है, वही मेरे पति होने चाहिए। मुनिराज कदापि मिथ्या नहीं कह सकते। इस प्रकार सोचकर वह पुनः मुनिराजसे बोली : "महाराज, मेरे पतिदेव जितेन्द्रिय थे,
३० कृतज्ञ थे, विनीत थे, मन्दकषायी थे, प्रसन्नात्मा थे, सम्यग्दृष्टि थे और महान् पवित्र थे।

---

१ 'स्म' क०, पुस्तके नास्ति। २ लोके म- ग०। ३ सुख स्थि–घ०, च०। ४ कथनीया भ– घ०, च०। ५ कथनयोग्य न–क०, ख०, ग०, घ०, ङ०। ६ किमप्यस्मिन् विषये भवद्भि शङ्का न कर्त्तव्या ख०। ७ क्रियते क०। न कर्त्तव्या ङ०। ८. सविस्मितम–क०, ग०, च०। इत पूर्व 'श्रावकाचार-सयुक्तो निजश्लाघापरान्वित' इत्यधिकः पाठ. ङ०पुस्तके।

श्रद्धालुर्भावसंपन्नो नित्यषट्कर्मतत्परः।
व्रतशीलतपोदानजिनपूजासमुद्यतः ॥ २१ ॥
[1]नवनीतसुरामांसैर्मधू[2]दुम्बरपञ्चकैः।
[3]अनन्तकायकाज्ञातफलैर्[4]निशिभोजनैः ॥ २२ ॥ ५
[6]आमगोरससंपृक्तैर्द्विदलैः पुष्पितो(तौ) दनैः।
दध्यहर्द्वितयातीतप्रमुखैरुज्झितोऽशनैः ॥ ॥ २३ ॥ (युग्मम्)
पञ्चाणुव्रतसंयुक्तः पापभीरु[7]र्दयान्वितः।
एवंविधश्च मे भर्त्ता भेकोऽभूत् स कथं प्रभो ॥ २४ ॥ (कुलकम्)

तच्छ्रुत्वा मुनयः प्रोचुः–हे पुत्रि, युक्तमिदमुक्तं भवत्या। परंतु यद्यपि जीवस्य परमश्रावकगुणाः सन्ति, तथाप्यन्तकाले [8]यादृशी [9]बुद्धिरुत्पद्यते तादृशी गतिर्भवति। १०

१६ अथ सा प्रोवाच–भो भगवन्, तन्मे नाथस्यान्तकाले कीदृशो भावः समुत्पन्नः ? अथ ते ब्रुवन्ति स्म–हे पुत्रि, स जिनदत्तो महाज्वरसंपीडितोऽन्तकाले तवैव वार्त्तेन(र्त्तया)मृत्वा निजगृहाङ्गणवाप्यां दर्दुरोऽभूत्। ततः साऽब्रवीत्–हे स्वामिन्, यद्येवमन्तकाले[10] भावः प्रमाणं तत्किं श्रावकाणा सागारधर्माचरणं व्यर्थम् ? तदाकर्ण्य

वे श्रद्धालु थे, भावुक थे, निरन्तर षट्कर्मपरायण थे। व्रत, शील, तप, दान और जिनपूजा- १५
में उद्यत रहते थे। मक्खन, मद्य, मांस, मधु, पाँच उदुम्बर फल, अनन्तकाय, अज्ञात फल, निशि भोजन, कच्चे गोरसमें मिश्रित द्विदलभोजन, पुष्पित चावल और दो आदि दिनके सिद्ध हुए भोजनके त्यागी थे। पाँच अणुव्रतोंका पालन करते थे। पापसे डरते थे और दयालु थे। इस प्रकार व्रती-तपस्वी भी मेरे पति मरकर मेंढक हुए। महाराज, आप बतलाइए, इसका क्या कारण है ? २०

मुनिराज कहने लगे : पुत्रि, तुम ठीक कहती हो। पर बात यह है कि भले ही किसी व्यक्तिमें समस्त श्रावकोचित गुणोंका सद्भाव हो, परन्तु मृत्युके समय उसके जिस प्रकारके परिणाम रहते हैं उसी कोटिका गतिबन्ध हुआ करता है।

१६. मुनिराजकी बात सुनकर जिनदत्ता फिर प्रश्न करने लगी। उसने पूछा : महाराज, अन्त समय मेरे पतिके मनमें क्या भाव उदित हुआ था ? मुनिराज कहने लगे : २५
पुत्रि, जिनदत्त अपने अन्तिम समयमें महान् ज्वरसे पीडित हुआ और तुम्हारा इष्ट वियोगजन्य आर्तध्यान करते-करते ही उसका प्राण-पखेरू उड़ गया। इस कारण ही वह तुम्हारे आँगनकी बावडीमें मेंढक पर्यायमें उत्पन्न हुआ है।

---

१ "मधुवन्नवनीतं च मुञ्चेत्तत्रापि भूरिशः। द्विमुहूर्त्तात् परं शश्वत्संसजन्त्यङ्गिराशयः ॥"–सागारध० २।१२। २ "पिप्पलोदुम्बरप्लक्षवटफल्गुफलान्यदन्। हन्त्यार्द्राणि त्रसान् शुष्काण्यपि स्वं रागयोगतः ॥" –सागारध० २।१३। ३. अनन्तैर्जीवैरुपलक्षितः कायो येषां ते तथोक्ताः, त एवानन्तकायका मूलादिप्रभवा वनस्पतिकायिकाः। "अनन्तकायाः सर्वेऽपि सदा हेया दयापरैः।"–सागारध० ५।१७। ४ "सर्वं फलमविज्ञातं वार्ताकाद्यविदारितं तद्वद्भल्लादिसिम्बीश्च खादेन्नोदुम्बरव्रती ॥" –सागारध० ३।१४। ५ "रागजीववधापायभूयस्त्वात्तद्वदुत्सृजेत्। रात्रिभक्तं तथा ...॥" –सागारध० २।१४। ६ "आमगोरससंपृक्तं द्विदलं प्रायशोऽनवम्। वर्षास्वदलितं चात्र पत्रशाकं च नाहरेत् ॥"–सागारध० ५।१८। ७ भीतिर्द– च०। ८. यादृशो–ख०, ङ। ९. भाव –ख०, ङ०। १० –कालभावप्रमाण क०, घ०, च०।

ते मुनयो विहस्य प्रोचुः–हे पुत्रि, न भवत्येवम् । न भावो व्यर्थो न वाऽऽचरणम् । तच्छृणु । यस्य हि जीवस्य शुभधर्माचरणवर्त्तमानस्याप्यन्तकाले[1] यदि कथमप्यशुभो भावः समुत्पद्यते, ततस्तद्भाववशात् तादृशीं गतिं प्राप्नोति । ततः स्वल्पतरं भुक्त्वा पश्चाच्छुभगतिं लभते । यतः स्थितिच्छेदोऽस्ति परं गतिच्छेदो नास्ति । अत एव नोभयं व्यर्थम् ।
५ तत्तव भर्त्ताऽसौ[2] जिनदत्तः कतिपयैर्दिवसैर्दर्दुरत्वे निवृत्ते देवगति प्राप्स्यति । एवं मुनिवचनं श्रुत्वा मुनिं प्रणम्य सा[3] जिनदत्ता[4] स्वगृहमाययौ[5] । अतो[6] वयं ब्रूमः

मरणे या मतिर्यस्य सा गतिर्भवति ध्रुवम् ।
यथाऽभूज्जिनदत्ताख्यः स्वाङ्गनार्त्तेन दर्दुरः ॥२५॥

एवमुक्त्वा तस्य कृमिरूपस्य पञ्चनमस्कारान् ददौ । ततः[7] शीघ्रं षोडशे[8] स्वर्गे
१० देवोऽजनि । अतोऽहं ब्रवीमि

मुनिराजका उत्तर सुनकर जिनदत्ताने फिर पूछा : महाराज, जब अन्त समयके भावोंके अनुसार ही गतिबन्ध होता है तो श्रावकोंको गृहस्थधर्मका पालन करना व्यर्थ ही है – वे जीवन-भर गृहस्थधर्मकी साधनामें न झुलसकर क्यों न अन्त समय ही अपने परिणामोंको विशुद्ध रखकर सद्गतिका लाभ करें ? जिनदत्ताकी बात सुनकर मुनिराज मन्दस्मितपूर्वक कहने
१५ लगे : पुत्रि, यह बात नहीं है । न भाव व्यर्थ है और न ही जीवनकी आचरण-साधना । सुनो : जो जीव जीवन-भर शुभ धर्माचरण करता रहता है और अन्त-समय कदाचित् उसके मनमें अशुभभाव आता है तो उस अशुभभावके कारण उसे अशुभ गतिमें ही जन्म लेना पड़ता है । वहाँ थोड़े समय तक कर्मफल भोगनेके पश्चात् उसे शुभगति मिल जाती है । क्योंकि बँधी हुई गतिकी स्थितिमें तो अन्तर हो जाता है, लेकिन मूलगतिमें अन्तर नहीं
२० आता । इसलिए न अन्त समयके भाव ही व्यर्थ है और न जीवनकी सदाचार-साधना ही । तुम्हारा पति भी कुछ ही दिनमें मेंढक पर्याय छोड़कर देव हो जायेगा ।

इस प्रकार मुनिराजका कथन सुनकर जिनदत्ताने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और वह अपने घर चली आयी ।

मुनिराज चन्द्रसेन कहने लगे, मैंने इसीलिए कहा है :

२५ "मरणके समय जिसके जैसे परिणाम होते है उसके अनुसार ही गति-बन्ध हुआ करता है । जिस प्रकार जिनदत्त अपनी स्त्रीके आर्तध्यानके कारण मेंढक हुआ ।"

इस प्रकार कथा सुनाकर मुनिराजने उस ककड़ीके कीटको पञ्चनमस्कार मन्त्र सुनाया और वह मरकर सोलहवें स्वर्गमें देवरूपसे उत्पन्न हो गया ।

रति मकरध्वजसे कहने लगी : देव, मै इसीलिए कहती हूँ :

---

१. –मानेऽप्यन्तका–ग० । २. स जि–ग०, ङ० । ३. 'सा' ग० पुस्तके नास्ति । ४. 'जिनदत्ता' ख० पुस्तके नास्ति । ५. गृहम् ख० । ६. वाक्यमिदं च० पुस्तके नास्ति । ७. अत्र 'स' इत्यध्याहार्यम् । ८. षोडशमे स्व–क०, ख०, ग०, घ०, ङ० ।

व्यर्थमार्त्तं न कर्त्तव्यमार्त्तात्तिर्यग्गतिर्भवेत्।
यथाऽभूद्धेमसेनाख्यः पक्वे चैर्वारुके कृमिः ॥ २६ ॥

१७. एवं श्रुत्वा महाकोपं गत्वा कामः प्रोवाच–हे दुश्चारिणि, किमनेन प्रपञ्चोक्तेन? यत्त्वया रचितमस्ति तत्सर्वं मया ज्ञातम्। शोकेनानेन मां हत्वा त्वयाऽन्यो[1] भर्त्ता हृदि [2]चिन्तितोऽस्ति। यतः स्त्रीणामेकतो रतिर्नास्ति। उक्तं च यतः 5

"जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमा।
हृद्गत चिन्तयन्त्यन्य न[3] स्त्रीणामेकतो रति ॥ २२ ॥
[4]नाग्निस्तृप्यति[5]काष्ठानां नापगाना महोदधिः।
नान्तक सर्वभूतानां न पुं सा वामलोचना ॥ २३ ॥
[6]वञ्चकत्व नृशंसत्व चञ्चलत्व कुशीलता। 10
इति नैसर्गिका दोषा यासा ताः सुखदा कथम् ॥ २४ ॥"

[7]तथा च

"वाचि चान्यन्मनस्यन्यत् क्रियायामन्यदेव हि।
यासां [8]साधारणं स्त्रीणां ता. कथ सुखहेतव ॥ २५ ॥"

"निष्प्रयोजन आर्त्तध्यान नहीं करना चाहिए। क्योंकि आर्त्तध्यानके कारण पशु- 15 पर्यायमें जन्म लेना पडता है। जिस प्रकार आर्त्तध्यान करनेसे हेमसेन मुनि पके हुए खरबूजाके कीडा बने।"

१७ रतिके मुखसे यह विवरण सुनकर कामको बड़ा क्रोध आया और वह कहने लगा : अरी दुश्चरित्रे, अधिक क्यों बक रही है? जो प्रपंच तूने तैयार किया है उसे मै खूब समझता हूँ। इस शोकमें मुझे मारकर तू दूसरा पति करना चाहती है! स्त्रियाँ भला कब 20 एकसे प्रेम कर सकती है? कहा भी है :

"स्त्रियाँ एकके साथ बात करती है, दूसरेको विलासपूर्वक देखती है और मनमे किसी तीसरेका ही ध्यान करती रहती है। ये एक व्यक्तिसे स्नेह नहीं कर सकतीं।"

"जिस प्रकार अग्नि काठके ढेरसे तृप्त नहीं होती, समुद्र नदियोंसे तृप्त नहीं होता, काल प्राणियोंसे तृप्त नहीं होता, उसी प्रकार स्त्रियाँ भी पुरुषोंसे तृप्त नहीं हो सकतीं। 25

वंचकता, नृशंसता, चंचलता और कुशीलता–ये दोष स्त्रियोंमें निसर्गसे पाये जाते है। फिर स्त्रियाँ सुखद कैसे हो सकती है?" और

"जिनकी वाणीमे कुछ अन्य होता है, मनमें कुछ अन्य रहता है तथा कर्ममें कुछ अन्य ही रहता है वे स्त्रियाँ सुखदायी कैसे हो सकती है?" और भी कहा है :

---

१. अन्य भर्त्तारं ख०, ङ०। २ चिन्तितम्–ङ०। ३ " प्रिय को नाम योषिताम्।"–पञ्च० मि० भे० १४६। तुलना–"एक दृशा पर भावैर्वाग्भिरन्यं तथेङ्गितैः। सज्जयाऽन्य रतैश्चान्य रमयन्त्यङ्गना जनम्॥"–ज्ञाना० १२।५२। ४. पञ्च० मि० भे० १४८। ५. काष्ठौघैः घ०, च०। ६. तुलना–"निर्दयत्व- मनार्यत्वं मूर्खत्वमतिचापलम्। वञ्चकत्व कुशीलत्व स्त्रीणा दोषाः स्वभावजाः॥"–ज्ञाना० १२।९। ७. तुलना–'मनस्यन्यद्वचस्यन्यद्वपुष्यन्यद्विचेष्टितम्। यासा प्रकृतिदोषेण प्रेम तासा कियद्दरम्॥"–ज्ञाना० १२।२१। ८ साधारणस्त्री-क०, ग०, ङ०, च०।

[1]अन्यच्च

"विचरन्ति कुशीलेषु लङ्घयन्ति कुलक्रमम् ।
न स्मरन्ति गुरु मित्र पति पुत्रं च योषितः ॥ २६ ॥
[2]देवदैत्योरगव्यालग्रहचन्द्रार्कचेष्टितम् ।
जानन्ति ये महाप्राज्ञास्तेऽपि वृत्त न योषिताम् ॥ २७ ॥"

[3]तथा च

"सुखदु.खजयपराजयजीवितमरणानि ये विजानन्ति ।
मुह्यन्ति तेऽपि नून तत्त्वविदश्चेष्टिते स्त्रीणाम् ॥ २८ ॥
[4]जलधेर्यानपात्राणि ग्रहाद्या गगनस्य च ।
यान्ति पारं न तु स्त्रीणां दुश्चरित्रस्य केचन ॥ २९ ॥"

[5]तथा च

"न तत् क्रुद्धा हरिव्याघ्रव्यालानलनरेश्वराः ।
कुर्वन्ति यत् करोत्येका नरि नारी निरङ्कुशा ॥ ३० ।"

[6]अन्यच्च

"एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो-
र्विश्वासयन्ति च [7]नरं न च विश्वसन्ति ।
तस्मान्नरेण[8] कुलशील[9]पराक्रमेण
नार्यः श्मशानघटिका इव वर्ज्जनीयाः ॥ ३१ ॥"

"स्त्रियाँ कुशीलोंके साथ विचरण करती है। कुलक्रमका उल्लंघन करती हैं और गुरु, मित्र, पति तथा पुत्र किसीका भी ध्यान नहीं रखतीं।

जो महापण्डित देव, दैत्य, साँप, व्याल, ग्रह, चन्द्र और सूर्यकी गतिविधिके परिज्ञाता हैं वे भी स्त्रियोंका आचार नहीं जान पाते।" और भी

"जो तत्त्वज्ञानी सुख-दुःख, जय-पराजय और जीवन-मरणके तत्त्वको समझते है वे भी स्त्रियोंके व्यवहारसे ठगाये जाते है।

जलयान समुद्रके एक छोरसे दूसरे छोर तक पहुँच जाते है और ग्रह आदि आकाश-के। परन्तु स्त्रियोंके दुश्चरित्रका पार कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता।" और

"क्रुद्ध हुए सिंह, व्याघ्र, व्याल, अग्नि और राजा भी उतना अनिष्ट नहीं करते जितना एक क्रुद्ध निरंकुश नारी मनुष्यका कर सकती है।" और भी

"स्त्रियाँ धनके हेतु हँसती है और रोती है। मनुष्यको विश्वासी बना देती है, लेकिन स्वयं विश्वस्त नहीं होतीं। इसलिए कुलीन, सुशील और पराक्रमी मनुष्यको चाहिए कि वह स्मशानके घड़ोंके समान इनका परित्याग कर दे।"

---

१ ज्ञाना० १२।१०। २ ज्ञाना० १२।२४। ३ ज्ञाना० १२।२५। ४. ज्ञाना० १२।२६। ५ ज्ञाना० १२।२५। ६ " वेश्या श्मशानसुमना इव'।"—मृच्छक० ४।१४। ७ पर न—ख०। —न्ति पुरुष न—मृच्छक० ४।१४। ८ सदैव कु—ख०। ९. शीलवता नरेण ख०।

१८. एवं तस्य कामस्य दारुणं वचनमाकर्ण्य रतिरब्रवीत् - भो नाथ, सत्यमिद-मुक्तं भवता। परं किंतु युक्तायुक्तज्ञो न [1]भवति। [2]उक्तं च [3]यतः

"कौशेयं [4]कृमिजं सुवर्णमुपलाद्दूर्वा[5] च [6]गोलोमतः
पङ्कात्तामरसं [7]शशाङ्क उदधेरिन्दीवरं गोमयात्।
काष्ठादग्निरहे: फणादपि मणिर्गोपित्ततो(तो)रोचना
प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छन्ति किं जन्मना।। ३२।।" ५

तत् त्वां[8] वञ्चयित्वा कोऽन्यो भर्त्ताऽस्माकमस्ति ? तत् त्वया एतद्वक्तव्यं ममोपरि वृथोक्तम्।

तद्वचनं श्रुत्वा प्रीतिः प्रोवाच–हे सखि, यत्र वक्तव्यं तदनेनोक्तम्। तदिदानीं किं वृथाऽनेन प्रोक्तेन ? यतस्त्वयैवात्मनः सन्देहः कृतः। १०

[9]मूर्खैरपक्वबोधैश्च सहालापश् (पे) चतुष्फलम्।
वाचां व्ययो मनस्तापस्ताडनं दुःप्रवादनम्।।२७।।

अन्यच्च

दुराग्रहग्रहग्रस्ते विद्वान् पुंसि करोति किम्।
कृष्णपाषाणखण्डेषु मार्दवाय न तोयदः।।२८।। १५

---

१८. मकरध्वजके इस प्रकार दारुण वाक्य सुनकर रतिने कहा : नाथ, आप ठीक कहते है; पर आपको उचित-अनुचितका विवेक नहीं है। कहा भी है :

"रेशम कीडोसे बनता है, सुवर्ण पत्थरसे निकलता है, दूब गोरोमसे पैदा होती है, कमल कीचडसे उत्पन्न होता है, चन्द्रमा समुद्रसे जन्म लेता है, नीला कमल गोबरसे प्रकट होता है, अग्नि काठसे निकलती है, मणि साँपके फणसे उत्पन्न होता है, और गोरोचन २० गोपित्तसे प्रकट होता है। इस प्रकार मूल्यवान् पदार्थ अपनी-अपनी प्रकट विशेषताओंके कारण मूल्यवान् समझे जाते है। जन्मसे कोई मूल्यवान् नहीं बनता।"

रति कामसे कहती है . नाथ, ठीक इसी प्रकार अखिल स्त्री-सृष्टि दूषित नहीं कही जा सकती और इसीलिए मुझे भी आपको इस कोटिमें नहीं रखना चाहिए। आप ही बत-लाइए, आपको छोडकर और किसे मै अपना पति बनाना चाहती हूँ ? इसलिए आपने जो २५ मेरे ऊपर यह लांछन लगाया है, उसका कोई अर्थ नहीं है।

मकरध्वजकी बात सुनकर प्रीति कहने लगी : सखि, वास्तवमें इन्होंने बहुत ही अनु-चित बात कही है। लेकिन अब इस व्यर्थके विवादसे क्या मतलब ? फिर सखि, तुम्हींने तो अपने ऊपर सन्देह किया। देखो

"कच्ची समझके मूर्खोंके साथ बात करनेके चार ही परिणाम हैं: वाणीका व्यय, मन- ३० स्ताप, ताड़न और बकवाद।"

"जो पुरुष दुराग्रही है उसके मनको कोई भी विद्वान् बदल नहीं सकता। जिस प्रकार मेघ काले पत्थरोंको जरा भी मृदु नहीं कर सकते।"

---

१ भवसि क०, ख०, घ०, ङ०, च०। २ यत उक्त च ख०। ३ पञ्च० मि० भे० १०३। ४. कृमिता घ०, च०। ५. दूर्वापि गो-ख०। ६ गोरोमत ग०। ७. शशाङ्कमुदधे–क०, ख०, ग०, घ०, च०। ८ तत्र त्वा क०, ग०, घ०। ९ पद्यद्वयमिद क०, ख०, ग०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति।

तत्स्वदोपनाशाय गच्छ। [1]उक्तं च यतः

"अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटं
कूर्मो बिभर्त्ति धरणी खलु पृष्ठभागे।
अम्भोनिधिर्वहति [2]दु सहवाडवाग्नि-
मङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ॥ ३३ ॥"

तथा च

मार्त्तण्डान्वयजन्मना [3]क्षितिभृता चाण्डालसेवा कृता
रामेणाद्भुतविक्रमेण गहनाः संसेविताः कन्दराः,
भीमाद्यैः शशिवंशजैर्नृपवरैर्दैन्यं कृतं रङ्कवत्
[4]स्वाऽऽभाषाप्रतिपालनाय पुरुषैः किं किं न चाङ्गीकृतम् ॥ २९ ॥

एवं सखीवचनमाकर्ण्य रतिरमणी कामं प्रणम्य [5]निर्ग्रन्थमार्गेण निर्गता। तद्यथा

यथेन्दुरेखा गगनाद्विनिर्गता
यथा हि गङ्गा [6]हिमभेदिनीधरात्।
क्रुद्धाद्यथेभात्[7] करिणी विनिर्गता
रतिस्तथा सा मदनाद्विनिर्गता ॥ ३० ॥

१९. एवं सा रतिरमणी यावत् तेन निर्ग्रन्थमार्गेण गच्छति, तावत् कामराजस्य सचिवो मोहः संमुखः प्राप्तः। अथ तेन[8] मोहेन तां रतिरमणीमतिक्षीणां चिन्तापरिपूर्णां

प्रीति कहने लगी : सखि, चलो, अब पतिदेवकी आज्ञाका पालन करके अपने पाप-का प्रायश्चित्त कर डालें। कहा भी है :

"महादेवजी अब भी कालकूटका परित्याग नहीं कर रहे है। कच्छप आज भी अपनी पीठपर पृथ्वीका भार उठाये हुए है। और समुद्र अद्यावधि दु सह बडवानल समेटे हुए है। ठीक है, कर्त्तव्यनिष्ठ मनुष्य अंगीकृत कार्यको सदैव पूर्ण करते हैं।" तथा

"सूर्यवंशी राजा हरिश्चन्द्रको चाण्डालकी सेवा करनी पडो। अद्भुत पराक्रमी रामको पर्वतोंकी कन्दराएँ छाननी पड़ीं। और भीम आदिक चन्द्रवंशी नरेशोंको रकके समान दीनता दिखलानी पड़ी। ठीक है, अपनी बातके निर्वाहके लिए महान् पुरुषोंने भी क्या-क्या अनी-प्सित कार्य नहीं किया ?"

इस प्रकार अपनी सखीकी बात सुनकर रतिने कामको प्रणाम किया और वह जिन-राजके पास जानेके लिए आर्यिकाका वेष बनाकर निकल पड़ी।

"रति कामके निकटसे इस प्रकार निकली जिस प्रकार चन्द्ररेखा आकाशसे निकलती है, गंगा हिमाचलसे निकलती है, और हथिनी क्रुद्ध हाथीके पाससे चली जाती है।"

१९. जैसे ही रति निर्ग्रन्थ-मार्गसे जा रही थी, मकरध्वजके प्रधानसचिव मोह उसके सामने आ गये। मोहने देखा कि रति बहुत ही क्षीण हो गयी है और चिन्तित भी है।

---

१ चौरप० ५०। २ दुर्वहवा–ख०, ड०। ३ हरिश्चन्द्रेण। ४ स्वकीयवचननिर्वाहार्थमित्यर्थ। "भाषा गिरि सरस्वत्याम्" इति विश्व.। ५ आर्यिकावेषेण। ६ हिमाचलात्। ७ इभात्करिण। "द्विरदेभमतङ्गमा" इति धनंजय.। ८ 'तेन मोहेन' इति पदद्वयमत्रासङ्गत प्रतिभाति।

दृष्ट्वा विस्मितमनाः स मोहः प्रोवाच–हे देवि, अस्मिन् विषमे [1]मार्गे कुतो भवतीभिरागमनं कृतम् ? एवं तेन पृष्टा सती सा [2]रतिरमणी सकलवृत्तान्तमकथयत्। तच्छ्रुत्वा मोहोऽब्रवीत्–हे देवि, यदा संज्वलनेन विज्ञप्तिका प्रेषिता तदैतत्सर्वं मया ज्ञातम्। तदहं [3]तेनैव सैन्यमेलनार्थं प्रेषितः। [4]तद् यावदागमिष्यामि तावत् स न सहते। तदेतदयुक्तं कृतं तेन। ततो रतिराह–भो मोह, विषयव्याप्ता ये भवन्ति ते युक्तायुक्तं किंचिन्न जानन्ति। ५

उक्तं च यतः

"किमु कुवलयनेत्रा सन्ति नो नाकनार्य–
स्त्रिदशपतिरहल्यां तापसीं यत्[5] सिषेवे।
हृदयतृणकुटीरे दीप्यमाने स्मराग्ना–
वुचितमनुचितं वा वेत्ति कः पण्डितोऽपि ॥ ३४ ॥" १०

अन्यच्च, सा सिद्ध्यङ्गना जिननाथं वञ्चयित्वाऽन्येषां नामपृच्छामपि न करोत्येवं त्वं जानासि। तत्किं परदाराभिलाषं (षः) कर्तुं युज्यते ? उक्तं च यतः

"प्राणनाशकरा प्रोक्ता परमं वैरकारणम्[6]।
लोकद्वयविरुद्धा च पररामा[7], ततस्त्यजेत् ॥ ३५ ॥"

रतिकी इस प्रकारकी अवस्था देखकर उसे बडा विस्मय हुआ और वह रतिसे कहने लगा : देवि, आपने यह विषम मार्ग किसलिए अंगीकार किया है ? १५

मोहकी बात सुनकर रतिने उसके सामने समस्त घटनाचक्र ज्योंका-त्यों रख दिया।

रतिकी बात सुनकर मोहने कहा : देवि, जिस समय सज्वलनने अपनी विज्ञप्ति सुनायी थी मै उसी समय भाँप गया था कि आगे इस प्रकारका घटनाचक्र चलेगा। मै भी महाराज मकरध्वजकी आज्ञानुसार सैन्य तैयार करनेके लिए गया था और लौटकर ही न आ पाया कि महाराजने आपके लिए इस प्रकारकी अनुचित आज्ञा दे डाली। २०

मोहकी बात सुनकर रतिने कहा : मोह, जो विषयी होते है उन्हे उचित-अनुचितका विवेक नहीं होता। कहा भी है :

"क्या स्वर्गमे कुवलयके समान कमनीय नेत्रवाली देवागनाएँ नहीं थीं जो इन्द्रने तपस्विनी अहिल्याका सतीत्व भंग किया ? ठीक है, जब हृदयकी तृण-कुटीरमें कामाग्नि दहकने लगती है तो अच्छा विवेकनिष्ठ भी विवेक-बुद्धि खो बैठता है।" २५

रति मोहसे कहती गयी : आप भी इस बातसे अनभिज्ञ नहीं है कि मुक्ति-रमा जिननाथको छोडकर अन्य किसीका नाम तक नहीं सुनना चाहती। फिर समझमें नहीं आता कि प्राणनाथ दूसरेकी स्त्रीके लिए क्यों इतने लालायित है ? सुनिए, पर-स्त्रीसेवन कितना भयकर है : ३०

"नीतिविदोंका कथन है कि परस्त्री प्राणोंका नाश करनेवाली है, घोर विरोधका कारण है और दोनों लोकमें अनुपसेव्य है। इसलिए मनुष्य परदाराकी चाह कभी न करे।" और भी

---

१ 'मार्गे' ग० पुस्तके नास्ति। २ स्मरर–ग०। पदमिद ख० पुस्तके नास्ति। ३ ःकामेन। ४ तत्र या– ग०। ५ या मि–ड०। ६ –कारका ड०। ७ –रामास्त–ड०।

[1]तथा च

"भवस्य बीज नरकस्य द्वारमार्गस्य दीपिका।
शुचां कन्दः कलेर्मूल परारामा ततस्त्यजेत् ॥ ३६ ॥"

[2]अन्यच्च

५ "सर्वस्वहरणं बन्ध शरीरावयवच्छिदाम्।
मृतश्च नरक घोरं लभते पारदारिकाः ॥ ३७ ॥

[3]नपुसकत्व तिर्यक्त्व दौर्भाग्यं च भवे भवे।
भवेन्नराणां मूढानां पररामाभिलाषतः[4] ॥ ३८ ॥

[5]दत्तस्तेन जगत्यकीर्त्तिपटहो गोत्रे मषीकूर्चक-
१० श्चारित्रस्य जलाञ्जलिर्गुणगणारामस्य दावानलः।
सङ्केत. सकलापदां शिवपुरद्वारे कपाटो दृढ.
कामार्त्तस्त्यजति प्रतोदकमिदां(?)स्वस्त्री परस्त्री न यः ॥ ३९ ॥"

२०. एवं[6] तस्या वचनमाकर्ण्य मोहमल्लस्तां [7]प्रति[स]प्रपञ्चमवोचत् – हे देवि, युक्तमिदमुक्तं भवतीभिः। परं किंतु [8]यस्य यथा भवितव्यमस्ति तदन्यथा न भवति।
१५ उक्तं च[9] यतः

"भवितव्यं यथा येन न तद्भवति चान्यथा।
नीयते तेन मार्गेण स्वयं वा तत्र गच्छति ॥ ४० ॥

"परकीया नारी संसार-भ्रमणका कारण है, नरकद्वारके मार्गके लिए दीपिकाके समान है और शोक एवं कलहका मूल कारण है। इसलिए मनुष्यको चाहिए कि वह परदाराकी
२० चाह कभी न करे।

जो परदारासे अनुचित सम्बन्ध रखते है, उनका सर्वस्व तक छिन जाता है। वे बाँधे जाते है, उनके शरीरके अंग छेदे जाते है और मरकर वे घोर नरकमें जाते है।

जो मूढ मनुष्य परकीय स्त्रीकी केवल चाह तक करते है वे जन्म-जन्मान्तरमें नपुंसक होते है, तिर्यंच होते है और दरिद्र होते है।"

२५ २०. रतिकी इस प्रकार विस्तृत बात सुनकर मोहमल्लने कहा : देवि, आप बिलकुल ठीक कह रही है, लेकिन भवितव्यता अन्यथा नहीं हो सकती। कहा भी है :

"जिसकी जैसी भवितव्यता होती है वह होकर रहती है। और वह भी उसी रूपमें होती है, अन्यथा नहीं। मनुष्य या तो भवितव्यताके रास्तेपर खींच लिया जाता है या वह स्वयं ही उस रास्तेसे प्रयाण करता है।

---

१ तुलना–"दु खखानिरागधेय कलेर्मूलभयस्य च। पापबीज शुचा कन्द श्वभ्रभूमिर्नितम्बिनी॥" –ज्ञाना० १२।४९। " 'दु खाना खानिरङ्गना॥"–यो० शा० २।८७। २ यो०शा० २।९७। ३. यो० शा० २।१०३। ४ रामाभिलापितः च०। ५ "' 'शील येन निज विलुप्तमखिल त्रैलोक्यचिन्तामणि ॥" –सूक्तिमु० ३७। पद्यमिद क०, ख०, ग०, घ०, च० पुस्तकेपु नास्ति। ६ एव वच–ग०। ७ प्रति प्र–च०। ८ यत्तस्य य–क०,ख०,ग०,ङ०। ९. सुभाषित० भा० ९१।३०।

नहि[1] भवति यन्न भाव्य भवति च भाव्यं विनापि यत्नेन ।
करतलगतमपि नश्यति यस्य च भवितव्यता नास्ति ॥ ४१ ॥"

ततो रतिरुवाच–भो मोह, तदधुना किं कर्त्तव्यम्। तत्कथय। अहं चेत् त्वया सह भूयोऽप्यागमिष्यामि तन्मा दृष्ट्वा स कामोऽतिकोप यास्यति। तत् त्वं गच्छ। अहं नाऽऽगमिष्यामि। मोहः प्राह–हे देवि, युक्तमेतन्न भवति। भगवतीभिरवश्यमागन्तव्यम्। ५ रतिराह–भो मोहः त्वं [2]तत्र मा नीत्वा किं तावत् प्रथमं भणिष्यसि? स[3] मोहः प्राह[4]–

"[5]उत्तरादुत्तरं वाक्यं वदतां संप्रजायते।
सुवृष्टिगुणसंपन्नाद् बीजाद्बीजमिवापरम् ॥ ३१ ॥

एवमुक्त्वा रतिरमण्या सह कामपार्श्वे समागतो मोहः[6]।

इति [7]ठक्कुरमाइन्ददेवस्तुतजिन(नाग)देवविरचिते स्मरपराजये संस्कृतबन्धे १०
श्रुतावस्था नाम प्रथमपरिच्छेदः ॥ १ ॥

जो भवितव्य नहीं है वह कभी नहीं होता और जो भवितव्य होता है वह अनायास भी होकर रहता है। यदि भवितव्यता नहीं है तो हथेलीपर रखी हुई वस्तु भी विनस जाती है।"

इसके पश्चात् रतिने कहा : मोह, तुम बताओ कि मै इस समय क्या करूँ? यदि १५ मै लौटकर तुम्हारे साथ चलूँ तो प्राणनाथ मुझे देखकर बहुत नाराज होंगे। इसलिए तुम चलो। मेरा लौटना अब ठीक नहीं है।

मोहने कहा : देवि, यह न होगा। आप अवश्य ही मेरे साथ लौट चलिए। रतिने कहा : मोह, आप मुझे प्राणनाथके पास ले जाकर क्या कहेंगे?

मोहने कहा : देवि, इस सम्बन्धमें आप क्यों चिन्ता करती है? २०

"जिस प्रकार अच्छी वर्षाके समय बोये गये बीजसे और बीज पैदा होता है, उसी प्रकार प्रश्नकर्त्ताके उत्तरसे वार्तालापकी परम्परा चल पड़ती है।"

इस प्रकार मोह रतिको साथमें लेकर कामके निकट जा पहुँचा।

इस तरह ठाकुर माइन्ददेव-द्वारा प्रशंसित जिन(नाग)देव-विरचित
संस्कृतबद्ध स्मरपराजयमें श्रुतावस्था नामक २५
प्रथम परिच्छेद सम्पूर्ण हुआ।

---

१ पञ्च० मि० स० १०। २ 'तत्र' ख०, च० पुस्तकयोर्नास्ति। ३. स आह ख०। ४. आह क०, ग०, घ०, ङ०। ५ पञ्च० मि० भे० ६४। ६ 'मोह' ख०, ङ० पुस्तकयोर्नास्ति। ७ 'ठक्कुरमाइन्ददेवस्तुत' च० पुस्तके नास्ति। ८. सोदेवस्तु–ग०।

[द्वितीयः परिच्छेद.]

१ ततोऽनन्तरं रतिरमणीसहितं मोहमालोक्य लज्जया स[1] तूष्णीं तस्थौ। तदा मोहः प्रोवाच–भो देव, किमेतदुत्सुकत्वं कृतम्। यावदहमागमिष्यामि तावत्त्वं न सहसे? अन्यच्च, किं केन कापि स्वभार्या [2]दूतत्व प्रेपितास्ति? अथवा तस्मिन् विषमे निर्ग्रन्थ-
५ मार्गे जिननाथस्थानपालकाः ये सन्ति तैर्यदि व्यापाद्यते[3] तदाऽऽत्मनः स्त्रीहत्या भवेदिति। अन्यच्च, जगद्विख्यातं हास्यं स्यात्। तत् त्वया मया विना दुर्मन्त्रोऽयं [4]कृतः।

अन्यच्च[5] यतः

गोहत्या युगमेकं स्यात्, स्त्रीहत्या च चतुर्युगे।
यतिहत्या नु कल्पान्ते, भ्रूणहत्या न शुद्ध्यति॥ १॥

१० उक्तं च[6] यतः

"[7]दुर्मन्त्रान्नृपतिर्विनश्यति यतिः सङ्गात् सुतो लालनाद्
विप्रोऽनध्ययनात् कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्।
मैत्री चाप्रणयात् समृद्धिरनयात् स्नेह प्रवासाश्रयात्
स्त्री मद्यादनवेक्षणादपि कृषिस्त्यागात् प्रमादाद्धनम्॥ १॥"

१५ अत एव सचिवेन विना स्वामिना मन्त्रो न कर्त्तव्यः।

---

१ मकरध्वजने जैसे ही रतिके साथ वापस आये हुए मोहको देखा वह लज्जासे लाल-लाल हो गया और उसके मुखसे एक शब्द भी न निकला। इतनेमें मोहने मकरध्वजसे कहा: महाराज, आपने यह कैसा अनुचित कार्य किया है। आप इतने अधीर हो गये कि मुझे लौटकर वापस भी न आने दिया? फिर स्वामिन्, क्या किसीने कभी अपनी पत्नीको
२० भी दूत बनाया है? और क्या आपको इतना भी नहीं मालूम है कि निर्ग्रन्थ-मार्ग कितना विषम है? कदाचित् इस मार्गसे जाती हुई रतिकी मुक्ति-स्थानके संरक्षक हत्या कर देते तो इस महत् आत्म-हत्याके पापका कौन भागी होता? संसार-भरमें जो तुम्हारा अपयश फैलता वह अलग। इसलिए मेरी अनुपस्थितिमें तुमने ठीक मन्त्र नहीं किया। कहा भी है:

"अनुचित परामर्शसे राजा नष्ट हो जाता है। परिग्रहसे यति नष्ट हो जाता है। लाड
२५ करनेसे पुत्र नष्ट हो जाता है। अध्ययन न करनेसे ब्राह्मण नष्ट हो जाता है। कुपुत्रसे कुल नष्ट हो जाता है। दुर्जन-संसर्गसे शील नष्ट हो जाता है। स्नेहके न होनेसे मैत्री नष्ट हो जाती है। अनीतिसे समृद्धि नष्ट हो जाती है। परदेशमें रहनेसे स्नेह टूट जाता है। मद्य-पानसे स्त्री दूषित हो जाती है। देख-भाल न रखनेसे खेती नष्ट हो जाती है। त्यागसे और प्रमादसे धन विनस जाता है।"

३० मोहने कहा: इसलिए राजाका कर्त्तव्य है कि वह बिना मन्त्रीके कदापि मन्त्र न करे।

---

१. स कामः। २ दूतत्वं प्रति प्रेषितास्ति? इत्यन्वययोजना विधेया। दूतत्वे ख०। ३ अत्र 'रतिः' इत्यध्याहार्यम्। ४. कृतो मा विना ख०। ५ पद्यमिदं क०, ख०, ग०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति ६. पञ्च० मि० भे० १८०। सुभाषितत्रि० १।३३। ७. दौर्मन्त्र्यात् सुभाषितत्रि०।

एवं तस्य मोहस्य वचनमाकर्ण्य कामोऽब्रवीत्–भो मोह, किमनेन भूरिप्रोक्तेन ? यत्कार्यार्थं प्रेषितस्त्वं तत् त्वया कीदृशं कृतम् ? तत्कथय। मोहः प्राह–देव, यत्कार्यार्थं त्वया प्रेषितोऽहं तन्मया सकलसैन्यमेलनमेवंविधं कृतं यथा सा सिद्ध्यङ्गना तवैव भार्या भवति। अन्यच्च, स जिनराजस्तव सेवां यथा करोति तथोपायो मया रचितः। एतद्वचनमाकर्ण्य स्मरोऽवोचत्–मोह, सत्यमिदमुक्तं भवता। तदेवं कर्तुं त्वया शक्यते। मोह आह–देव, अहमिति स्तुतियोग्यो न भवामि। यन्मया स्वामिकार्यं क्रियते स स्वामिनः प्रभावः। यत उक्तं च[2]

"शाखामृगस्य शाखायाः शाखाग्र नु पराक्रमः।
यत् पुनस्तीर्यतेऽम्भोधि प्रभाव प्राभवो हि स॰ ॥ २ ॥"

अन्यच्च

"यद्रेणुर्विकलीकरोति तरणिं तन्मारुतस्फूर्जित
भेकश्चुम्बति यद्भुजङ्गवदन तन्मन्त्रिण. स्फूर्जितम्।
चैत्रे कूजति कोकिल कलतर तत् सा रसालद्रुम-
स्फूर्तिर्जल्पति मादृश॰ किमपि तन्माहात्म्यमेतद् गुरो॰ ॥ ३ ॥"

मोहकी बात सुनकर मकरध्वज कहने लगा : अरे मोह, बार-बार एक ही बात क्यों दोहरा रहे हो ? तुम जिस कामके लिए भेजे गये थे उसे तुमने कैसा किया ? पहले यह बताओ।

मोह उत्तरमें कहने लगा : स्वामिन्, आपने मुझे जिस कार्य, सैन्यसम्मेलन, के लिए भेजा था, वह कार्य मै कर चुका। साथ ही इस प्रकारका भी प्रयत्न किया है कि जिससे मुक्ति-स्त्री आपकी ही पत्नी बने। इसके अतिरिक्त मैने इस तरहकी युक्तिका प्रयोग किया है कि उलटे जिनराज आपकी ही सेवा करेगा। मोहकी बात सुनकर मकरध्वज बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा : मोह, तुमने ठीक कहा है। यह काम तुम्हारे सिवा और कौन कर सकता है ?

मोह बोला : देव, मै इस प्रकार प्रशंसाका पात्र नहीं हूँ। आपका जो कार्य मुझसे बन पडता है, वह सब आपके प्रभावसे। कहा भी है :

"वानर वृक्षकी शाखा-प्रशाखाओं तक ही उछलकर अपना पराक्रम दिखला सकता है। यदि वह समुद्र पार करता है, तो इसमें प्रभुका ही प्रभाव समझना चाहिए, वानरका नहीं।"

मोह कहता है : स्वामिन्, ठीक यही बात मेरे सम्बन्धकी है। तथा

"धूलि यदि सूर्यको ढक देती है तो इसमें धूलिकी विशेषता नहीं, यह तो वायुका विक्रम है। इसी प्रकार यदि मेंढक साँपका मुँह चूमता है, यह भी मन्त्रविद्की कुशलता है। और चैतमें कोकिल जो कलगान करती है, वह भी आम्रवृक्षोंके मंजरित होनेका परिणाम है। वैसे ही मुझ-जैसा मूढ जो बात कर रहा है इसमें भी गुरुका माहात्म्य ही काम कर रहा है।"

---

१ अत पर 'यद्रेणु' इत्यादिपर्यन्तः पाठ क०, ग०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति। २ सुभाषित० भा० १६६।५८६।

अथवा धीमतां किमसाध्यमस्ति ? उक्तं च यतः

> "सर्पान् व्याघ्रान् गजान् सिंहान् दृष्ट्वोपायैर्वशीकृतान् ।
> [2]जिनेति कियती मात्रा धीमतामप्रमादिनाम् ॥ ४ ॥"

[3]तथा च

> "वरं बुद्धिर्न सा विद्या, विद्याया[4] धीर्गरीयसी ।
> बुद्धिहीना विनश्यन्ति यथा ते सिंहकारकाः ॥ ५ ॥"

एतद्वचनं श्रुत्वा कामः प्राह–भो मोह, कथमेतत् ? स मोहोऽब्रवीत्

२ अथाऽस्ति कस्मिंश्चित् प्रदेशे [5]पौण्ड्रवर्द्धनं नाम नगरम् । तत्र च शिल्पि(ल्प)-कारक-चित्रकारक-वणिकसुत-मन्त्रसिद्धाश्चेति चत्वारि मित्राणि स्वशास्त्रपारंगतानि[6] संध्यासमये एकत्रोपविश्य परस्परं सुखगोष्ठीं कुर्वन्ति स्म । एवं तेषां चतुर्णां मित्रत्व-वर्तमानानां कतिपयैर्दिवसैः शिल्पि(ल्प)कारेण संध्यासमये तांस्त्रीनाहूय एकत्रोपविश्य वचनमेतदभिहितम्–अहो, यदहं भणिष्यामि तद्यूयं करिष्यथ[7] ? तदा तच्छ्रुत्वा ते [8]त्रयः प्रोचुः–भो मित्र, तव वचनं कस्मान्न कुर्मो वयम् ?

-अथवा बुद्धिमान् पुरुष क्या नहीं कर सकते ? कहा भी है :

"जब मनुष्य सर्प, व्याघ्र, गज और सिंहको भी उपायोंसे वशमें कर लेते है तो जाग-रूक बुद्धिमान् पुरुषोंके लिए जिनदेवको अधीन करना क्या कठिन चीज है ?"

और भी कहा है :

"बुद्धि विद्यासे अधिक गुरु है, महत् है । बुद्धिहीन मनुष्य उसी तरह विनस जाते है जैसे सिंह बनानेवाले वे तीन पण्डित ।"

मकरध्वज इस बातको सुनकर मोहसे कहने लगा : मोह, यह बात किस प्रकारकी है ? मोह कहने लगा :

२. किसी प्रदेशमें पौण्ड्रवर्धन नामका नगर था । इस नगरमें अपने-अपने शास्त्रमें पारंगत चार मित्र रहते थे । उनमें-से एक शिल्पकार था, एक चित्रकार था, एक वणिक्-पुत्र था और एक मन्त्रशास्त्रका जानकार था । चारों मित्र प्रतिदिन सन्ध्या-समय एक स्थानपर बैठकर विनोद-गोष्ठी किया करते थे । कुछ दिनोंके पश्चात् एक बार शिल्पकारने अपने तीनों मित्रोंको सन्ध्याके समय निश्चित स्थानपर बुलाया और कहने लगा : क्या हम जिस बातको कहेंगे उसे आप लोग स्वीकार करेंगे ? मित्र शिल्पकारकी बात सुनकर तीनों मित्र कहने लगे : सखे, हम लोगोंने आपकी बात कभी टाली भी है ? क्योंकि हमें मालूम है :

---

१. 'अथवा' च० पुस्तके नास्ति । २ "·····राजेति कियती ·॥"--पञ्च० मि० भे० ४१ । ३ "···विद्याया बुद्धिरुत्तमा · ॥"--पञ्च० अप० ३६ । ४ विद्याबुद्धिर्ग-- च० । ५ पाण्डु क० । पौण्ड ख०, ङ० । ६. पारगतानि तिष्ठन्ति । एकदा सध्या--क०, ग०, घ०, ङ०, च० । ७. करिष्यध्वम् क०, ग० घ०, च० । ८. ते प्रोचु ख०, ग०, ङ० ।

[1]उक्तं च यतः

"मित्राणां हितकामानां यो वाक्यं नाभिनन्दति ।
तस्य नाशो(श) विजानीयात् यद्भविष्यो यथा मृत ॥ ६ ॥"

अथ शिल्पि(ल्प)कारोऽब्रवीत् – कथमेतत् ? ते प्रोचुः

३ [2]अथास्ति कस्मिंश्चित् स्थाने पद्मिनीषण्डमण्डितो जलाशयः । तत्र ह्रदे महास्थूलाङ्गयो मत्स्याः सन्ति । किं नामधेयास्ते ? अनागतविधाता प्रत्युत्पन्नमतिर्यद्भविष्यश्चेति वसन्ति स्म । एवं तत्र जलाशये कतिपयैर्दिवसैर्मीनलुब्धकाः परिभ्रमन्तश्चागताः । अथ तैस्तं जलाशयं दृष्ट्वैतदभिहितम् – अहो, अस्मिन् जलाशये बहवो मत्स्याः सन्ति । तत्प्रातरागत्याऽत्र जालं प्रक्षिप्य नेतव्या एते । एवमुक्त्वा ते सर्वेऽपि मीनलुब्धकाः स्वस्थानं प्रति निर्जग्मुः । अथ तेषा [3]कुलिशपातमिव वचनमाकर्ण्य अनागतविधाता तावाहूय[4] वचनमेतदुक्तवान् – अहो, [5]भवन्तौ कतिपयदिवसपर्यन्तमात्मनो जीवितं[6]मिच्छतः ? तच्छ्रुत्वा प्रत्युत्पन्नमतिरवादीत् – भो मित्र, किं त्वमेवं ब्रूषे ? स आह – अहो मित्र, अद्य मीनघातकैरत्रागत्य जलाशयं दृष्ट्वा एतदेवाभिहितम् – 'अहो, प्रभूतमत्स्योऽयं

"जो अपने हितैषी मित्रोंकी बात नहीं मानता है, उसकी यद्भविष्यके समान मृत्यु हो जाती है।"

इस बातको सुनकर शिल्पकार कहने लगा : महाराज, आप यह कैसी बात कह रहे है ? इसका खुलासा कीजिए । शिल्पकारकी बात सुनकर वे मित्र कहने लगे :

३. किसी स्थानमें कमलोंसे सुशोभित एक जलाशय था । उस जलाशयमें अनागतविधाता, प्रत्युत्पन्नमति और यद्भविष्य नामके तीन स्थूलकाय मत्स्य रहते थे । इस प्रकार रहते-रहते इन्हें बहुत दिन बीत गये ।

कुछ दिनोंके पश्चात् उस जलाशयके निकट घूमते-घामते कुछ धीवर आये । धीवर इस जलाशयको देखकर आपसमें कहने लगे :

'देखो, इस तालाबमें कितने अधिक मत्स्य है । अतः यह ठीक होगा कि हम लोग यहाँ सुबह आयें और तालाबके जलको छानकर उन्हें ले जायें ।' साथियोंने भी इस प्रस्तावका समर्थन किया और वे अपने-अपने घर चले गये ।

अनागतविधाताको इन लोगोंकी बात सुनकर ऐसा मालूम हुआ जैसे उसकी छातीमें किसीने वज्र मार दिया हो । उसने अपने साथी मत्स्योंको बुलाकर कहा : आप लोग क्या कुछ दिन तक और जीना चाहते है ? अनागतविधाताकी बात प्रत्युत्पन्नमतिको बडी असंगत-सी मालूम हुई । वह अपने पूर्व साथीसे कहने लगा : मित्र, आप वह बात क्यों कह रहे है ?

अनागतविधाता कहने लगा : मित्र, मैंने यह बात इसलिए कही है कि आज कुछ धीवर यहाँ आये थे । उन्होंने इस तालाबको देखकर यह कहा कि इसमें बहुत मत्स्य

---

१ तुलना–"सुहृदा हितकामाना न करोतीह यो वच । स कूर्म इव दुर्बुद्धि काष्ठाद्भ्रष्टो विनश्यति ॥" पञ्च० मि० भे० २४४ । तथा–"अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा । द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति ॥"–पञ्च० मि० भे० ३४७ । २ तुलनीया कथेय पञ्चतन्त्रमित्रभेदीयचतुर्दशकथया सह । ३ कुलिशपातमिव वज्रपातमिव दारुणमित्यर्थ । ४ तानाहू–च० । ५ भवन्तो च० । ६ जीवितुमि–क०, ख०, ग०, घ०, च० ।

जलाशयोऽस्ति। तत्प्रभातेऽस्मिन्नागन्तव्यम्।' एवमुक्त्वा ते [1]निर्गतवन्तः। तदवश्यं प्रभाते धीवरा अत्रागत्य अस्मान्नेष्यन्ति। तच्छीघ्रमन्यत्र गन्तव्यम्। उक्तं च[2] यतः

"त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥ ७॥"

५ तदाकर्ण्य सः प्रत्युत्पन्नमतिराह – भो मित्र, एवं भवतु। एवं द्वयोर्वचनं श्रुत्वा यद्भविष्यो विहस्य प्रोवाच – अहो, भवन्तौ परस्परं किं मन्त्रयतः? मरणं खलु यद्यस्ति तदन्यत्रापि गते सति किं न भविष्यति? उक्तं च[3] यतः

"अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि वने [4]विसर्जित: कृतप्रयत्नोऽपि गृहे न[5] जीवति॥ ८॥
१० [6]नहि भवति यन्न भाव्यं भवति च भाव्यं विनापि यत्नेन।
करतलगतमपि नश्यति यस्य च भवितव्यता नास्ति॥ ९॥"

अन्यच्च

"यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा [7]पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति॥ १०॥"

---

१५ है। इसलिए हम लोग सुबह यहाँ ही आयें। इतना कहकर वे चले गये। वे लोग प्रातः यहाँ अवश्य ही आयेंगे और हमें पकड़कर ले जायेंगे। इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि हम शीघ्र ही यहाँसे अन्यत्र प्रस्थान कर दें। कहा भी है:

"कुलके स्वार्थके लिए एकका त्याग कर देना चाहिए। जनपदकी हित-दृष्टिसे ग्राम-का त्याग कर देना चाहिए और अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिए पृथिवी तककी चिन्ता न २० करनी चाहिए।"

अनागतविधाताकी बात सुनकर प्रत्युत्पन्नमति कहने लगा: हाँ मित्र, अब हमें यहाँ-से शीघ्र ही प्रस्थान कर देना चाहिए। पर जब इन दोनोंकी बात यद्भविष्यने सुनी तो वह हँसकर कहने लगा: 'अरे, आप लोग आपसमें क्या छोटी-सी बातपर विचार कर रहे हैं? यदि मरना ही होगा तो हम अन्यत्र भी चले जायें, मृत्युसे नहीं बच सकते। कहा भी है:

२५ "मनुष्य जिस वस्तुकी रक्षा नहीं करता है वह दैवसे रक्षित होकर बची रहती है। इसके विपरीत जिसकी खूब सावधानीसे रक्षा भी की जाये और यदि दैवकी अनुकूलता न हो तो वह विनस जाती है। अनाथको वनमें छोड़नेपर भी वह जीवित रह जाता है और अनेकों प्रयत्न करनेपर भी चीज घरमें नहीं बच पाती है।" और भी

"जो भवितव्य नहीं है, वह कभी नहीं होता है। और जो भवितव्य है वह होकर ३० ही रहता है। भवितव्यताके न होनेपर हाथमें रखी हुई चीज भी नष्ट हो जाती है।" और

"जिस प्रकार गायका बछड़ा हजार गायोंमें-से अपनी माँको पहचान लेता है। उसी प्रकार पूर्व जन्ममें किया गया कर्म कर्त्ताका अनुसरण करता है।"

---

१ निर्गता च०। २ पञ्च० मि० भे० ३८६। ३ '' ''गृहे विनश्यति॥" पञ्च० अप० ४२। पञ्च० मि० भे० ३५२। ४ विसर्जति च०। ५ विनश्यति च०। ६ पञ्च० मि० स० १०, १३१। ७ "''तथा पुराकृत कर्म ॥"–पञ्च० मि० सं० १३२।

तदन्यत्रापि गते सति यद्भाव्यं[1] तदवश्यं भविष्यति । अन्यच्च, धीवराणां वचनमात्रश्रवणात् पितृपैतृ[2]कोपार्जितं (तो) जलाशयं (यः) त्यक्तुं किं युं[3]ज्यते ? तदहं नाऽऽगच्छामि । एवं तस्य यद्भविष्यस्य वचनं श्रुत्वा तावूचतुः – भो यद्भविष्य, यदि त्वं नाऽऽगच्छसि, तदाऽऽवयोः कोऽपि दोषो नास्ति । एवमुक्त्वा तावन्यजलाशयमाटतुः । ततोऽनन्तरं मीनघातकाः प्रभाते तत्रागत्य जालं प्रक्षिप्य यद्भविष्येन सहाऽन्यानपि जलचरान्निन्युः । अतो वयं ब्रूमः–"मित्राणा हितकामानाम्" इत्यादि । ५

४. एवं तेषां त्रयाणां वचनं श्रुत्वा शिल्पि(ल्प) कारोऽब्रवीत् – अहो, यद्येवं तद्देशान्तरं गत्वा किंचिद् द्रव्योपार्जनं क्रियते (येत) । कतिपयदिवसपर्यन्तं[4] स्वदेशे स्थातव्यम् ।

उक्तं[5] च १०

"परदेशभ[6]योद्भीता बह्वालस्या प्रमादिन. ।
स्वदेशे निधन यान्ति काका कापुरुषा. मृगाः ॥ ११ ॥"

इसलिए हम भले ही अन्यत्र चले जायें, परन्तु जो होनहार है वह अवश्य होकर रहेगी । एक बात और । धीवरोंके कथनको सुनने मात्रसे हमें पिता-पितामह आदिसे उपार्जित जलाशय न छोड देना चाहिए । इस दृष्टिसे मै तो आप लोगोंके साथ नहीं जाना चाहता ।' १५

यद्भविष्यकी इस प्रकारकी बात सुनकर वे दोनों साथी कहने लगे ' मित्र यद्भविष्य, यदि आप हमारे साथ नहीं आते है तो इसमें हम लोगोंका कोई अपराध नहीं है । यह कहकर अनागतविधाता और प्रत्युत्पन्नमति नामके मत्स्य दूसरे जलाशयमें चले गये ।

प्रभात हुआ । मछली पकडनेवाले धीवर वहाँ आये । जाल डाले गये । और अन्य मछलियोंके साथ यद्भविष्यको पकड़कर वे ले गये । २०

मित्रगण शिल्पकारसे कहने लगे : इसलिए हम कहते है कि :

"जो अपने हितैषी मित्रोंकी बात नहीं मानता है, उसकी यद्भविष्यके समान मृत्यु हो जाती है ।"

४ इस प्रकार तीनोंकी बात सुनकर शिल्पकारने कहा ' यदि यह बात है तो हम लोगोंको देशान्तरमें जाकर कुछ द्रव्योपार्जन करना चाहिए । अपने देशमे तो कुछ दिन ही रहना ठीक है । नीतिकारोंका कथन भी है कि : २५

"जो पुरुष परदेश जानेसे डरते है, अति आलसी और प्रमादी है वे पुरुष नहीं है, बल्कि काक, कापुरुष और मृग है । तथा अपने देशमेंर हते-रहते ही उनकी मृत्यु हो जाती है ।" और

---

१ 'अवश्य' ख० ग० पुस्तकयोर्नास्ति । २. पौत्रोपा–क०, ग०, घ०, च० । ३ न युज्यते ख० । ४ अत्र 'एव' इत्यध्याहारो विधेय । ५ " बहुमाया नपुंसका ।"–पञ्च० मि० भे० ३५० । ६ भयाद्भीता ख० ।

[1]तथा च

"कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेशः [2]सुविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम् ॥ १२ ॥"

अन्यच्च[3]

५ "न चैतद् विद्यते किंचिद्यदर्थेन न सिद्ध्यति।
यत्नेन मतिमांस्तस्मादर्थमेकं प्रसाधयेत् ॥ १३ ॥
[4]यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
१० सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति[5] ॥ १४ ॥
[6]यस्यार्थास्तस्य[7] मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च जीवति ॥ १५ ॥
[8]इह लोकेऽपि धनिनां परोऽपि स्वजनायते।
स्वजनोऽपि दरिद्राणां तत्क्षणाद् दुर्जनायते ॥ १६ ॥"

१५ तथा च[9]

"पूज्यते यदपूज्योऽपि यदगम्योऽपि गम्यते।
वन्द्यते यदवन्द्योऽपि तत् (स) प्रभावो धनस्य च ॥ १७ ॥
[10]अर्थेभ्यो हि वृद्धेभ्यः संवृत्तेभ्यो यतस्ततः।
प्रवर्त्तन्ते क्रियाः सर्वाः पर्वतेभ्य इवापगाः ॥ १८ ॥

---

२० "शक्तिशालियोंके लिए क्या वस्तु भारभूत है और व्यवसायियोंके लिए क्या दूर है? विद्वानोंके लिए क्या विदेश है और मधुर-भाषियोंके लिए कौन पर है?— कोई नहीं।" एक बात और

"संसारमें ऐसा कोई काम नहीं, जो धनसे सिद्ध न हो सके। इसलिए बुद्धिमान्‌को चाहिए कि वह प्रयत्नपूर्वक एक धनको ही संचित करे।

२५ जिसके धन है, उसके मित्र है, जिसके धन है, उसके बन्धु है। जिसके धन है, वह लोकमें पुरुष है; और जिसके धन है, वही जीवित है।

संसारमें धनी पुरुषोंके लिए पराया भी आत्मीय जन-जैसा प्रतीत होता है। और दरिद्रोंके लिए अपना आदमी भी तत्काल दुर्जन-जैसा मालूम देता है।" और

"जो अपूज्य भी पूजा जाता है, अगम्य भी गम्य होता है और अवन्द्य भी वन्दित ३० होता है— वह सब धनका प्रभाव है।

जैसे पर्वतोंसे निकली हुई नदियोंसे अनेक काम लिये जाते है उसी प्रकार सब तरफ़से सुरक्षित वर्धमान धनसे भी अनेक उपयोगी कार्य निकाले जाते है।

---

१ पञ्च० मि० स० १२७। २ सविद्याना ख०, घ०, च०। ३ "न हि तद्विद्यते ··· ॥"—पञ्च० मि० भे० २। ४ सुभाषितत्रि० १।३२। ५. पद्यमिदं क०, ख०, ग०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति। ६. पञ्च० मि० भे ३। ७. यस्यार्थस्त—ङ०। ८ "· · सर्वदा दुर्जनायते ॥"—पञ्च० मि० भे० ५। ९. पञ्च० मि० भे० ७। १० पञ्च० मि० भे० ६।

अशनं चेन्द्रियाणां (नादिन्द्रियाणीव)स्युः कार्याण्यखिलान्यपि।
एतस्मात् कारणाद् वित्तं सर्वसाधनमुच्यते ॥ १९ ॥"

एवं तस्य वचनमाकर्ण्य ते प्रोचुः – भो मित्र, एवं भवति युक्तम्। एवं पर्यालोच्य चत्वारो देशान्तरं निर्जग्मुः।

५. अथ ते चत्वारो यावद् गच्छन्ति तावदपराह्णमध्ये भयङ्करमरण्यमेकं प्रापुः। अथ तस्मिन्नरण्यमध्ये शिल्पि (ल्प)कारेण तान् प्रति वचनमेतदभिहितम् – अहो, एवंविधं भयङ्करं स्थानं रात्रिसमये वयं प्राप्ताः। तदेकैको यामो जागरणीयः। अन्यथा चौर-व्याघ्रादिभयात् किंचिद्विघ्नं[2] भविष्यति। अथ ते प्रोचुः – भो मित्र, युक्तमित्युक्तं भवता। तदवश्यं जागरिष्यामः। एवमुक्त्वा त्रयस्ते सुप्ताः।

ततोऽनन्तरं शिल्पि(ल्प) कारो यावत् प्रथमं निजयामं जागर्ति तावत् तस्य निद्राऽऽगन्तुं लग्ना। ततोऽनन्तरं स निद्राभञ्जनार्थं काष्ठमेकमानीय कण्ठीरवरूपं महाभासुराकारं सर्वावयवसंयुतं चकार। तदनु चित्रकारान्तिकमाययौ शिल्पि(ल्प)कारः। ततोऽब्रवीत्–भो मित्र, निजयामजागरणार्थमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ। एवमुक्त्वा शिल्पि(ल्प)कारः सुप्तः।

अथ चित्रकार उत्थितः सन् यावत् पश्यति तावदग्रे दारुमयं कण्ठीरवरूपं महारौद्रं घटितं ददर्श। ततोऽवदत्–अहो, अनेनोपायेनानेन शिल्पि(ल्प)कारेण निद्राभञ्जनं

धनसे पेट भरा जाता है और धनसे ही इन्द्रियोंके सब काम निकलते है। इसीलिए धन सबका साधन कहा गया है।"

इस प्रकार शिल्पकारकी बात सुनकर अन्य साथी कहने लगे : मित्र, आपका कहना बिलकुल ठीक है। हमें यही करना चाहिए। यह सोचकर वे चारों साथी देशान्तरके लिए चल पड़े।

५. चलते-चलते अपराह्णके समय वे किसी भयंकर जंगलमें जा पहुँचे। जैसे ही वे इस भीषण अरण्यमें पहुँचे, सन्ध्या हो आयी। उनमें-से शिल्पकार कहने लगा : देखो, हम लोग रातके समय कैसे भयंकर वनमें आ पहुँचे है। यहाँ हम लोगोंमें-से प्रत्येकको एक-एक पहर तक जागरण करना चाहिए। अन्यथा चोर या व्याघ्र आदि वन्य जन्तुसे कुछ अनिष्ट हो सकता है। अन्य साथियोंने शिल्पकारकी बातका समर्थन करते हुए कहा : मित्र, आप ठीक कह रहे है। हम लोगोंको एक-एक पहर तक अवश्य जागरण करना चाहिए। इस प्रकार कहकर वे तीनों साथी सो गये।

पहला पहर शिल्पकारको जागरणमें व्यतीत करना था। इसलिए नींद न आनेके लिए उसने एक लकड़ी लाकर महाभयकर सर्वांगपूर्ण सिंह तैयार किया। इतनेमें उसका जागरण-काल समाप्त हो गया और वह चित्रकारको जगानेके लिए उसके पास गया और कहने लगा : मित्र, उठिए, अब आपके जगनेका समय हो गया। इस तरह वह चित्रकार-को उठाकर सो गया।

चित्रकारने जागकर जैसे ही नजर पसारी तो उसे लकड़ीका महाभयंकर सिंह दिखलाई दिया। उसे देखकर और कुछ सोचकर चित्रकार कहने लगा : 'अच्छा, इस उपायसे

---

१ पञ्च० मि० भे० ८। २ विघ्नमनिष्टमित्यर्थ।

कृतम्। तदहमपि किंचित् करिष्यामि। एवं भणित्वा हरितपीतलोहितकृष्णप्रभृतीन् [1]वर्णान् [2]इपद्युपरि उद्घृष्य दारुमयं [3]कण्ठीरवरूपं [4]विचित्रितवान्। ततोऽनन्तरं चित्रकारो मन्त्रसिद्धि(द्ध) [5]सकाशमियाय। प्रोवाच – भो मित्र, उत्तिष्ठोत्तिष्ठ शीघ्रम्[6]। एवमुक्त्वा चित्रकारः सुप्तवान्।

५ अथ मन्त्रसिद्धो यावदुत्तिष्ठति तावत् संमुखं कण्ठीरवरूपं दारुमयं महारौद्रं सर्वावयवसंपन्न [7]जीवनमिव(वदिव) [8]विलोक्यातिभीतः। ततः प्रोवाच – अहो, इदानीं किं कर्तव्यम्? सर्वेषामद्य मरणमवश्यमागतम्। एवमुक्त्वा मन्दं मन्दं गत्वा मित्राणि [9]प्रत्याह – अहो, उत्तिष्ठत, उत्तिष्ठत। [10]अस्या अटव्या मध्ये [11]श्वापदमेकमागतमस्ति(श्वापद एक आगतोऽस्ति) एवं तस्य कोलाहलमाकर्ण्य त्रयस्त उत्थिताः। ततस्ते प्रोचुः – भो मित्र,
१० किमेवं व्याकुलयसि? अथासौ जजल्प – अहो, पश्यताहो पश्यत। एत (अयं)च्छ्वापदं(दः)-मया मन्त्रेण कीलितम(तो)ऽस्ति। ततः संमुखं नायाति। तदाकर्ण्य ते विहस्य प्रोचुः – भो मित्र, दारुमयं श्वापदमेनं किं न जानासि? तदस्मिन् दारुमये पञ्चाननरूपे निजविद्याप्रभाव [12]आवाभ्यां दर्शितः। तच्छ्रुत्वा मन्त्रसिद्धस्तद्दारुमयं सिंह (मयसिंह) समीपं गत्वा यावत् पश्यति तावदति[13] ललज्जे।

---

१५ शिल्पकारने अपनी नींद तोडी है। अब मुझे भी कुछ नींद न लेनेका यत्न करना चाहिए।' इस प्रकार सोचकर उसने उस सिंहको लाल-काले-पीले और नीले रंगोंसे चित्रित करना प्रारम्भ कर दिया। जब चित्रकार उस सिंहको इस प्रकार रंगानुरंजित कर चुका तो मन्त्रसिद्धिके निकट गया और बोला: मित्र, उठो-उठो, अब तुम्हारे जगनेका नम्बर आ गया है। इस प्रकार मन्त्रसिद्धिको जगाकर चित्रकार सो गया।

२० मन्त्रसिद्धि जैसे ही उठा, उसने अपने सामने एक महाभयकर, सर्वांगपूर्ण, जीता-जागता लकड़ीका सिंह देखा और इसे देखते ही वह डर गया। उसने सोचा: इस समय क्या करना उचित है। मालूम देता है, आज सबकी मौत आ गयी है। यह सोचते ही वह तुरन्त धीमी गतिसे मित्रोंके निकट पहुँचा और उनसे कहने लगा: मित्रो, उठिए, उठिए। जंगलमें कोई भयंकर जन्तु आ गया है।

२५ मन्त्रसिद्धिका कोलाहल सुनकर तीनों साथी उठ बैठे। वे कहने लगे: मित्र, आप हम लोगोंको व्यर्थ ही क्यों व्याकुल कर रहे है? मन्त्रसिद्धि बोला: अरे, देखिए तो यह सामनेका जन्तु, जिसे मैने मन्त्रसे कीलित कर दिया है और जो इसी कारणसे आगे नहीं बढ पा रहा है। मन्त्रसिद्धिकी बात सुनकर उसके साथी हँस पड़े और कहने लगे: अरे मित्र, यह तो लकड़ीका शेर है। क्या तुम इतना ही नहीं पहचान सके। वे आगे कहने
३० लगे: हम दोनोंने इस लड़कीके केसरीमें अपनी विद्याका चमत्कार दिखलाया है। यही कारण है जो तुम इसे सजीव सिंह समझ बैठे।

---

१. 'वर्णान्' इत्यारभ्य 'विचित्रितवान्' इति पर्यन्तः पाठ च० पुस्तके नास्ति। २. पाषाणोपरि। ३. सिंहप्रतिमामित्यर्थ। ४ विविधवर्णानुरञ्जिता चकार। ५ सङ्काशमि–च०। ६. वाक्यमिद ख० पुस्तके नास्ति। ७. जीवमान ख०, ङ०। ८. विलोक्येति भी–ग०, घ०, ङ०, च०। ९. प्रति प्राह क०, ग०, ङ०। मित्रान् प्रत्यह ख०। १०. अस्यामटव्या म–क०, ग०, घ०, ङ०, च०। ११ श्वापदशब्दस्य नपुसकत्व चिन्त्यमत्र। १२ आवाभ्या शिल्पकारचित्रकाराभ्याम्। १३. अतिलज्जो क०, ग०, घ०, ङ०, च०।

ततः स मन्त्रसिद्ध आह – अहो, प्रसंगेनानेन युवाभ्यामस्मिन् दारुमये पञ्चाननरूपे निजविद्याकौशल्यं दर्शितम् । तदधुना मम विद्याकौतूहलं पश्यत । यदि जीव(न्य)मानमेनं न करोमि तदहं मन्त्रसिद्धो न भवामि ।

एवं मन्त्रसिद्धवचनमाकर्ण्य बुद्धिमता वणिकपुत्रेणैवं मनसि चिन्तितम् – अहो, यदि कथमपि जीव(न्य)मानमिमं[1] करिष्यति तदहं दूरस्थितो भूत्वा सर्वमेतत् पश्यामि । यतो मणिमन्त्रौषधीनामचिन्त्यो हि प्रभावः । एवं चिन्तयित्वा यावद् गच्छति तावत् तावूचतुः – भो मित्र, कुतस्त्वं गच्छसि ? ततो वणिक प्राह – अहो, मूत्रोत्सर्गं कृत्वाऽऽगमिष्यामि । एवमुक्त्वा यावद् गच्छति तावत् स वणिकपुत्रो वृक्षमेकं समुखमद्राक्षीत् । कथंभूतम् ?

छायासुप्तमृगः[2] शकुन्तनिवहैरालीढनीलच्छदः[3]
कीटैरावृतकोटरः कपिकुलैः स्कन्धे कृतप्रश्रयः ।
विश्रब्धो[4] मधुपैर्निपीतकुसुमैः श्लाघ्यः स एव द्रुमः
सर्वाङ्गैर्बहुसत्त्वसंघसुखदो भूभारभूतोऽपरः ॥ २ ॥

मित्रोंकी बात सुनकर मन्त्रसिद्धि उस लकड़ीके सिंहके पास गया और उसे वास्तविक लकडीका शेर पाकर बहुत लज्जित हुआ । वह अपने साथियोंसे कहने लगा : मित्रो, इस लकड़ीके शेरमें प्रसगानुसार आप लोग तो अपनी विद्याका चमत्कार दिखला चुके है । अब मेरी विद्याका भी चमत्कार देखिए । अपने विद्या-बलसे मै इसे जीवित न कर दूँ तो मै मन्त्र-सिद्धि ही किस कामका ?

मन्त्रसिद्धिकी बातका अन्य मित्रोंने तो खयाल नहीं किया लेकिन वणिकपुत्रके मनमें उसकी बात समा गयी । उसने सोचा : कदाचित् मन्त्रसिद्धिने इस लकड़ीके शेरको जीवित कर दिया तो महान् अनिष्ट उपस्थित हो जानेकी आशंका है । इसलिए मुझे दूर रहकर ही इस घटनाका निरीक्षण करना चाहिए । क्योंकि मणि, मन्त्र और ओषधियोंका अचिन्त्य प्रभाव हुआ करता है । इस प्रकार सोचकर जैसे ही वणिक् पुत्र वहाँसे चलने लगा, उन दोनों मित्रोंने उससे पूछा . मित्र, कहाँ जा रहे हो ? वणिक् पुत्रने उत्तरमें कहा : मै लघुशंका करने जा रहा हूँ । अभी आता हूँ । इतना कहकर जैसे ही वणिक् पुत्र वहाँसे चला, उसे सामने एक वृक्ष दिखलाई दिया :

उस वृक्षकी छायामें मृग सो रहे थे, पत्तोंमें पक्षियोंने घोंसले बना रखे थे, खोखलोंमें कीड़े निवास कर रहे थे, शाखाओंपर वन्दर डेरा डाले हुए थे और भ्रमर जिसके कुसुम-रसका पान कर रहे थे ।

वणिक् पुत्रने इस वृक्षको देखकर कहा : वास्तवमें इस प्रकार वृक्षका ही जन्म सार्थक है, जो अपने सर्वांगसे अनेक प्राण-धारियोंको सुख दे रहा है । अन्य प्रकारके वृक्ष, जिनसे किसी भी सचेतनका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है, पृथ्वीके लिए केवल भार-स्वरूप ही है ।

---

१ सिंहम् । २ पञ्च० मि० स० २ । ३. विष्वग्विलुप्तच्छद पञ्च० । ४ विश्रब्ध इ० ।

एवंविधं वृक्षमारुह्य तत् सर्वमपश्यत्।

ततोऽनन्तरं मन्त्रसिद्धो ध्यानसिद्धो भूत्वा मन्त्रस्मरणं कृत्वा तस्मिन् [1]दारुमये जीवकलां[2] चिक्षेप। अथाऽसौ जीव(न्य)मानो भूत्वा कृतघनघोरघर्घराट्टहास उच्छलितचपेटः खदिराङ्गारोपनेत्र उच्छलितललितपुच्छच्छटाटोपोऽतिभयंकरस्त्रयाणामभिमुखो
५ भूत्वा यथासंख्यं निपातिताः[3] (तितवान्)। अतोऽहं ब्रवीमि – "वरं बुद्धिर्न" इत्यादि।

६ तदाकर्ण्य काम आह – भो मोह, सत्यमिदमुक्तं भवता। बुद्ध्या विना किंचिन्न भवति। परमेतत् पृच्छामि यत्त्वया सैन्यमेलनं कृतं तदिहानीतमस्ति नो वा? ततो मोहः प्राह – हे देव, मया सैन्यसमूहं कृत्वा परिवारं प्रत्येतदभिहितम् – अरे, यावदहं स्वाम्यादेशं गृहीत्वाऽऽगमिष्यामि, तावद्भवद्भिरत्रैव स्थातव्यम्। एवमुक्त्वा तव पार्श्वे
१० समागतोऽहम्। तदिदानीं तवादेशः प्रमाणम्।

एतद्वचनं श्रुत्वा परमं संतोषं गत्वा मदनस्तं[4] मोहमालिङ्ग्य[5] प्रोवाच – मोह, त्वमेवास्माकं सचिवः। सर्वमेतद्राज्यं त्वया रक्षणीयम्। तत् किमेतन्मां पृच्छसि? यत्ते प्रतिभासते तदवश्यं कर्त्तव्यं त्वया। उक्तं च यतः[6]

इस तरह विचार कर वणिक्पुत्रने अपनी निद्रा भंग कर दी और वृक्षपर चढकर मन्त्र-
१५ सिद्धिके क्रिया-काण्डको देखने लगा।

तदुपरान्त मन्त्रसिद्धि ध्यानारूढ़ होकर मन्त्रका जाप करने लगा और इस प्रकार उसने इस काष्ठमय शेरमें जीवन डाल दिया। शेर जीवित हो गया। उसने मेघकी तरह भयंकर गर्जन और अट्टहास किया। नेत्रोंको पलाशके अगारेकी तरह लाल किया। और अपनी एक ही उछालमें पूँछको हिलाता हुआ वह तीनोंके सामने आ गया और तीनोंको मारकर
२० गिरा डाला।

मोह कामसे कहने लगा : इसलिए मै कहता हूँ :

"विद्यासे बुद्धि अधिक गुरु है, महत् है। बुद्धिहीन मनुष्य उसी तरह नष्ट हो जाते है जिस प्रकार सिंह बनानेवाले तीन पण्डित।"

६. इस घटनाको सुनकर मकरध्वज कहने लगा : मोह, तुमने बिलकुल सच कहा है,
२५ बुद्धिके विना कुछ नहीं हो सकता। लेकिन मै यह जानना चाहता हूँ कि तुमने जो सैन्य-सम्मेलन किया है, उसे यहाँ लाये हो या नहीं?

उत्तरमें मोह कहने लगा : देव, मैंने सैन्य-सम्मेलन करके उससे यह कह दिया है कि 'मै स्वामीकी आज्ञा लेकर अभी आता हूँ। आप तबतक यहीं ठहरिए।' इस प्रकार कह-कर मैं आपके पास चला आया हूँ। अब आप जो आज्ञा दें, मै उसका पालन करनेके लिए
३० प्रस्तुत हूँ।

मोहकी बात सुनकर मकरध्वजको बड़ा सन्तोष हुआ। उसने मोहको अपनी छातीसे लगा लिया और कहने लगा : मोह, तुम्हीं तो हमारे मन्त्री हो। इस समस्त राज्यकी तुम्हें ही रक्षा करनी है। इसलिए इस समय मुझसे क्या पूछते हो? जो तुम्हें उचित मालूम दे, करो। नीतिज्ञोंने कहा भी है :

---

१ दारुमये कण्ठीरवरूपे। २ जीवनम्। ३. तांस्त्रीनपि निपातितवानित्यर्थः। ४ तमालिङ्ग्य ख०, ङ०। ५ –य तत प्रो– क०, ग०, घ०, च०। ६. पञ्च० मि० भे० ४१२।

"मन्त्रिणां भिन्नसन्धाने भिषजां सन्निपातके[1]।
कर्मणि युज्यते प्रज्ञा स्वस्थे वा[2] को न पण्डितः ॥ २० ॥"

तच्छ्रुत्वा मोहोऽवोचत् - देव[3], यद्येवं तदादौ यावत् सैन्यमागच्छति तावद्दूतः[4] प्रस्थाप्यते। उक्तं[5] च

"पुरा दूतः[6] प्रकर्त्तव्यः, पश्चाद् युद्धं[7] प्रकारयेत्। ५
तस्माद् दूतं प्रशंसन्ति नीतिशास्त्रविचक्षणाः ॥ २१ ॥
[8]दूतेन सबलं सैन्यं निर्बलं ज्ञायते ध्रुवम्।
सैन्यसंख्या च दूतेन दूतात् परबलं प्रभोः ॥ २२ ॥"

७. अथ कामः प्राह – हे मोह, युक्तमेतत् त्वयोक्तम्। युक्तो दूतः प्रक्रियते(येत)। स आह–देव, रागद्वेषाविमावाहूय दूतत्वं दीयते। कामः प्राह – हे मोह, रागद्वेषौ दूतत्वे १० कुशलौ भवतः[9] किम्? स मोह आह – देव, इमौ वञ्चयित्वा कावन्यौ दूतवरौ तिष्ठतः? [10]उक्तं च

"एतावनादिसंभूतौ रागद्वेषौ महाग्रहौ।
अनन्तदुःखसंतानप्रसूते[11] प्रथमाङ्कुरौ ॥ २३ ॥"

"जब राज्यपर गम्भीर संकट उपस्थित होता है तब मन्त्रियोंकी बुद्धिकी परीक्षा होती १५ है और सन्निपात होनेपर वैद्योंकी। स्वस्थ अवस्थामें तो सभी कुशल कहलाते हैं।"

मकरध्वजकी बात सुनकर मोहने कहा: महाराज, आप ठीक कह रहे है। फिर भी सेनाके आनेके पहले हमे दूत भेजना चाहिए। कहा भी है:

"पहले दूत भेजना चाहिए और फिर युद्ध करना चाहिए। नीतिशास्त्रके पण्डित दूतकी इसीलिए प्रशंसा करते है। २०

वस्तुतः दूतसे ही सेनाकी सबलता और निर्बलताका पता चलता है। और सेनाकी संख्याका ज्ञान भी दूतसे ही होता है। इसलिए दूत राजाके लिए बडा भारी बल है।"

७ मकरध्वजने कहा: मोह, तुमने बहुत उपयुक्त बात समझायी है। लेकिन दूत कार्य-कुशल होना चाहिए।

मोहने कहा: महाराज, राग और द्वेषको बुलवाइए और इन्हे दूतत्वका भार २५ समर्पित कीजिए।

काम कहने लगा: मोह, क्या राग और द्वेष सफलताके साथ दूतत्वका निर्वाह कर सकेंगे?

मोहने कहा: स्वामिन्, राग-द्वेषको छोड़कर और कौन प्रशस्त दूत हो सकता है? ये दूतत्वके लिए बहुत सुयोग्य है। कहा भी है: ३०

"राग और द्वेष अनादिकालीन महान् ग्रह है और ये ही अनन्त दुःख-परम्पराके प्रथम अंकुर है।" और

---

१ सन्निपातके विषमरोगे। २. को वा न– ख०, ङ०। ३ देव देव य– ग०, घ०। ४ दूत प्र०– घ०, ङ०। ५ तुलना–'शतमेकोऽपि संधत्ते प्राकारस्थो धनुर्धरः। तस्माद् दुर्गं प्रशंसन्ति नीतिशास्त्रविचक्षणाः॥" –पञ्च० मि० भे० २५२। ६ प्रकर्तव्य प–क०, ग०, घ०। प्रहेतव्य ङ०। ७ प्रकुर्वते ख०, च०। प्रकाशयेत् ग०। ८ पद्यमिदं क०, ख०, ग०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति। ९ 'किम्' ख०, ङ० पुस्तकयोर्नास्ति। १० ज्ञाना० २३।२१। ११ –माङ्कुरे क०, ग०, च०।

तथा च[1]

"स्वतत्त्वानुगतं चेतः करोति यदि संयमी ।
रागादयस्तथाऽप्येते क्षिपन्ति भ्रमसागरे ॥ २४ ॥"

तथा च[2]

५ "अयत्नेनापि जायेते चित्तभूमौ शरीरिणाम् ।
रागद्वेषाविमौ वीरौ ज्ञानराज्याङ्गघातकौ ॥ २५ ।

[3]क्वचिन्मूढं क्वचिद् भ्रान्तं क्वचिद् भीतं क्वचिद् रतम् ।
शङ्कितं च क्वचित् क्लिष्टं रागाद्यैः क्रियते मनः ॥ २६ ॥"

एवं रागद्वेषयोः पौरुषमाकर्ण्य तौ द्वावाहूय निजाङ्गवसनाभरणदानेन प्रभूत-
१० संमानौ कृत्वा वचनमेतदभिहितं मकरध्वजेन — अहो, [4]युवयोर्दूतत्वं किंचिदस्ति,
तत् कर्त्तव्यम् । अथ तौ रागद्वेषावूचतुः — करिष्यावोऽवश्यम् । देवः[5] कथयतु । ततः[6] स[7]
काम आचष्टे — अहो, तद्युवाभ्यां चारित्रपुरं गत्वा जिनेश्वरं प्रत्येवं वक्तव्यम् — भो जिन,
यदि त्वं सिद्ध्यङ्गनापरिणयनं करोषि तत् ते त्रैलोक्यमल्लस्याज्ञाऽस्ति । अन्यच्च [8]यदस्माकं
त्रिभुवनसारं रत्नत्रयं न ददासि तत्प्रभाते सकलसैन्यसमन्वितो रतिनाथः समा-
१५ गमिष्यति । एवमुक्त्वा तौ प्रस्थापयामास ।

"यदि संयमी अपनी चित्तवृत्तिको आत्माभिमुख करता है तो भी राग और द्वेष उसे भवसागरमें डुबोते हैं ।" तथा

"ये राग और द्वेष देहधारियोंके मनमें अनायास ही हो जाते है । ये महान् वीर है और ज्ञानराज्यके समूल विध्वंसक है ।

२० 'राग और द्वेष मनको कहीं भुलाते है, कहीं भ्रमाते है । कहीं डराते है, कहीं रुलाते है । कहीं शकित करते है और कहीं दुःख देते है ।"

कामने राग और द्वेषका इस प्रकारका विक्रम-वर्णन सुनकर उन्हें बुलवाया और अपने शरीरके वस्त्र और आभूषण देकर उनका खूब सम्मान किया । तदुपरान्त उनसे कहा : क्या आप लोग कुछ दूत-कार्य कर सकते है ? राग-द्वेष कहने लगे : देव, कहिए
२५ क्या आज्ञा है ? हम अवश्य उसका अनुपालन करेंगे ।

काम कहने लगा : यदि आप दूत-कार्य कर सकते है तो चारित्रपुरमें जाकर जिनेश्वरको कहिए कि : भो जिन, सिद्धि-अङ्गनाके साथ जो तुम विवाह करने जा रहे हो सो क्या तुम त्रैलोक्यके स्वामी कामदेवकी आज्ञा ले चुके हो ? साथ ही यह भी कहना कि वह त्रिभुवनके महान् मूल्यवान् तीन रत्न वापस दे दें । अन्यथा प्रभात समय कामदेव समस्त
३० सेनाके साथ उसके ऊपर चढ़ आयेंगे ।

इस प्रकार कामने राग-द्वेषको दूतत्वका भार सौंपकर अपने यहाँसे विदा कर दिया ।

---

१ ज्ञाना० २३।३ । २ " 'जायन्ते' रागादय स्वभावोत्थज्ञानराज्याङ्गघातका ॥" —ज्ञाना० ३।५ । ३. ज्ञाना० २३।७ । ४. युवयोरवश्य करणीय किंचिद् दूतत्वमस्तीति तात्पर्यम् । ५ देव ख०, च० । ६. 'ततः' ख०, ग०, घ०, ङ०, च० पुस्तकेषु नास्ति । ७. स आचष्टे ख०, ङ० । ८. यद्यस्माकं घ०, च० ।

८ अथ तौ तेन विषममार्गेण गच्छन्तौ यावज्जिननाथस्थानं संप्राप्तौ तावद्-तिक्षीणौ बभूवतुः।[1] ततस्तौ द्वारस्थितौ दृष्ट्वा संज्वलनोऽप्राक्षीत् – अहो किमर्थं जिन-पार्श्वे युवाभ्यामागमनं कृतम् ? अथ तावूचतुः

भो संज्वलन, स्वाम्यादेशात् दूतत्वार्थमावाभ्यामत्रागमनं कृतम्। ततः संज्व-लनो बभाषे – अहो भवत्वेवं परं किं तु (परं तु) युवाभ्यां वीरवृत्तिं त्यक्त्वा किमेतद् दूतत्वं कृतम् ? अथ तावूचतुः – हे संज्वलन, त्वं किंचिन्न वेत्सि। स्वाम्यादेशः सेवकेन कृत्योऽथवाऽकृत्यः परं तु कर्तव्यः, यतोऽन्यथा राजप्रियो न भवति[2]।

उक्तं च[3]

"यो रणं शरणं यद्वन्मन्यते भयवर्जितः।
प्रवासं[4] स्वपुरावासं स भवेद् राजवल्लभः॥ २७॥
न[5] पीड्यते यः क्षुधया निद्रया यो न पीड्यते।
न च शीतातपाद्यैश्च स भवेद् राजवल्लभः॥ २८॥
न[6] गर्वं कुरुते माने नापमाने च रुष्यति[7]।
स्वाकारं रक्षयेद् यस्तु स भवेद् राजवल्लभः॥ २९॥

---

८. राग और द्वेषको जिनराजके स्थानपर पहुँचनेके लिए अत्यन्त विषम मार्गसे जाना पड़ा और वहाँ पहुँचते-पहुँचते वे अत्यन्त क्षीण और निष्प्रभ हो गये। अन्तमें ये संज्वलनके पास पहुँचे और कहने लगे : मित्र संज्वलन, तुम हम लोगोको किसी प्रकार जिनराजके पास पहुँचा दो।

संज्वलन कहने लगा तुम लोग जिनराजके पास किसलिए आये हो ?

राग-द्वेष कहने लगे : अपने स्वामीकी आज्ञापालन करनेके लिए हम लोग यहाँ आये है।

संज्वलन फिर कहने लगा : पहले यह तो बताओ, तुमने अपनी वीर-वृत्ति छोड़कर यह दूतकार्य क्यो अङ्गीकार किया ?

राग-द्वेष बोले : संज्वलन, तुम बिलकुल मूर्ख हो ! स्वामीकी आज्ञा, चाहे वह अच्छी हो या बुरी, अवश्य शिरोधार्य होनी चाहिए। अन्यथा भृत्य राज-प्रिय नहीं हो सकता। नीतिकारोका कथन है कि

"जो भृत्य निडर होकर रणको भी शरण समझता है, और परदेशमें रहनेको स्वदेश-आवासके तुल्य मानता है, वह राजाके लिए स्नेह-पात्र होता है।

जो भृत्य क्षुधा, नींद, सर्दी और गरमीसे उद्विग्न नहीं होता है, वह राजाके लिए प्रेम-पात्र होता है।

जो सम्मानके प्रसगपर गर्व नहीं करता है, अपमानित होनेपर अपमानका अनुभव नहीं करता है और अपने बाह्य आकारका गोपन करता है, उससे राजा स्नेह करते है।

---

१ 'तत' आरभ्य 'तावूचतु' इत्यन्त पाठ च० पुस्तके नास्ति। २ अत्र 'सेवक' इत्यध्याहार्यम्। ३. पञ्च० मि० भे० ६२। ४. स्वसुरावास ग०। ५. "न क्षुधा पीड्यते यस्तु निद्रया न कदाचन। ...... स भृत्योऽर्हो महीभुजाम्।"–पञ्च० मि० भे० ९९। ६ "... स भृत्योऽर्हो महीभुजाम्॥" –पञ्च० मि० भे० ९८। ७. कुप्यति क०, ग०, घ०, ङ०, च०। तप्यते–पञ्च०।

ताडितोऽपि दुरुक्तोऽपि दण्डितोऽपि महीभुजा ।
यो न चिन्तयते पापं स[1] भवेद् राजवल्लभ. ॥ ३० ॥
[2]नाहूतोऽपि[3]समभ्येति द्वारे तिष्ठति य. सदा ।
पृष्ट. सत्य मित[4] ब्रूते स भवेद् राजवल्लभ. ॥ ३१ ॥
५ [5]युद्धकालेऽग्रग सद्यः सदा पृष्ठानुग पुरे ।
प्रभुद्वाराश्रितो हर्म्ये स भवेद् राजवल्लभः ॥ ३२ ॥
[6]प्रभुप्रसादज वित्तं सुपात्रे यो नियोजयेत् ।
वस्त्राद्य च दधात्यङ्गे स भवेद् राजवल्लभ. ॥ ३३ ॥"

अन्यच्च, भो संज्वलन, सेवाधर्मोऽयं महादुःसहो भवति । उक्तं च[7] यतः

१० "सेवया धनमिच्छद्भि. सेवकैः पश्य यत कृतम् ।
स्वातन्त्र्यं यच्छरीरस्य मूढैस्तदपि हारितम् ॥ ३४ ॥"

तथा च

"जीवन्तोऽपि मृता. पञ्च[8]श्रूयन्ते[8] प्राहुरेव विचक्षणा. ।
दरिद्री[9]व्याधितो मूर्ख. प्रवासी नित्यसेवक. ॥ ३५ ॥"

१५ अन्यच्च

जो भृत्य राजाके द्वारा ताड़ित होनेपर भी, दुतकारे जानेपर भी, दण्डित होनेपर भी उसके सम्बन्धमें पाप नहीं सोचता है, वह राजाका स्नेह-भाजन होता है ।

जो भृत्य बिना बुलाये भी सदा राज-द्वारमें उपस्थित रहता है और प्रश्न किये जाने-पर सत्य और परिमित बोलता है, वह राजाके लिए प्यारा होता है ।

२० जो भृत्य सदा युद्धकालमें राजाके आगे चलता है. नगरमें पीछे चलता है और भवनपर उसके दरवाजे उपस्थित रहता है, वह राजाका प्रियपात्र कहलाता है ।" साथ ही,

"जो भृत्य प्रभुके प्रसादसे प्राप्त हुए धनको सुपात्रमें लगाता है और वस्त्र आदिको शरीरमें पहनता है, वह राजाके स्नेहका पात्र कहलाता है ।" और भी,

सज्वलन, यह सेवा-धर्म अत्यन्त कठिन काम है । कहा भी है :

२५ "देखो, सेवा-वृत्तिसे धन कमानेवालोंने क्या नहीं किया ? सब कुछ किया । अरे, इन मूर्खोंने, और तो क्या, शरीरकी स्वतन्त्रता भी बेच डाली !" और भी

"विज्ञजन कहते है कि ये पॉच प्राणी जीवित होनेपर भी मृतकवत् है : दरिद्री, व्याधि-ग्रस्त, मूर्ख, प्रवासी और नित्य सेवा करनेवाला ।" तथा

---

१ " · स भृत्योऽर्हो महीभुजाम् ॥" –पञ्च० मि० भे० ९७ । २. "योऽनाहूत. स भृत्योऽर्हो महीभुजाम् ॥" –पञ्च० मि० भे० ९५ । ३ स्वमभ्येति क०, ख०, घ०, ङ०, च० । ४ मिद क०, ख०, ग०, घ०, च० । ५. पञ्च० मि० भे० ५८ । ६. " सुप्राप्त यो निवेदयेत् ।"–पञ्च० मि० भे० ५१ । ७ पञ्च०मि० भे० २८७ । ८. " · 'श्रूयन्ते किल भारते ।"–पञ्च० मि० भे० २८९ । ९. वाधितो ग० ।

"वर वन वरं भैक्ष्यं वरं भारोपजीवितम्।
पुंमां[1] विवेकनरत्वानां सेवया न च सपत्र[2] ॥ ३६ ॥"

तथा च

"वर[3] वन सिंहैगजेन्द्र[4]सेवितं
[6]द्रुमालय पक्वफलाम्बुभोजनम्।
तृणेषु[7] शय्या [8]वरजीर्णवल्कल
न सेवके राज्यपदाङ्कि[9] सुखम्[10] ॥ ३७ ॥"

तथा[11] च

"प्रणमत्युन्नतिहेतोर्जीवितहेतोर्विमुञ्चति प्राणान्।
दुःखीयति सुखहेतो को मूर्ख[12] सेवकादपर ॥ ३८ ॥"

अन्यच्च[13]

"भावै. स्निग्धैरुपकृतमपि द्वेषितामेति कश्चित्
साध्यादन्यैरपकृतमपि प्रीतिमेवोपयाति।
दुर्ग्राह्यत्वान्नृपतिवचसा नैकभावाश्रयाणां
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्य. ॥ ३९ ॥"

तथा च[14]

"मौनान्मूक प्रवचनपटुर्व्रातुलो[15] जल्पको वा,
धृष्टः पार्श्वे भवति च[16] तथा[17] दूरतश्च प्रमादी।

"वनवास उत्तम है, भिक्षा माँगना उत्तम है। भार ढोकर जीविका चलाना उत्तम है। किन्तु विवेकी पुरुषोंका यह कर्त्तव्य नहीं है कि वे सेवा-वृत्तिसे द्रव्य उपार्जित करें।" और

"सेवा करनेवालेको छोडकर अन्य कोई ऐसा मूर्ख नहीं है जो उन्नतिके लिए प्रणाम करता है, जीवनके लिए प्राणों तकका उत्सर्ग करता है और सुखके लिए दु:ख उठाता है।" इसी प्रकार

"यदि सेवक राजाओंकी विविधमुख भाव-भंगिमाको नहीं समझता है, तो वह कभी स्निग्ध भावसे काम करनेपर भी राजाका अप्रीति-पात्र बना रहता है और कभी राजाका अपकार करनेपर भी स्नेह-पात्र माना जाता है। इस तरह यह सेवा-धर्म इतना दुर्बोध है कि पहुँचे हुए योगी भी इसे ठीक तरहसे नहीं समझ पाते।" तथा

"सेवक यदि मौन रहता है तो लोग उसे गूँगा कहते है। यदि वह बात करनेमें चतुर है तो उसे बकवादी और असम्बद्ध प्रलापी कहा जाता है। यदि वह स्वामीके निकटमें रहता है तो धृष्ट कहलाता है और यदि दूर रहता है तो आलसी कहा जाता है। यदि

१ "वर व्याधिर्मनुष्याणा नाधिकारेण सपद.।।" –पञ्च० मि० भे० ३०३। २. सपदा ङ०। ३ पञ्च० अप० २५। पद्यमिद च० पुस्तके नास्ति। ४. व्याघ्र –ख०। ५ गजेन्द्र से–ग०। ६ द्रुमालये प–क०, ख०, ग०, घ०। ७ तृणानि श–हितो०, पञ्च०। ८ परिधानवल्कलम्–हितो०, पञ्च०। ९ पदाङ्कित सु–ग०। १० "बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम्।"–हितो०, पञ्च०। ११ हितो० सुहृद्भे० २३। १२ मूढ: से–ख०। १३. " . प्रीतये चोपयाति। नृपतिमनसा ॥"–पञ्च० मि० भे० ३०८। १४. 'धृष्टः पार्श्वे भवति च वसन् दूरतोऽप्यप्रगल्भ "–सुभाषितत्रि० ११४७। १५ वाचको ज–सुभाषितत्रि०। १६ भवति सतत दू–क०, ग०, ङ०। भ्रमति च सदा दू–ख०। १७ दूरतोऽपि प्र–ख०। दूरतश्चाप्रगल्भ क०, ग०, ङ०।

क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजात,
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥४०॥''

९. एवं तदाकर्ण्य संज्वलनोऽब्रवीत् – अहो, युक्तमेतदुक्तं भवद्भ्याम्। सेवाधर्म[2] एवंविधो [3]भवति। एवं तदिदानीं किं [4]प्रयोजनम् ? [5]तत् कथ्यताम्[6]। [7]अतस्तौ रागद्वेषा-
५ वूचतुः – भो संज्वलन, जिनेन सह दर्शनं यथा भवति तथा त्वं कुरु। एवं श्रुत्वा संज्व-लनः सचिन्तो भूत्वाऽब्रवीत् – अहो, करिष्याम्येवम्। परं तु युवयोर्जिनदर्शनं शुभतरं न भविष्यत्येवं मे प्रतिभासते। यतोऽयं जिनराजो मदननामाऽपि न सहते। तद्युवां दृष्ट्वा किंचिद् विघ्नं करिष्यति। तन्महाननर्थो भविष्यति। एवं तदाकर्ण्य तौ[8] रागद्वेषौ[9] कोपं गत्वा प्रोचतुः – भो संज्वलन, साधु साधु त्वमस्माकं सुहृत्, तत् त्वं च यद्येवं
१० वदसि तद् विज्ञाप्यं केन कर्त्तव्यम् ? तदभ्यागतेभ्यो वक्तुमेवं युज्यते ? उक्तं च

क्षमाशील है तो भीरु कहलाता है और अनुचित बातको सहन नहीं करता है तो कुलीन नहीं कहलाता है। इस प्रकार सेवा-धर्म इतना दुर्बोध है कि पहुँचे हुए साधु भी इसे विधिवत् नहीं समझ सके है।''

९. राग-द्वेषकी इस प्रकार युक्तिसंगत बात सुनकर संज्वलनने कहा : ''आपने सेवा-
१५ धर्मका बहुत वास्तविक चित्रण किया है। सचमुच सेवा-धर्म इसी प्रकार परम गहन है। पर यह तो बतलाइए, आप यहाँ किस प्रयोजनसे आये हुए है ?

संज्वलनकी बात सुनकर राग-द्वेष कहने लगे : सज्वलन, जिस तरह बने, आप हम लोगोंको जिनराजका साक्षात्कार करा दीजिए। हम उन्हींसे भेंट करने आये है।

सज्वलन राग-द्वेषकी बात सुनकर चिन्तामें पड़ गया और कहने लगा : मित्र, मै जिन-
२० राजके दर्शन तो करा सकता हूँ, लेकिन मुझे मालूम दे रहा है कि जिनराजसे भेंट करना आपके हितमें अच्छा न होगा। कारण यह है कि जिनराज कामका तो नाम ही नहीं सुनना चाहते है। फिर भेंट होनेपर कदाचित् उनके द्वारा आपका अहित हो गया तो बड़ा अनर्थ हो जायेगा।

संज्वलनकी बात सुनकर राग-द्वेष कहने लगे : मित्र, आपका कहना बिलकुल यथार्थ
२५ है। पर मित्र होकर भी जब आप इस प्रकारकी बात कह रहे है तो आप ही बतलाइए, फिर हम किससे प्रार्थना करें ? इस समय हम आपके अभ्यागत है और अभ्यागतोंकी प्रार्थना तो अवश्य ही सुनी जानी चाहिए। नीतिज्ञोंने कहा भी है :

प्रत्येक गृहस्थका यह कर्त्तव्य है कि भले ही उसके घर निम्न श्रेणीका आदमी क्यों न आये वह उसके साथ इस प्रकारका सुखद और सीमित व्यवहार अवश्य करे।

---

१ अत्र द्वितीयतृतीयपादयो क०, ग०, ङ० पुस्तकेषु पूर्वापरीकारो दृश्यते। २. सेवाविधि-रेव–च०। ३ वाक्यमिदं ग० पुस्तके नास्ति। ४. प्रयोजनीयम् च०। ५ 'तत् कथ्यताम्' च० पुस्तके नास्ति। ६. कथनीयम् क०, ग०, घ०। ७ तावूचतु ख०, ङ०। ८. त रा–च०। ९ 'तौ रागद्वेषौ' इति ख० पुस्तके नास्ति।

"एह्यागच्छ समाश्रयाऽऽसनमिदं कस्माच्चिराद् दृश्यसे
का वार्ता त्वतिदुर्बलोऽसि [1]कुशली प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात् ॥
[2]एवं नीचजनेऽपि कर्त्तुमुचितं प्राप्ते गृहे[3] सर्वदा
धर्मोऽय गृहमेधिना निगदित प्राज्ञैर्लघु' शर्मद ॥४१॥
दृष्टिं[4] दद्यान्मनो दद्याद्वाचं दद्यात् पुन पुन ।
उत्थाय चासन दद्यादेष धर्म सनातन ॥४२॥"

तथा च

"ते धन्यास्ते विवेकज्ञास्ते[5] [6]प्रशस्या हि भूतले ।
आगच्छन्ति गृहे येषां कार्यार्थे[7] सुहृदो जना ॥४३॥"

एतदाकर्ण्य संज्वलनोऽवोचत् – अहो, युष्मद्धितार्थमेतन्मयोक्तम् । तद्युवयोर्द्वेपार्थ-[8]मवगमितम् । तदहं स्वामिनं [9]पृष्ट्वाऽऽगमिष्यामि । [10]उक्तं च यतः

"लभ्यते भूमिपर्यन्तं समुद्रस्य गिरेरपि ।
न कथचिन्महीपस्य चित्तान्तं केनचित् क्वचित् ॥४४॥"

ततस्तावुक्तवन्तौ – हे संज्वलन, एवं भवतु । परं तु त्वया किंचिदावयोरशुभं न ग्राह्यम् । सर्वं क्षमितव्यम् । एवं श्रुत्वा संज्वलनोऽवोचत् – अहो युवाभ्यां गृहमेधिनां धर्म

आइए, आइए । इस आसनपर बैठिए । आप तो बहुत दिनोंमें दिख रहे है । क्या बात है ? आप तो बहुत दुर्बल हो गये है ? आपके दर्शनसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई ।

गृहस्थको चाहिए कि वह अभ्यागतकी ओर प्रसन्न नेत्रोंसे देखे, मन और वाणीकी प्रवृत्ति उसकी ओर लगाये और उठकर उसे आसन दे । स्वागतकी यही प्राचीन परम्परा है ।" और

"संसारमें वे पुरुष धन्य है, विवेकी है और प्रशसनीय है, जिनके घर मित्रजन किसी-न-किसी कार्यवश निरन्तर आते रहते है ।"

यह सुनकर सज्वलन कहने लगा : मित्र, मैने तो आपके हितकी बात बतायी थी । आपने उसे द्वेष-गर्भित समझ लिया । अस्तु, मै अभी स्वामीसे पूछकर आता हूँ । नीतिकारों-का कथन है :

"पृथ्वीका, समुद्रका और पहाडका तो अन्त मिल सकता है; पर राजाके चित्तका पता कोई कभी भी नहीं जान सका है ।"

राग-द्वेष कहने लगे : अच्छी बात है, मित्र, आप स्वामीके पास जाइए । पर यह तो बतलाइए, आप हमारी बातको अनुचित तो नहीं मान गये ? यदि यह बात हो तो हमें क्षमा कर दीजिए ।

राग-द्वेषकी बात सुनकर संज्वलन कहने लगा : मित्र, आपने तो यह गृहस्थधर्मकी

---

१. –सि च भवान् प्री–क०, ग०, घ०, च० । २. " " " 'एव ये समुपागतान् प्रणयिन प्रह्लाद-यन्त्यादरात् तेपा युक्तमशङ्कितेन मनसा हर्म्याणि गन्तु सदा ॥"–पञ्च० मि० स० ६७। ३ गृहे स–च० । ४ पद्यमिद क०, ख०, ग०, घ०, च० पुस्तकेपु नास्ति । ५ " ' सभ्या इह भूतले ।"–पञ्च० मि० भे० २८५। ६ प्रशंस्यास्ति भू– च० । ७ कार्यार्थं सु–ख० । ८ स्वार्थे णिजन्ताद् गम्लृधातो क्तप्रत्यये प्रयोगोऽयम् । अवगतमित्यर्थ । ९ दृष्ट्वाऽऽग–ख०, घ० । १० "पर्यन्तो लभ्यते भूमे समु " ।"–पञ्च० मि० भे० १२६ ।

७

एवंविधोऽभिहितस्तदत्र किमशुभं ग्रहीष्यामि ?

१०. एवमुक्त्वा संज्वलनो जिनपार्श्वे गत्वेदमवादीत् – देव देव, मकरध्वजस्य दूतयुगलमागतमस्ति, तद् यदि देवादेशो भवति तदभ्यन्तरमानेष्यामि। एवं तद्वचनं श्रुत्वा परमेश्वरेणोच्चलितकरेण 'आगन्तुं देहि' इत्युक्तम्।

५ एवं जिनवचनमाकर्ण्य संज्वलनो यावद् गच्छति तावत् सम्यक्त्वेनोक्तम् – अरे संज्वलन, किमेवं चिकीर्षसि ? यत्र निर्वेगोपशमादयो वीरास्तिष्ठन्ति तत्र रागद्वेषयोर्न[1] कुशलम्[2]। स[3] ब्रूते – अहो, भवत्वेवम् [4]परमनयोर्लोकत्रयविदितबलप्रसिद्धिः। तदेतौ केवलं दूतत्वार्थमागतौ। तदत्र किं कुशलाकुशलम् ?

एवं द्वयोर्वचनमाकर्ण्य परमेश्वरः प्रोवाच – अहो परस्परं किमनेन विवादेन ?

१० यतो मया प्रभाते ससैन्यमदनो [5]बन्धनीयोऽस्ति। तद्दूतयुगलस्याभ्यन्तरे प्रवेशो दीयते (येत) किं बहुविस्तरेण ? तच्छ्रुत्वा संज्वलन [6]उभावभ्यन्तरं प्रवेश्य जिनसकाशमानीतवान्। अथ जिनेन्द्रं पीठत्रयाधिष्ठितं शुभ्रातपत्रत्रयोपशोभितं चतुःषष्टिचामर[7]वीज्यमानं भामण्डलतेजसोपशोभितं प्राप्तानन्त[8]चतुष्टयं कल्याणातिशयोपेतं दृष्ट्वा नमश्चक्रतुः। [9]तयोर्मध्ये एकेन नमस्कारः कृतः।

१५ व्याख्या भर की है। इसमें बुराईकी क्या बात ?

१०. इस प्रकार कहकर संज्वलन जिनराजके पास गया और कहने लगा : देव देव, कामके दो दूत आये हुए है। यदि आप आज्ञा दें तो उन्हें अन्दर ले आऊँ।

संज्वलनकी बात सुनकर परमेश्वरने हाथके संकेतसे उससे कहा कि आने दो।

जिनराजकी बात सुनकर संज्वलन राग-द्वेषको बुलाने जा ही रहा था कि इतनेमें सम्यक्त्व-

२० ने कहा : अरे संज्वलन, यह क्या कर रहे हो ? जहाँ निर्वेद और उपशम आदि वीर योद्धा मौजूद है वहाँ राग-द्वेषकी किस प्रकार कुशल रह सकती है ?

संज्वलनने कहा : जो हो, परन्तु राग-द्वेषका बल भी तो तीनों लोकमें प्रसिद्ध है। फिर अभी तो ये केवल दूत-कार्य ही सम्पादित करने आये है। इसलिए इस समय इनकी कुशलता और अकुशलताका तो कोई प्रश्न ही नहीं है।

२५ सज्वलन और सम्यक्त्वकी इस चर्चाको सुनकर परमेश्वर जिनराज कहने लगे : अरे, आप लोग आपसमें क्यों विवाद कर रहे है ? प्रातः मुझे स्वयं सैन्यसहित मकरध्वजको पराजित करना है। इसलिए अधिक क्या, दोनों दूतोंको भीतर आने दीजिए।

जिनराजकी आज्ञा पाते ही संज्वलन राग-द्वेषको जिनराजके पास ले आया।

वहाँ आकर राग-द्वेषने देखा कि जिनराज सिंहासनपर विराजमान है, उनके सिरपर

३० तीन शुभ्र छत्र लटक रहे है, चौसठ चामर ढुर रहे है। भामण्डलके प्रभा-पुजसे वह दमक रहे है। अनन्त चतुष्टयसे सुशोभित है और कल्याणातिशयोंसे सुन्दर है। जिनराजका इस प्रकारका वैभव देखकर राग-द्वेष एकदम चकित हो गये। उन्होंने जिनराजको प्रणाम किया और उनके पास बैठ गये।

---

१ देव-आदेशो भ–च०। २. रागद्वेषयोः कुशलम् ? च०। ३. सोऽब्रवीत् ड०। ४. –मेनयोर्लो–ग०। ५ वधनीयोऽस्ति च०। ६ उभाम्यन्तरं प्र–च०। ७. चामरैर्वा–ख०। ८. अनन्तदर्शनज्ञानसुखवीर्यात्मकमनन्तचतुष्टयम्। ९ द्वयोर्जिनेन्द्रनमस्कारानन्तर वाक्यमिदमसगतमिवाभाति।

अथ तौ समीपमुपविश्य प्रोचतुः – भो स्वामिन्, अस्मत्स्वाम्यादेशः श्रूयताम्। यान्यस्माकं त्रिभुवनसाराण्यनर्घाणि[1] रत्नानि त्वयाऽऽनीतानि तानि सर्वाणि दातव्यानि। अन्यच्च, यदि त्वं सिद्ध्यङ्गनापरिणयनं करोषि तत्ते त्रैलोक्यमल्लस्य आज्ञास्ति? अन्यच्च, हे देव, यदि त्वं सुखमिच्छसि तर्हि [2]कामं सेवित्वा सुखेन तिष्ठ। यतस्तस्य प्रसादात् कस्यचिद्वस्तुनोऽप्राप्तिर्नास्ति। उक्तं च ५

"कर्पूरकुङ्कुमागुरुमृगमदहरिचन्दनादिवस्तूनि।
[3]मदनो [4]यदा [5]प्रसन्नो भवन्ति सौख्यान्यनेकानि ॥४५॥"

तथा च

"धवलान्यातपत्राणि वाजिनश्च मनोरमाः।
सदा मत्ताश्च मातङ्गा [6]प्रसन्नो मदनो यदा ॥४६॥" १०

तत् त्वयाऽवश्यं तस्य सेवा क्रियते(येत)। तथा च

सेवा यस्य कृता सुरासुरगणैश्चन्द्रार्कयक्षादिकैः
गन्धर्वादिपिशाचराक्षसगणैर्विद्याधरैः किंनरैः।
पाताले धरणीधरप्रभृतिभिः स्वर्गे सुरेन्द्रादिकैः
ब्रह्मा(वेधो-)विष्णुमहेश्वरैरपि तथा चान्यैर्नरेन्द्रैरपि ॥३॥ १५

तदुपरान्त वे जिनराजसे कहने लगे : स्वामिन्, हमारे स्वामीने जो आदेश दिया है उसे सुन लीजिए :

उनका आदेश है कि आप जो त्रिभुवनके सारभूत अमूल्य रत्न हमारे स्वामीके ले आये है उन्हे वापस कर दें। दूसरे, आप जो सिद्धि-अंगनाके साथ विवाह कर रहे है इसमें त्रिलोकीनाथ कामकी आज्ञा आपको नहीं मिली है। तीसरे, यदि आप सुखी रहना चाहते २० हो तो कामकी सेवा करो और सुखसे रहो। क्योंकि कामदेवके प्रसन्न रहनेपर संसारमें कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती है। कहा भी है :

"यदि कामदेव प्रसन्न है तो सहज ही कपूर, कुंकुम, अगुरु, कस्तूरी और हरिचन्दन आदि अनेक वस्तुएँ प्राप्त हो जाती है। और अनेक प्रकारके सुख भी।" तथा च

"कामके प्रसन्न होनेपर धवल छत्र, मनोरम अश्व और मदोन्मत्त हाथी—सब कुछ प्राप्त २५ रहते है।"

राग-द्वेष कहने लगे : इसलिए जिनराज, आपको उस कामदेवकी सेवा अवश्य करनी चाहिए, जिसकी सुरासुर-गण, चन्द्र, सूर्य, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, विद्याधर और किन्नर सेवा किया करते है, जो पाताल-लोकमें शेषनागके द्वारा पूजित होता है; स्वर्गमें देव और इन्द्र जिसकी पूजा करते हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और अन्य राजा आदि भी ३० जिसकी सम्माननामें व्यस्त रहते है।

---

१ ण्यनर्घ्याणि र–क०, ग०, घ०। २ मार से–क०, ख०, ग०, ङ०। ३ मदने क०, ग०, घ०, ङ०। ४ यदि प्र–घ०। ५. प्रसन्ने क०, ग०, घ०, ङ०। ६ " मातङ्गा प्रसन्ने सति भूपतौ॥"–यश० मि० मे० ४३।

तदवश्यं तेन मकरध्वजेन सह मैत्री करणीया, न च शत्रुत्वम्। यतोऽयं मदनो महाबलवान् तत् कदाचिदवसरे क्रुद्धो भविष्यति, तदा किंचिन्न गणयिष्यति[1]। अन्यच्च

[2]पातालमाविशसि यासि सुरेन्द्रलोक-
मारोहसि क्षितिधराधिपतिं सुमेरुम्।
५ मन्त्रौषधैः प्रहरणैश्च [3]करोषि रक्षां
मारस्तथाऽपि नियतं प्रहणिष्यति त्वाम् ॥४॥

तथा च

एष[4] एव स्मरो वीरः स चैकोऽचिन्त्यविक्रमः।
अवज्ञयैव येनेदं पादपीठीकृतं जगत् ॥५॥
१० [5]एकाक्यपि जयत्येष जीवलोकं चराचरम्।
मनोभूर्भङ्गमानीय स्वशक्त्याऽव्याहतक्रमः ॥६॥

तथा[6] च

पीडयत्येव निःशङ्को मनोभूर्भुवनत्रयम्।
प्रतीकारशतेनापि यस्य भङ्गो न भूतले ॥७॥

१५ अन्यच्च[7]

कालकूटादहं मन्ये स्मरसंज्ञं महाविषम्।
स्यात्पूर्वं सप्रतीकारं [8]निष्प्रतीकारमुत्तरम् ॥८॥

इतना ही नहीं, आप उसके साथ मित्रता स्थापित कर लें। उसके साथ शत्रुताका भाव तो आपको कदापि न रखना चाहिए। कारण, काम महान् बलवान् है। कदाचित् वह तुमसे २० रुष्ट हो गया तो पता नहीं क्या कर डालेगा?

"और कामके क्रुद्ध हो जानेपर आप पातालमें प्रवेश करें, सुरेन्द्रलोकमें जायें, नगाधिपति सुमेरुपर चढ़ें और मन्त्र, ओषधि तथा आयुधोंसे भी अपनी रक्षा करें, पर आप अपनी रक्षा नहीं कर सकेंगे और काम निश्चयसे तुम्हारे ऊपर प्रहार करेगा।" और

"यह काम ही एक इस प्रकारका वीर और अचिन्त्य पराक्रमी है, जिसने जगत्को २५ अनायास ही अपने पैरोंसे रौंद डाला है। तथा इसने बिना किसी बाधाके अकेले ही अपनी शक्तिसे चराचर संसारको छिन्न करके अपने अधीन कर लिया है।" और

"केवल यह एक काम ही है, जो निःशङ्क होकर तीनों लोकको पीडित करता है और भूलोकमें सैकड़ों उपाय करनेपर भी जिसका कोई विनाश नहीं कर सका है।" तथा

एक आलोचककी दृष्टिमें तो यह काम कालकूटसे भी अधिक महत् विष है। उनका ३० कहना है कि इन दोनोंमें-से कालकूटका तो प्रतीकार भी हो सकता है, लेकिन द्वितीय कामविषका कोई प्रतीकार नहीं है।

---

१ गणयति ख०, ग०, घ०, ङ०, च०। २ तुलना—"पातालमाविशसि यासि नभो विलङ्घ्य दिग्मण्डल भ्रमसि मानमचापलेन। "—सुभाषितत्रि०.३।७०। ३. करोति र—च०। ४ "एक एव स्मरो "—ज्ञाना० ११।१८। ५ ज्ञाना० ११।१९। ६. ज्ञाना० ११।२०। ७. ज्ञाना० १२।२१। ८. र मप्रतीकारमु—ग०।

न[1] पिशाचोरगा रोगा न दैत्यग्रहराक्षसाः।
पीडयन्ति तथा लोकं यथाऽयं मदनज्वरः ॥९॥

[2]न हि क्षणमपि [3]स्वस्थं चेतः स्वप्नेऽपि जायते।
मनोभवशरव्रातैर्भिद्यमानं शरीरिणाम् ॥१०॥

[4]जानन्नपि न जानाति पश्यन्नपि न पश्यति।
लोकः कामानलज्वालाकलापकवलीकृतः ॥११॥

[5]अन्यच्च

सिक्तोऽप्यम्बुधरव्रातैः प्लावितोऽप्यम्बुराशिभिः।
न हि त्यजति संतापं कामवह्निप्रदीपितः ॥१२॥

[6]तथा च

तावद्धत्ते प्रतिष्ठा परिहरति मनश्चापलं चैव[7] तावत्
तावत्सिद्धान्तसूत्रं स्फुरति हृदि परं विश्वतत्त्वैकदीपम्।
क्षीराकूपारवेलावलयविलसितैर्मानिनीनां कटाक्षै-
र्यावन्नो हन्यमानं कलयति हृदयं दीर्घदोलायतानि ॥१३॥

[8]यासां सीमन्तिनीना कुरवकतिलकाशोकमाकन्दवृक्षाः
प्राप्योच्चैर्विक्रियन्ते ललितभुजलताऽऽलिङ्गनादीन् विलासान्।
तासा पूर्णेन्दुगौर मुखकमलमलं वीक्ष्य [9]लीलालसाढ्यं
को योगी यस्तदानीं कलयति कुशलो मानसं निर्विकारम् ॥१४॥

पिशाच, साँप, रोग, दैत्य, ग्रह और राक्षस ससारमें इतनी पीड़ा नहीं पहुँचाते, जितनी यह मदनज्वर पहुँचाता है।

जिन देहधारियोका मन कामके बाणोंसे भिदा हुआ है वह स्वप्नमें भी स्वस्थ नहीं रह सकता।

कामाग्निकी ज्वालाओंमें जलता हुआ ससार जानता हुआ भी नहीं जानता है और देखता हुआ भी नहीं देखता है।" और

"कामाग्निसे जलते हुएके सन्तापको मेघोंकी वर्षा और समुद्रका प्लावन भी शान्त नहीं कर सकता।" तथा

"मनुष्यकी तभीतक प्रतिष्ठा रहती है, तभीतक मन स्थिर रहता है, और तभीतक हृदयमें विश्वतत्त्व-दीपक सिद्धान्त-सूत्र स्फुरित रहता है जबतक उसका हृदय क्षीर-सागरके तटवर्ती तरङ्ग-विलासोके सदृश स्त्रियोके कटाक्षोंसे आहत होकर आन्दोलित नहीं होता है।

जिनराज, ये वे स्त्रियाँ है जिनके सुन्दर भुज-लताओंके आलिंगन-विलासको प्राप्त करके कुरबक, तिलक, अशोक और माकन्दवृक्ष भी प्रचुर रूपसे विकारी हो जाते है। तब ऐसा कौन कुशल योगी है जो इनके पूर्णचन्द्रके समान निर्मल और सलील मुख-कमलको देखकर अपने मनको निर्विकारी रख सके।" तथा

---

१ ज्ञाना० ११।२८। २. ज्ञाना० ११।२६। ३. स्वच्छ चे--ग०, ड०। ४ ज्ञाना० ११।२७। ५ ज्ञाना० ११।१३। ६. ज्ञाना० १४।२९।• ७ चैष ता- ज्ञाना०। ८ ज्ञाना० १४।३८। ९ --ारसाढ्य ज्ञाना०।

तथा च

इह हि मदनकञ्जं हावभावालसाढ्यं
मृगमदललिताङ्कं विस्फुरद्-भ्रूविलासम् ।
क्षणमपि रमणीनां लोचनैर्लक्ष(क्ष्य)माणं
५ जनयति हृदि कम्पं धैर्यनाशं च पुंसाम् ॥१५॥

तत्किमनेन बहुप्रोक्तेन यदि त्वमात्मनः सुखमिच्छसि तत् तस्य मकरध्वजस्य सेवां कुरु । किमेतत् सिद्धयङ्गनामात्रं परिणेष्यसि ?

११. ततो जिननाथः प्रोवाच—अरे, अज्ञानिनौ, किं जल्पथः ? तस्याधमस्य सेवाऽस्माकं युक्ता न भवति ।

१० उक्तं च

"वनेऽपि सिंहा मृगमांसभोजिनो बुभुक्षिता नैव तृणं चरन्ति ।
एवं कुलीना व्यसनाभिभूता न नीचकर्माणि समाचरन्ति ॥४७॥"

अन्यच्च

"ययोरेव समं शील ययोरेव समं कुलम् ।
१५ तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥४८॥"

तथा च

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतम् ।
ययोरेव गुणैः साम्यं तयोर्मैत्री भवेद् ध्रुवम् ॥१६॥

"हाव-भावोंसे पूर्ण, भालकी-कस्तूरीसे अलंकृत, भ्रुकुटि-विलाससे सुशोभित तथा लोल
२० लोचनोंसे विराजित रमणियोंके मुखका क्षण-मात्र दर्शन तक पुरुषोंके हृदयमें कम्प उत्पन्न करता है और उन्हें अधीर बना देता है।"

राग-द्वेष इस प्रकार अन्तमें कहने लगे : जिनराज हम अधिक क्या कहें ? यदि आप आत्मतोष चाहते है तो महाराज मकरध्वजकी सेवा कीजिए। सिद्धि अगनाको विवाहनेके चक्करमें क्यों पडे है ?

२५ ११. जिनराज राग-द्वेषकी बात सुनकर कहने लगे : अरे, तुम लोग कितने अज्ञानी हो जो इस प्रकारकी बात कर रहे हो ? क्या हम उस अधम कामकी सेवा कर सकते है ? कहा भी है :

"जिस तरह वनमें मृग-मासको खानेवाले सिंह भूखे होनेपर भी तृण नहीं खाते हैं उसी प्रकार आपत्तियोंके आनेपर भी कुलीन पुरुष नीच-कर्म नहीं करते है ।" और

३० "जिनका शील और कुल समान कोटिका है उन्हींमें मित्रता और विवाह होता है। लघु और महान्‌में नहीं ।" तथा

"जिनका द्रव्य, शास्त्राभ्यास और गुण एक-से होते है, उनमें ही निश्चय रूपसे मित्रता हो सकती है ।"

---

१. ज्ञाना० १४।३७ । २–वीक्ष्यमाण ग० । ३. त्व सुखमि–च० । ४. "वनेऽपि माम" । ....भूता न नीतिमार्गं परिलङ्घयन्ति ॥"–पञ्च० लब्ध० ७१ । ५ "ययोरेव सम वित्त । तयोर्विवाहः सख्य च न तु ॥"–पञ्च० काकोलू० २०८ ।

तत्किमेतज्जल्पथः[1] हरिहरब्रह्मादीनां कातराणां जयनं कथयन्तौ न लज्जेथे ? तदेवं शूरधर्मो न भवति। अथवा शूरतरा ये भवन्ति ते भटनटभण्डवैतालिकवत् याचनां न कुर्वन्ति। तदसौ मदनो युवाभ्यामेवं शूरत्वेन वर्णितस्तत्कथमसौ रत्नानि रङ्कवद् याचते ? तदनेन प्रकारेण रत्नानि न दास्यामि। तथा[2] च

> यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति। ५
> यो मे प्रतिबलो लोके स रत्नाधिपतिर्भवेत्॥ १७॥

अन्यच्च, ये पूर्वं भोगा भवद्भ्यां कथितास्ते सर्वे मया अग्रावेव लक्षिताः सन्ति, न च शाश्वता भवन्ति ते।

तथा[3] च

> अर्थाः पादरजःसमा गिरिनदीवेगोपमं यौवनं, १०
> मानुष्यं जलबिन्दुलोलचपलं फेनोपमं जीवितम्।
> भोगाः स्वप्नसमास्तृणाग्निसदृशं पुत्रेष्टभार्यादिकं
> सर्वं च क्षणिकं न शाश्वतमहो त्यक्तं च तस्मान्मया॥ १८॥

अन्यच्च[4]

> वपुर्विद्धि रुजाक्रान्तं जराक्रान्तं च यौवनम्। १५
> ऐश्वर्यं च विनाशान्तं[5] मरणान्तं च जीवितम्॥ १९॥

जिनराज कहते गये : और जो तुमने हरि, हर, ब्रह्मा आदिकी कामदेवके द्वारा पराजित होनेकी बात बतलायी है और जो तुम यह कह रहे हो कि कामदेव मुझे भी पराजित कर डालेगा सो तुम्हें अपनी इस बातपर लज्जित होना चाहिए। उन्हें जीतनेमें कामकी कोई बहादुरी नहीं है। फिर, जो बहादुर होते हैं वे भट, नट, भाँड और स्तुति-पाठकोंके २० समान याचना नहीं करते हैं। जब तुम कामकी शूर-वीरताका इस प्रकार वर्णन करते हो तो वह क्यों रंकके समान रत्नोंकी माँग करता है ? इस प्रकारकी याचनासे उसे रत्न नहीं मिल सकते।

तुम यह निश्चय कर लो, जो संग्राममें मेरा सत्त्व चूर करके मुझे पराजित करेगा या संसारमें मेरा समानधर्मा है, वही रत्नोंका स्वामी हो सकता है। २५

अथ च, जिन भोगोंकी ओर तुमने मुझे ललचाना चाहा है उनकी मैंने प्रारम्भमें ही परीक्षा कर ली है। और वे शाश्वतिक भी नहीं हैं।

"मुझे धन पैरकी धूलिके समान मालूम हुआ। यौवन पर्वतसे गिरनेवाली नदीके वेग-जैसा प्रतीत हुआ। मानुष्य जलबिन्दुके समान चंचल और लोल मालूम हुआ तथा जीवन फेन-जैसा अस्थिर। भोग स्वप्नके समान निःसार और पुत्र एवं प्रिय स्त्री आदि तृणाग्निके ३० सदृश क्षणनश्वर मालूम हुए। इस प्रकार मैंने सबको क्षणनश्वर और अशाश्वत समझकर छोड़ दिया है।" तथा

"शरीर रोगसे आक्रान्त है और यौवन जरासे। ऐश्वर्यके साथ विनाश लगा है, और जीवनके साथ मरण।

---

१. शूरत्वेन–च०। २ "तुलना लोके स मे भर्त्ता भविष्यति॥"–दुर्गासप्तशती ५। म० १२०। ३ "अर्था पादरजोपमा "जीवितम्। धर्मं यो न करोति निन्दितमति स्वर्गार्गलोद्घाटन पश्चात्तापयुतो जरापरिगत शोकाग्निना दह्यते॥"–हितोप० मित्रला०। ४ ज्ञाना० अनित्यभा० १०। ५ विनाशान्तं मरणान्तं च जी–ग०, घ०।

स्त्री या[1] सा नरकद्वारं दुःखानां खानिरेव च।
पापबीजं कलेर्मूलं कथमालिङ्गनादिकम् ॥ २० ॥

वरमालिङ्गिता क्रुद्धा चलल्लोलाऽत्र सर्पिणी।
न पुनः कौतुकेनापि नारी नरकपद्धतिः ॥ २१ ॥

५ तथा[3] च

किंपाकफलसंभोगसंनिभं विद्धि[4] मैथुनम्।
आपातमात्ररम्यं स्याद् विपाकेऽत्यन्तभीतिदम् ॥ २२ ॥

अनन्तदुःखसंताननिदानं तद्धि मैथुनम्।
तत्कथं[5] सेवनीयं स्यान्महानरककारकम् ॥ २३ ॥

१० [6]स्वतालुरक्तं किल कुक्कुराधमैः
प्रपीयते यद्वदिहास्थिचर्वणात्।
तथा विटैर्विद्धि वपुर्विडम्बनै-
र्निपेव्यते मैथुनसंभवं सुखम् ॥ २४ ॥

तत्किमनेन[7] भूरिप्रोक्तेन। [8]अवश्यमहं [9]सिद्ध्यङ्गनापरिणयनं करिष्यामि, येन
१५ शाश्वतसुखप्राप्तिर्भविष्यति[10]। अन्यच्च

जब स्त्री नरकका द्वार है, दुःखोंकी खानि है, पापोंका बीज है, कलिका मूल है, फिर उससे आलिंगन आदि कैसे सम्भव है?

चपल जिह्वावाली क्रुद्ध सर्पिणीका आलिंगन उचित है। लेकिन नरक-पद्धति नारीका कौतुकवश भी आलिंगन करना उचित नहीं है।" और

२० "मैथुन धतूराके फलके समान प्रथमतः रम्य और परिणाममें अत्यन्त भयंकर है। अनन्त दुःख-परम्पराका मूल है और नरकका महान् कारण है। कोई भला आदमी इसका सेवन कैसे कर सकता है?

जिस प्रकार कुत्ता हड्डी चबाकर अपने तालुका रक्त पीते है, उसी प्रकार ढोंगी विट भी मैथुनके सुखका अनुभव करते है।"

२५ इसलिए इस सम्बन्धमें अधिक कहनेकी जरूरत नहीं है। मै अवश्य ही सिद्धि-अंगना-के साथ विवाह करूँगा और इस प्रकार ही मुझे शाश्वत सुख मिल सकेगा। और

---

१ तुलना– "दु खखानिरगाधेयं कलेर्मूलं भयस्य च। पापबीज शुचा कन्द श्वभ्रभूमिर्नितम्बिनी ॥" –ज्ञाना० १२।४९। २. ज्ञाना० १२।५। ३ ज्ञाना० ११।१०। तुलना– 'किंपाकफलसमान वनिता-सभोग-संभवं सौख्यम्। आपाते रमणीय प्रजायते विरसमवसाने ॥" –ज्ञाना० १३।८। ४ तद्धि मै– ख०, ङ०, च०। ५ "कथं तदपि सेवन्ते हन्त रागान्धबुद्धयः ॥"–ज्ञाना० १३।१३। ६. ज्ञाना० १३।१७। ७. किमन्येन भू–ग०। ८ –श्यमिह सि– च०। ९. सिद्धे परि–ख०। १०. –र्भवति क०, ग०, घ०, ङ०।

समोहं सशरं कामं ससैन्यं कथमप्यहम्।
प्राप्नोमि यदि संग्रामे वधिष्यामि न संशयः॥ २५॥

१२ एवं जिनवचनमाकर्ण्य रागद्वेषौ[1] कोपं गत्वा प्रोचतुः–भो जिनेश्वर, किमेतन्मुखचापल्याद[2]प्रस्तुतं वदसि[3]? सतां स्वयमेव स्वप्रशंसमाजल्पनं न युक्तम्। तावत् त्वं[4] शाश्वतं सुखमिच्छसि यावन्मदनबाणभिद्यमानो न भवसि। उक्तं च यतः ५

"प्रभवति[5] मनसि विवेको विदुषामपि शास्त्रसम्भवस्तावत्।
न पतन्ति बाणवर्षा यावच्छ्रीकामभूपस्य॥ ७९॥"

एवं दूतवचनमाकर्ण्य संयमेनोत्थाय द्वयोरर्द्धचन्द्रं दत्त्वा द्वाराद्बहिर्निष्कासितौ।

इति श्रीठक्कुरमाइन्ददेवस्तुतजिन(नाग)देवविरचिते स्मरपराजये सुसंस्कृतबन्धे दूतविधिसंवादो नाम द्वितीयः परिच्छेदः॥ २॥ १०

मुझे समरागणमें यदि मोह, बाण और सैन्यसहित काम मिल गया तो मैं उसे निश्चयसे निर्वीर्य कर दूँगा।

१२. जिनराजकी यह बात सुनकर राग-द्वेष बड़े क्रुद्ध हुए और कहने लगे : हे जिनराज, इस प्रकार मुँह चलाकर क्या बकवाद कर रहे हो? महापुरुष कभी भी आत्म-प्रशंसा नहीं करते हैं। फिर जबतक काम तुम्हें अपने बाणोंसे नहीं भेदता है, तभीतक तुम शाश्वतिक सुखकी कल्पनामें तन्मय हो रहे हो। कहा भी है: १५

"विद्वानोंके मनमें तभीतक विवेक जागृत रहता है और शास्त्रज्ञान भी तभीतक चमकता है, जबतक उनके ऊपर कामदेवकी बाण-वर्षा नहीं होती।"

दूत इस प्रकार कहकर चुप ही हुए थे कि संयम उठा और दोनोंको गर्दनिया देकर दरवाजेसे बाहर कर दिया। २०

इस प्रकार ठक्कुर माइन्ददेवके द्वारा प्रशंसित जिन (नाग) देवविरचित स्मर-पराजयमें दूतविधि-संवाद नामक द्वितीय परिच्छेद सम्पूर्ण हुआ।

---

१. रागद्वेषौ कामपक्ष वहन्तौ कोप–ख०। २ –दपश्रुत व–ख०। ३. वाक्यमिदं च० पुस्तके नास्ति। ४ तावत्त्वं जल्प, शाश्वतसुखाभिलाषं कुरु या–ख०। ५ तुलना–"प्रभवति" 'शास्त्रसंभवस्तावत्।, निपतन्ति दृष्टिविशिखा यावन्नेन्दीवराक्षीणाम्॥"–प्रबोधच० १।११।

[तृतीय परिच्छेद]

१. अथ तौ दूतौ क्रुद्धयमानौ (क्रुद्धयन्तौ) कामपार्श्वे समागत्य प्रणम्योपविष्टौ। ततः कामः प्राह – अहो भवद्भ्यां तत्र गत्वा जिनं प्रति किमभिहितम्, किमुत्तरं ददौ (दे)तेन जिनेन, कथंभूता तस्य जिनस्य युद्धसामग्री ? एवं तेन कामेन पृष्टौ तौ दूतावुक्तवन्तौ

अहो देव, किमेतदावां पृच्छसि ? स जिनेन्द्रोऽगम्योऽलक्ष्यो महाबलवान्। न किंचिन्मन्यते। आवाभ्यां दण्डप्रभेदसामदानप्रकारैः शिक्षितः, परं निजबलोद्रेकात् किंचिन्न गणयति। अन्यच्च, तेनेदमभिहितम्–अरे, किमेतज्जल्पथः ? तस्याधमस्य सेवामहं न करोमि। यतो मया प्रातः[1] ससैन्यमदनो बन्धनीयोऽस्ति।

तच्छ्रुत्वा शल्यवीरोऽब्रवीत् – अहो, किमेतदसत्यं वदथः ? यद्येवं जिनेश्वरेणोक्तं तदस्मदीयसैन्यबाह्यौ भवन्तौ ? यतो युवयोः किंचित् पराभवमात्रं न दृश्यते ?

अथ तावूचतुः – भो शल्यवीर, पराभवमात्रस्याऽसंभवार्थं कारणमेकमास्ते। उन्नतचेतसो ये केचन भवन्ति ते स्वल्पान्न घ्नन्ति। उक्तं च यतः

"तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वतः।
[2]समुच्छ्रितानेव तरून् प्रबाधते महान् महद्भिश्च करोति विग्रहम् ॥१॥"

---

१. संयमसे अपमानित होनेपर राग और द्वेष बड़े क्रुद्ध हुए। वे वहाँसे चलकर सीधे कामदेवके पास पहुँचे और उसे प्रणाम करके बैठ गये।

राग-द्वेषके पहुँचते ही कामने पूछा : हाँ भाई, तुमने जिनराजके पास जाकर क्या कहा, जिनराजने क्या उत्तर दिया और उसकी युद्ध-सामग्री किस प्रकारकी है ?

कामदेवके इस प्रकार पूछनेपर राग-द्वेष कहने लगे : राजन्, यह बात हमसे न पूछिए। जिनराज अत्यन्त अगम्य, अलक्ष्य और महान् बलवान् है। वह आपको कुछ नहीं समझता है। हम लोगोंने उसे साम, दाम, दण्ड और भेद – सब तरहसे समझाया, पर अपनी शक्तिके अभिमानमें उसे किसीकी परवाह नहीं है। इतना ही नहीं, जिनराजने यह भी कहा है कि 'मै उस अधमकी सेवा नहीं कर सकता और प्रातःकाल मुझे ससैन्य कामको पराजित करना है।'

शल्यवीरने कहा : राग-द्वेष, आप लोग यह क्या अप्रिय बात कह रहे है ? क्या आप हमारी सेनाके अन्तर्गत नहीं थे जो आपने इस प्रकार पराभवका घूँट पी लिया ?

राग-द्वेष कहने लगे : महाराज शल्यवीर, पराभव सहन करनेका एक कारण है। वह यह कि जो महामना होते है वे अपनेसे छोटोंको सताते नहीं है। कहा भी है :

"वायु सब प्रकारसे प्रणत और मृदुल तृणोंको नहीं उखाड़ती, बल्कि वह उन्नत वृक्षोंको ही बाधा पहुँचाती है, ठीक है, महान् महान् पुरुषोंके साथ ही विग्रह करते है।" तथा

---

१ प्राप्त स–क०, घ०, च०। २ "...। स्वभाव एवोन्नतचेतसामय महान्...॥"–पञ्च० मि० भे० १३३।

[1]तथा च

"गण्डस्थलेषु मदवारिषु लौल्यलुब्ध-
मत्तभ्रमद्भ्रमरपादतलाहतोऽपि ।
कोपं न गच्छति नितान्तबलोऽपि नागः
स्वल्पे बले न बलवान् परिकोपमेति ॥२॥" ५

२. एवं श्रुत्वा मदनो घृतसिक्तानलवत् कोपं गत्वा अन्यायकाहलिकं प्रत्यब्रवीत्—रे अन्यायकाहलिक, शीघ्रं काहलया[2] निनादं कुरु यथा सैन्यसमूहो भवति । एतदाकर्ण्य तेनानीतिकाहला गम्भीररवेण नादिता ।

अथ तच्छ्रवणाज्जिनेन्द्रोपरि बलानि संनद्धानि जज्ञिरे । तद्यथा

प्रापुः षट्त्रिगुणा महाखरतरा दोषास्त्रयो गारवा
आजग्मुर्व्यसनाभिधानसुभटाः पञ्चेन्द्रियाख्यास्ततः ।
वीरा वैरकुलान्तका वरभटा दण्डास्त्रयश्चागताः
प्राप्ताः शल्यसमास्त्रयोऽद्भुतबलाः शल्याभिधाना नृपाः ॥१॥ १०

आयुष्कर्मनराधिपाश्च चतुराः प्राप्तास्तु पञ्चाश्रवा
रागद्वेषभटौ ततोऽनु(मि)मिलतुर्दर्पोद्धतौ सिंहवत् ।
संप्राप्तावतिगर्वितौ स्मरदले [3]गोत्राभिधानौ नृपा-
वज्ञानाख्यनृपास्त्रयोऽथ मिलिताः प्राप्तस्ततश्चानयः ॥२॥ १५

"शक्तिशाली हाथी अपने मद-जलसे परिपूर्ण गण्डस्थलपर सुगन्ध-लोलुप भौरोंके पाद-प्रहारसे पीडित होनेपर भी क्रोध नहीं करता है । ठीक है, बलवान् स्वल्पबलशालीपर कदापि क्रोध नहीं करते ।" २०

२. राग-द्वेषकी बात सुनकर कामदेव इस प्रकार क्रोधसे भडक उठा जैसे अग्निपर घी डालनेसे वह भडक उठती है । उसने भेरी बजानेवाले अन्यायको बुलाया और कहा : अरे अन्याय, तुम शीघ्र ही अपनी भेरी बजाओ, जिससे समस्त सेना एकत्रित हो जाये ।

महाराज मकरध्वजकी बात सुनकर अन्यायने बड़े जोरसे अपनी भेरी बजायी । और भेरीका शब्द सुनते ही समस्त सेना जिनेन्द्रके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए तैयार हो गयी । २५

कामदेवकी सेना इस प्रकारसे तैयार हुई .

अठारह दोष, तीन गारव, सात व्यसन, पाँच इन्द्रियाँ, वैरि-कुलके लिए यमस्वरूप तीन दण्डनामक सुभट और तीन शल्यनामक राजा उपस्थित हो गये ।

चार आयुष्कर्म तथा पाँच आस्रव कर्म नामके राजा आ पहुँचे । मदोन्मत्त सिंहकी तरह राग-द्वेष नामके सुभट भी तैयार हो गये । गोत्र नामके अत्यन्त मानी दो राजा, एक अज्ञान नरेश और एक अनय महाराज भी सन्नद्ध हो गये । ३०

१. "···मदवारिषु बद्धराग । स्तुल्ये बले तु बलवान् ॥"—पञ्च० मि० भे० १३४ ।
२ "काहला वाद्यभाण्डस्य विशेषे", इति विश्व । काहला पटह इत्यर्थः । ३ गोत्राभिधाना नृपा—च० । उच्चैर्नीचैर्नामधेयौ ।

प्राप्तौ क्रूरयमोपमौ बलयुतौ [1]द्वौ वेदनीयाभिधौ
पुण्याद्य[2]क्षितिपालकौ च मिलितौ प्राप्तस्तथा संयमः ।
प्रापुर्निर्दलिताखिलारिपृतना[3]ः [4]पञ्चान्तराया नृपाः
संप्राप्तौ तदनन्तरं दृढतरावाशाभिधानौ नृपौ ॥३॥

५ पञ्च[5] नरेन्द्रा मिलिता ज्ञानावरणीयनामानः ।
दुष्परिणामौ मिलितौ दर्शनमोहोऽतिदुर्जयः प्राप्तः ॥४॥

[6]त्रिनवतिनरनाथा नामकर्माभिधानाः
स्फुरिततरगणा वै भासमानाः प्रपन्नाः ॥
अथ नृपतिशतेन द्यूतसार्थेन युक्ता
१० भुजग इव सरोषा अष्ट कर्मप्रधाना ॥५॥

भूपाला नव[7] संप्राप्ता दर्शनावरणीयकाः ।
शोभते कामसैन्यं तैर्यथा मेरुर्नवग्रहैः ॥६॥

तथा च

प्राप्तश्च [8]षोडशकषायनृपैः प्रयुक्त-
१५ श्चान्यैर्नृपैश्च [9]नवभिर्नवनोकषायैः ।
मिथ्यात्वभूमिपतिभिस्त्रि[10]भिरावृतोऽन्यै-
र्यो दुर्जयोऽतिबलवानपि दुर्द्धरो यः ॥७॥

स्वर्गे जितः शतमखः सगणोऽपि येन
येनेशभानुशशिकृष्णपितामहाद्याः ।

---

२० क्रूर यमके समान दो वेदनीय नामके प्रबल राजा और पुण्य-पापके साथ असंयम नरेश भी तैयार हो गया। समस्तशत्रु-संहारक पाँच अन्तराय और दो आशा-नरेश भी आ पहुँचे।

ज्ञानावरणनामक पाँच राजा तथा शुभ-अशुभ नृपतिके साथ दुर्जय दर्शनमोह भी तैयार होकर आ गया।

अपने अधीनस्थ भृत्योंके साथ नाम-कर्म नामके तिरानबे नरेश और सौ जुवारियोंके
२५ संघसहित प्रमुख आठ कर्म-नरेश भी रोषमें भरे आ पहुँचे।

दर्शनावरणीयरूपी नौ राजा भी उपस्थित हो गये। इन राजाओंसे कामकी सेना इस प्रकार सुन्दर मालूम हुई जैसे नवग्रहोंसे मेरु सुशोभित होता है। और

सोलह कषाय, नौ नोकषाय, और तीन मिथ्यात्वनामक राजाओंके परिवारके साथ दुर्जय और बलवान् मोह भी आ डटा। वह मोहमल्ल, जिसने सपरिकर इन्द्र, महादेव,

---

१ द्वे वेद–क०, ग०, ङ, च०। सातासातरूपौ द्वौ वेदनीयौ। २ –ण्याद्या शि–च०। पुण्यपापावित्यर्थः। ३.–ला रिपुतना. प–च०। ४ दानलाभभोगोपभोगवीर्यान्तरायभेदात्। ५. मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञाना-वरणभेदात्। ६ "गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगन्धवर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघा-तपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च।"–त० सू० ८।११। ७ "चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च।" –त० सू० ८।७। ८ क्रोधमानमायालोभानां प्रत्येकमनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पात्। ९. हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदभेदात्। १०. मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वसम्यक्प्रकृतिभेदात्।

यस्माद् बिभेति बलवान् धरणीधरो यो
सो(ऽसौ) मोहमल्ल इति भाति यथा कृतान्तः ॥८॥

एवं तमागच्छन्तं दृष्ट्वा सम्मुखं गत्वा मकरध्वजेन परमानन्देन तस्य मोहमल्लस्य पट्टबन्धनं शेषाभरणं च कृत्वा वचनमेतदुक्तम् – भो मोहमल्ल, अधुना सर्वमेतद् राज्यं त्वया रक्षणीयम् । यतस्त्वमेव सैन्याधिपतिः । तव लीला यः संग्रामे प्राप्नोति एवंविधो न कोऽप्यस्ति । उक्तं च यतः 	५

"यद्वच्चन्द्रमसा विभाऽपि रजनी यद्वत्सरोजैः सरित्
गन्धेनैव विना न भाति कुसुमं दन्तीव दन्तैर्विना ।
यद्वद् भाति सभा न पण्डितजनैर्यद्वन्मयूखै रवि–
स्तद्वन्मोह, विना त्वया मम कुल नो भाति वीरश्रिया ॥ ३ ॥" 	१०

तदवश्यमिहाऽहमिदानी जिनेन्द्रं जेष्यामि । एवं यावत् तेनोक्तं तावत् तस्मिन्नवसरे निजमदभरान्धानां मदकुञ्जराणामष्टानां समरभूमौ घटाः संप्राप्ताः । तथाऽतिवेग-उन्नतो दुर्द्धरश्चपलः सबलो मनस्तुरंगमसमूहः संप्राप्तः । एवमादि प्रभूतक्षत्रियभटसमूहैः समावृत्तं सैन्यमतिशोभते । तथा च

दुष्टलेश्याध्वजापट्टैर्निचितमभिरम्यं कुकथात्युच्छ्रितयष्टिकाभिरारब्धगगनान्दोल- 	१५

सूर्य, चन्द्र, कृष्ण और ब्रह्माको पराजित किया और जिससे महान् हिमालय भी भीत रहता है, आते समय इस प्रकार मालूम हुआ जैसे साक्षात् यमराज आ रहा हो ।

ज्यों ही महाराज कामदेवने मोहको सामने आते हुए देखा, उसने बड़े उल्लासके साथ मोहका पट्टबन्ध किया और अपने शेष सम्पूर्ण आभरण उसे दे डाले । इसके पश्चात् कामदेव उससे कहने लगा : हे मोहमल्ल, अब तुम्हें ही इस सम्पूर्ण राज्यकी रक्षा करनी है । क्योंकि सेनाधिपति तुम्हीं हो और इस सग्राममें ऐसा कोई नहीं है जो तुम्हारा सामना कर सके । वह कहता गया : 	२०

"मोह, जिस प्रकार चन्द्रके बिना रात्रि सुशोभित नहीं होती, कमलोंके बिना नदी सुशोभित नहीं होती, गन्धके बिना फूल सुन्दर नहीं होता, दाँतोंके बिना हाथी शोभित नहीं होता, पण्डित-समूहके बिना सभा अलंकृत नहीं होती और किरणोंके बिना सूर्य सुशोभित नहीं होता, उसी प्रकार अद्भुत पराक्रमी तुम्हारे बिना हमारा सैन्य भी सुशोभित नहीं हो सकता है । इसलिए मुझे विश्वास है कि मैं अब जिनेन्द्रको जरूर ही जीत लूँगा ।" 	२५

कामदेव और मोहकी इस प्रकारकी बात चल ही रही थी कि इतनेमें अपने मदके भारसे अन्धे आठ मदरूपी हाथियोंके समराङ्गणमें घण्टे बजने लगे और अत्यन्त वेगवान्, उन्नत, दुर्द्धर, चपल और सबल मनरूपी अश्वसमूह भी उपस्थित हो गया । इस तरह कामदेवके सैन्यमें अनेक क्षत्रिय सुभट-समूह सम्मिलित हो गये और इस कारण उसमें निराली शान आ गयी । 	३०

इस प्रकार यह सैन्य दुष्ट लेश्यारूपी ध्वज-वस्त्रोंसे सघन था । इन ध्वजाओंमें कुकथारूपी उन्नत दण्ड लगे हुए थे, जिनके कारण ये ध्वजाएँ आकाशमें आन्दोलित होकर

---

१ विना मम च० । २ "करिणा घटना घटा" इत्यमर । ३. गगनान्दोलिताभिरा–घ० । दोलनादिभिरा–ख० ।

नाभिराह्लादजनकं जातिजरामरणस्तम्भैरुपशोभितं तथा पञ्चकुदर्शन[1]पञ्चशब्दैर्बधिरीभूतं दशकामावस्था[2]तपत्राच्छादितान्धकारीभूतम्। एवंविधचतुरङ्गसैन्यसमन्वितो मनोगजमारुह्य संग्रामार्थं निर्गन्तुमिच्छति यावज्जिनेन्द्रोपरि तावत् तस्मिन्नवसरे—

५ प्राप्तो मूढनृपै[3]स्त्रय(त्रिभि)श्च सहितं(तः)शङ्कादिवीरैस्त्रिभि-
र्युक्ता येन करी धृता करतले संसारदण्डस्तथा।
यः प्राप्नोति रणे सदा जयरवं लोकत्रयं कम्पितं
चैतद्यस्य भयात्, स चातिबलवान् मिथ्यात्वनामा नृपः॥९॥

३. ततो मिथ्यात्वनृपः प्रोवाच—भो भो त्रिदशकुरङ्गपञ्चानन, [4]कस्योपरि संचलितस्त्वम्? ममादेशं देहि। किमनेन सैन्यमेलनेन? केवलोऽहं जिनेन्द्रं जेष्यामि।

१० ततो मोहः प्राह—अरे मिथ्यात्व, किमेतज्जल्पसि? एवंविधो बलवान् कोऽस्ति यः संग्रामे जिनसंमुखो भवति। तत्प्रभाते तव शूरत्वं ज्ञास्याम्यहं यत्र दलनाथः [5]सम्यक्त्ववीरः प्राप्स्यति। उक्तं च यतः

"तावद् गर्जन्ति[6] मण्डूकाः[7] कूपमाश्रित्य[8] निर्भयाः[9]।
[10]यावदाशीविषो घोरः [11]फटाटोपो न दृश्यते॥४॥

---

१५ दर्शकोंके मनमें आह्लाद पैदा कर रही थीं। इतना ही नहीं, यह सैन्य जाति-जरा और मरणरूपी स्तम्भोंसे सुशोभित था, पाँच मिथ्यादर्शनरूपी पाँच प्रकारके शब्दोंसे जगत्को बहरा कर रहा था और दस कामावस्थारूपी छत्रोंके कारण इसमें सर्वत्र अन्धकार घनीभूत हो रहा था।

कामदेव इस प्रकारके चतुरंग-सेनाके साथ मनोगजपर सवार होकर जिनेन्द्रसे संग्राम २० करनेके लिए जानेवाला ही था कि इतनेमें तीन मूढता और तीन शंकादि वीर राजाओंके साथ संसार-दण्डको हाथमें लेकर अपने जयरवसे तीनों लोकको कँपाता हुआ बलवान् मिथ्यात्व नामका राजा आकर उपस्थित हो गया।

३. मिथ्यात्वने आते ही कामदेवसे कहा: हे देवतारूपी मृगोंके लिए सिंह-सदृश देव, आप इतनी बड़ी सेनाके साथ क्यों प्रस्थान कर रहे है? मुझे आज्ञा दीजिए। मैं अकेला २५ ही जिनेन्द्रको पराजित करके आता हूँ।

इस बीचमें मोह कहने लगा: अरे मिथ्यात्व, तुम क्या बात करते हो? संसारमें ऐसा कौन व्यक्ति है जो संग्राममें जिनेन्द्रका सामना कर सके। तुम्हारी शूरवीरताका कल सवेरे ही पता चल जायेगा जब जिनेन्द्रका सेनापति रणांगणमें आकर उपस्थित होगा। कहा भी है:

३० "मेंढक कुएँमें तभीतक निर्भय होकर गरजता है, जबतक उसे भयंकर फणधारी साँप नहीं दिखलाई देता। चिकने नीलाद्रिकी तरह काले हाथी तभीतक चिंघाड़ते है, जबतक

---

१ एकान्तविपरीतसंशयवैनयिकाज्ञानभेदात् पञ्चविधं कुदर्शनम्। २ "अभिलाषश्चिन्तास्मृतिगुणकथनोद्वेगसप्रलापाश्च। उन्मादोऽथ व्याधिर्जडता मृतिरिति दशात्र कामदशाः॥"—सा० द० ३।१९०। ३ लोकदेवगुरुमूढताभेदात्त्रिविधा मूढ (ढता) नृपाः। ४ कमुपरि क०, ग०, घ०, च०। ५ सक्तवीर. प्रा— च०। ६. गर्जति ख०, च०। ७ मण्डूका ख०,। ८. कोपमा—ग०। ९. निर्भय ख०, च०। १०. यावत् करिकराकार कृष्णसर्पं न पश्यति ख०। ११ घटाटोपो न—ग०।

तावद् गर्जन्ति मातङ्गा भिन्ननीलाद्रिसंनिभाः ।
[2]यावच्छृण्वन्ति नो कर्णैः क्रुध्यत्पञ्चाननस्वरम् ॥५॥
तावद् विषप्रभा घोरा यावन्नो गरुडागमः ।
तावत् तमःप्रभा लोके, यावन्नोदेति भास्करः ॥६॥"

अन्यच्च 5

"खद्योतानां प्रभा तावद् यावन्नो रविरश्मयः[3] ।
द्विजिह्वानां बलं तावद् यावन्नो [4]विनतासुतः ॥७॥"

४ एवं वचनमाकर्ण्य मनोभवोऽवोचत् – अहो, युवयोः परस्परं किमनेन विवादेन ?
[5]यत उक्तं च

"अज्ञातचित्तवृत्तीनां पुंसां किं गलगर्जितैः । 10
शूराणां कातराणां च रणे व्यक्तिर्भविष्यति ॥८॥"

तत् प्रभाते जिनेन्द्रस्य हरिहरपितामहादीनां यत्कृतं तदहं यदि न करोमि तदा ज्वलिता[6]नलप्रवेशं करिष्यामि । इति सर्वजनविदिता मे प्रतिज्ञा । उक्तं च

वे अपने कानसे रोष-भरे सिंहकी गर्जना नहीं सुनते । साँपके विषका उत्कट प्रभाव भी तभीतक रहता है, जबतक गरुडके दर्शन नहीं होते । और अन्धकार भी तबतक रहता है, 15
जबतक सूर्य उदित नहीं होता ।"

कविने इस आशयकी एक और बात कही है । वह यह है :

"जबतक सूर्यका तेज प्रकट नहीं होता तभीतक खद्योत चमकते है । इसी तरह साँप भी तभीतक अपनेमें शक्तिका अनुभव करता है, जबतक उसे गरुड़का साक्षात्कार नहीं होता ।"

मोह कहने लगा : इसलिए भाई, तुम व्यर्थ बात न करो । कल तुम्हें अपने-आप 20
अपनी शक्तिका पता चल जायेगा ।

४. मोह और मिथ्यात्वके इस प्रकारके विवादको सुनकर कामदेव कहने लगा : आप लोग परस्परमें विवाद क्यों करते है ? इस विवादसे कोई अर्थ सिद्ध होनेवाला नहीं है । कहा भी है :

"जिनकी मनोदशाका पता नहीं है, वे व्यक्ति कुछ भी कहें उनके कहनेसे क्या 25
होता है ? समर-भूमिमें उतरनेपर सबको मालूम हो जायेगा कि कौन शूर है और कौन कातर है ।"

कामदेव कहने लगा : मेरा निश्चय है कि मैने हरि, हर और ब्रह्माकी जो दशा की है वही दशा कल सवेरे यदि जिनेन्द्रकी न कर सका तो मै जलती हुई आगमें प्रवेश कर जाऊँगा । नीतिकारोंकी इस बातसे मै पूर्ण सहमत हूँ : 30

---

१. पद्यमिदं क०, ग०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति । २. विशिखालग्नलाङ्गूलो यावन्नायाति केसरी ॥ ख० । ३ विस्मय च० । ४. विनतासुतो गरुडः । ५. पाठोऽयं पद्यं चेदं क०, ग०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति । ६. ज्वलितानलकुण्डे प्रवेशो ममेत्यसम्भाव्या सर्व–ख० ।

"सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पण्डिता ।
सकृत् कन्याः प्रदीयन्ते त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ।।६।।"

इति श्रीठक्कुरमाइन्ददेवस्तुतजिन(नाग)देवविरचिते मदनपराजये सुसंस्कृतबन्धे कन्दर्पसेनावर्णनो नाम तृतीयः परिच्छेदः ॥ ३ ॥

---

५ "राजा एक बार कहते है, पण्डित एक बार कहते है और कन्याएँ एक बार दी जाती है। ये तीन काम एक बार ही होते है।"

इस प्रकार ठक्कुर माइन्ददेवके द्वारा प्रशंसित जिन (नाग) देव-विरचित मदनपराजयमें काम-सेना-वर्णन नामका तृतीय परिच्छेद समाप्त हुआ।

---

१. पद्यमिद क०, ग०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति ।

[चतुर्थ परिच्छेद.]

१ इतो[1] निर्गते दूतयुगले जिनेन संवेगं प्रत्यभिहितम् – अरे संवेग, झटिति स्वसैन्याह्वानं[2] कुरु। तदाकर्ण्य तेन वैराग्यकाहलिकमाहूय एतदुक्तम् – अरे वैराग्यकाहलिक, शीघ्रं काहलानिनादं कुरु यथा स्वसैन्यसमवायो भवति। ततस्तेन विरतिकाहला 'जिननाथः संप्राप्तः', एवं द्विरुक्त्यु[3]च्चारणेन युक्ता [4]कृतगम्भीरकोलाहला नादिता। अथ काहलास्वनमाकर्ण्य कन्दर्पोपरि [5]परबललम्पटाः सुभटाः संप्रापुः। तद्यथा ५

समदमदनदन्तिध्वंसकण्ठीरवा ये
छलबलकुलवन्तश्चागताः [6]धर्मवीराः।
अथ दश नरनाथा [7]मुण्डसंज्ञा प्रचण्डा
दश हि मनुजनाथा संय[8]माख्या वरिष्ठाः ॥ १ ॥ १०
उन्नतवयसौ शूरौ भूपौ द्वौ क्षमादमाख्यौ च।
ते दश भूपा मिलिताः प्राय[9]श्चित्ताभिधाना ये ॥ २ ॥

---

१ जब जिनराजके पाससे राग-द्वेष नामके दोनो दूत चले गये तो उन्होंने संवेगको बुलाकर कहा : संवेग, तुम बहुत जल्दी अपनी सेना तैयार करो।

जिनराजकी आज्ञा पाते ही उसने वैराग्यडिण्डिमको बुलाया और कहा : अरे वैराग्य-डिण्डिम, तुम शीघ्र ही अपनी भेरी बजाओ जिससे अपनी सेना जल्दी एकत्रित हो जाये। १५

वैराग्यडिण्डिमने अपनी भेरी बजायी और उसके शब्दको सुनते ही विपक्षीकी सेनाका विध्वंस करनेवाले योद्धा कामके ऊपर चढाई करनेके लिए इस प्रकार आ पहुँचे :

उस समय दस धर्म-नरेश भी आकर उपस्थित हो गये। ये नरेश मन्दोन्मत्त काम हाथीको पराजित करनेके लिए सिंहके समान प्रतीत होते थे। ठीक इसी समय दस संयम-नरेश और दस प्रचण्ड मुण्ड-नरेश भी आ डटे। २०

और इसी समय वयोवृद्ध क्षमा और दम दो शूर-वीर भी प्रायश्चित्तनामक दस राजाओंके साथ आकर जिनेन्द्रकी सेनामें सम्मिलित हो गये।

---

१ 'इतो' ख० पुस्तके नास्ति। इति च०। २.–न्याह्वानन क०, ग०, घ०, च०। सैन्यमेलन ख०। ३ –क्त्युच्चारणेन युता क०, च०। ४ कृताकृतगभीरको–ङ०। ५ शत्रुसैन्यसहारका इत्यर्थ। "स्थौल्य-सामर्थ्यसैन्येषु बलम् '" इत्यमर। ६ क्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यभेदाद्धर्मो दशविध। ७. "पच मुडा पण्णत्ता, त जहा–सोतिदियमुंडे० जाव फासिदियमुडे २, अहवा–पचमुंडा पण्णत्ता, तं जहा–कोहमुडे माणमुडे मायामुडे लोभमुंडे सिरमुडे। मुण्डन मुण्ड, अपनयनम्। स च द्वेधा–द्रव्यतो भावतश्च। तत्र द्रव्यत –शिरस केशापनयनम्। भावतस्तु चेतस इन्द्रियाणामर्थगतप्रेमाप्रेम्णो कषायाणा वापनयन-मिति मुण्डलक्षणधर्मयोगात् पुरुषो मुण्ड उच्यते। तत्र श्रोत्रेन्द्रिये श्रोत्रेन्द्रियेण वा मुण्ड, पादेन खञ्ज इत्यादिवत् श्रोत्रेन्द्रियमुण्ड शब्दे रागादिखण्डनात् श्रोत्रेन्द्रियार्थमुण्ड इति भाव'। इत्येव सर्वत्र।"–स्था० ५।४३। ८ "दसविघे सजमे पण्णत्ते, त जहा–पुढविकाइय सजमे० जाव वणस्सइकाइयसजमे, बेइंदियसजमे तेइंदियसजमे चउरिंदियसंजमे, पचेंदियसजमे अजीवकायसजमे।"–स्था० १०।७०९। ९ "प्रमाददोषपरिहार प्रायश्चित्तम्।"–स० सि० ९।२०। तस्य चालोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदमूलपरिहारश्रद्धानभेदाद्दशविधत्वम्। तथा हि–"आलोयण-पडिकमण उभयविवेगो तहा विउस्सग्गो। तव छेदो मूल वि य परिहारो चेव सद्दहणा॥"–मूला० ५।१६५।

कल्पान्ते मरुताहताश्च मिलिताश्चैकत्र सप्तार्णवा
यद्वत्तद्वदतीवशौर्यसहितास्ते सप्त [1]तत्त्वाधिपाः।
अष्टौ ये हि [2]महागुणा नृपवराः प्राप्तास्ततस्ते तथा
तद्वच्चाष्टकुलाचला दृढतरा अष्टौ यथा दिग्गजाः ॥ ३ ॥

५ तथा च

कल्पान्ते प्राणिनाशाय द्वादशार्का यथोदिताः।
स्मरसैन्यविनाशाय तथा प्राप्तास्त[3]पोनृपाः ॥ ४ ॥

पञ्च नरेशा मिलिता [4]आचाराख्या महाशूराः।
अष्टाविंशति भूपा [5]मूलगुणाख्यास्ततः प्रापु ॥ ५ ॥

१० शत्रुत्रासकरा महाखरतराः [6]श्रीद्वादशाङ्गाभिधाः
संप्राप्ताः सुभटास्त्रयोदश [7]ततश्चारित्रवीरेश्वराः।
आजग्मुस्तदनन्तरं हि बलिनः कीनाशदूतोपमा
अष्टौ षड् वरवीरदर्पदलनाः [8]पूर्वाङ्गसंज्ञा नृपाः ॥ ६ ॥

जिस प्रकार कल्पकालके अन्तमें सातों समुद्र एकत्रित हो जाते है उसी प्रकार अत्यन्त
१५ शूर सात तत्त्व-राजा भी आकर सम्मिलित हो गये। और अत्यन्त सत्त्वशाली आठ कुलाचल
और आठ दिग्गजोंके समान आठ महागुण-नरेश भी आ पहुँचे।

और जिस प्रकार कल्पान्तमें प्राणियोंके विनाशके लिए बारह सूर्य उदित हुए थे, उसी
प्रकार कामकी सेनाके विध्वंसके लिए बारह तपरूपी राजा भी आकर उपस्थित हो गये।

इनके अतिरिक्त अत्यन्त शूरवीर पाँच आचार-नरेश और अट्ठाईस मूलगुण-राजा भी
२० आकर सेनामें मिल गये।

और शत्रुको त्रस्त करनेमें समर्थ अत्यन्त तेजस्वी द्वादश अंग-नरेश और तेरह वीर
चारित्रराजा भी आ पहुँचे। और इनके पश्चात् प्रबल कालके दूतके समान चौदह पूर्व-
राजा भी आकर उपस्थित हो गये।

---

१. "जीवाऽजीवास्रवबन्धसवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्।" –त० सू० १।४। २. सम्यक्त्वदर्शनज्ञानागुरुलघुत्वावगाहनत्वसूक्ष्मत्ववीर्यत्वाव्याबाधत्वभेदादष्टौ महागुणा। ३ "इच्छानिरोधस्तप।" –स० सि० ९। तत्तपो बाह्याभ्यन्तरभेदाद्द्विविधम्। तत्र "अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्य तप।" तथा "प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्"–त० सू० ९।१९,२०। ४ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपोवीर्यभेदात् पञ्चाचाराः। ५. पञ्च महाव्रतानि, पञ्च समितय पञ्चेन्द्रियनिरोधा, षडावश्यकानि, लोच, आचेलक्यम्, अस्नानम्, क्षितिशयनम्, अदन्तघर्षण, स्थितिभोजनम्, एकभक्त चैतेऽष्टाविंशतिमूलगुणा। तत्र अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा पञ्च महाव्रतानि। ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गा पञ्च समितय। स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुश्रोत्राणि पञ्चेन्द्रियाणि समतास्तववन्दनाप्रतिक्रमणप्रत्याख्यानव्युत्सर्गभेदात् षडावश्यकानि। ६ आचार, सूत्रकृतम्, स्थानम्, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृधर्मकथा, उपासकाध्ययनम्, अन्तकृद्दशम्, अनुत्तरोपपादिकदशम्, प्रश्नव्याकरणम्, विपाकसूत्रम्, दृष्टिवाद इमानि द्वादशाङ्गानि। ७ महाव्रतसमितिपञ्चकत्रिगुप्तिभेदात्त्रयोदशविध चारित्रम्। ८ उत्पादपूर्वम्, अग्रायणीयम्, वीर्यप्रवादम्, अस्तिनास्तिप्रवादम्, ज्ञानप्रवादम्, सत्यप्रवादम्, आत्मप्रवादम्, कर्मप्रवादम्, प्रत्याख्याननामधेयम्, विद्यानुप्रवादम्, कल्याणनामधेयम्, प्राणावायम्, क्रियाविशालम्, लोकबिन्दुसारमिति पूर्वपरिकरश्चतुर्दशविध.।

ये ऽनन्तवीर्यसंयुक्ताः स्मरवीरकुलान्तकाः ।
प्रापुस्ते [1]ब्रह्मचर्य्याख्या भूपाला नव दुर्जयाः ॥ ७ ॥

अरिकुञ्जरगन्धगजा मिलिता नव शूरतरा [2]नयभूपतयः ।
अथ [3]गुप्तिनृपत्रितयं मिलितं [4]त्वरितं जिननाथदले सबलम् ॥ ८ ॥

तथा च 5

शरणागतेषु जन्तुषु सकलेष्वाधारभूता ये ।
अनुकम्पागुणभूपा जिनकार्ये तत्क्षणात् प्राप्ताः ॥ ९ ॥

पञ्चवक्त्रो [5]महाकायो धीरो यो नीरदस्वनः ।
संप्राप्तः स्मरनाशार्थं स्वाध्यायः सिंहवत्तथा ॥ १० ॥

धर्मचक्रान्वितः प्राप्तो दृष्टिवीरश्चतुर्भुजः । १०
स्मरदैत्यविनाशार्थं दैत्यारिः केशवो यथा ॥ ११ ॥

मतिज्ञानाख्यभूपालः संप्राप्तस्तदनन्तरम् ।
[6]शतत्रययुतश्चान्यैः षट्त्रिंशदधिकैर्नृपैः ॥ १२ ॥

साथ ही अनन्तशक्तिशाली और वीर कामके कुलको विध्वस्त करनेवाले दुर्जय नौ ब्रह्मचर्य-नरेश भी आकर सैन्यमें सम्मिलित हो गये । १५

तथा शत्रुरूपी हाथियोंके लिए गन्धगजकी तरह शूरवीर नय राजा और तीन गुप्ति-राजा भी आकर जिनेन्द्रकी सेनामें आ मिले ।

और जो समस्त शरणागत देहधारियोंको आश्रय प्रदान करते है वे अनुकम्पा आदि नरेश भी आ पहुँचे ।

इनके अतिरिक्त पाँच मुखवाला, दीर्घ शरीरधारी, धीर, और नीरदके समान ध्वनि करनेवाला स्वाध्याय-नरेश भी सिंहके समान कामको नष्ट करनेके लिए आकर उपस्थित हो गया । २०

तथा धर्मचक्रसे सम्पन्न और चतुर्भुज दर्शन-वीर भी दैत्यारि केशवकी तरह स्मर-दैत्यके विनाशके लिए आकर तैयार हो गया ।

तदनन्तर मतिज्ञान-नरेश भी अपने अधीनस्थ तीनसौ छत्तीस अन्य राजाओंके साथ जिनेन्द्रकी सेनामें आकर सम्मिलित हो गया । २५

---

१ स्त्रीनिकटावासतद्रागनिरीक्षणमधुरसभाषणपूर्वभोगानुस्मरणवृष्याहारशरीरश्रृङ्गारस्त्रीशय्याशयन-कामकथाऽऽकण्ठोदरपूर्तित्यागरूपा नव ब्रह्मचर्यभूपालाः । एत एव आगमे शीलस्य नव 'वाड' रूपेण प्रसिद्धाः । २ द्रव्य-पर्याय-द्रव्यपर्यायनैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूतभेदान्नव नयाः । —त० श्लो० पृ० २६९ । ३ मनोवाक्कायगुप्तिभेदाद्गुप्तिस्त्रिधा । ४ चरित जि– ख०, ग० । ५ वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशमुखः । ६ बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणां प्रत्येकमवग्रहेहावायधारणाभेदा-दष्टचत्वारिंशद्भेदाः । एते भेदाः षड्भिरिन्द्रियैर्गुणिता अष्टाशीत्यधिका द्विशती भवति । अत्र व्यञ्जनावग्रहस्याष्टचत्वारिंशद्भेदयोगे मतिज्ञानभेदमाला षट्त्रिंशदधिका त्रिशती विज्ञेया ।

श्रुतज्ञानाभिधानो यो जिनसहायार्थमागतः ।
मनःपर्ययसंज्ञोऽथ प्राप्तो [1]भूपयुगान्वित. ॥ १३ ॥

तथा च

[2]नरनाथत्रययुक्तः स्वपतिश्रमनाशनाय संप्राप्तः ।
अवधिज्ञाननरेशः स्वसैन्यतिलको महाशूरः ॥ १४ ॥

ततोऽनन्तरमायातो महाशूरोऽतिदुर्जयः ।
मोहवीरविनाशार्थं केवलज्ञानभूपतिः ॥ १५ ॥

तथा च

धर्मध्या[3]नमहीपेन युक्तो निर्वेगभूपति ।
शुक्लेन सह संप्राप्तः ततश्चोपशमो बली ॥१६॥

अष्टोत्तरसहस्रेण संयुक्तो लक्षणाधिपः ।
[4]अष्टादशसहस्रैश्च मिलितः शीलभूपतिः ॥१७॥

भूपालैः [5]पञ्चभिर्युक्तो निर्ग्रन्थाख्यो नरेश्वरः ।
[6]बलवीरकुलान्तौ यौ गुणावाजग्मतुस्ततः ॥१८॥

और श्रुतज्ञान तथा मनःपर्ययज्ञान भी अपने साथके अन्य दो राजाओंके साथ आकर उपस्थित हो गये ।

साथ ही तीन राजाओंसे युक्त अवधिज्ञान-नरेश भी अपने स्वामीकी सहायताके लिए सेनामें आ मिला । यह नरेश अत्यन्त शूरवीर था और जिनेन्द्रके सैन्यका तिलक प्रतीत होता था ।

इसके पश्चात् मोहवीरके विनाशके लिए महान् शूरवीर और दुर्जय केवलज्ञान-भूपति भी आकर उपस्थित हो गया । तथा

धर्मध्यान-नरेशके साथ निर्वेद-राजा आ मिला और शुक्लध्यान-राजाके साथ बलवान् उपशम-नरेश भी आ पहुँचा ।

और एक हजार आठ राजाओंके साथ लक्षण-नरेश और अठारह हजार राजाओंके साथ शील-नरेश भी आकर मिल गया ।

तथा पाँच राजाओंके साथ निर्ग्रन्थ-राजा भी आकर उपस्थित हो गया और वैरि-कुलके विनाश करनेवाले दो गुण नरेश भी आकर सम्मिलित हो गये ।

---

१ ऋजुविपुलमतिभेदान्मनःपर्ययो द्विविध: ।। २. देशावधिपरमावधिसर्वावधिभेदात्त्रिविधमवधिज्ञानम् । ३. ज्ञानम–च० । ४. "जोए करणे सण्णा इंदियभोगादिसयणधम्मे य । अण्णोण्णेहिं अभत्था अट्ठारह-सीलसहस्साइ ॥ तथाहि—योगैः करणानि गुणितानि नव भवन्ति, पुनराहारादिसंज्ञाभिश्चतसृभिर्नवगुणितानि षट्त्रिंशद्भवन्ति शीलानि । पुनरिन्द्रियैः पञ्चभिर्गुणितानि षट्त्रिंशदशीत्यधिक शतम् । पुन पृथिव्यादिभिर्दशभि कायैरशीतिशत गुणितमष्टादशशतानि भवन्ति । पुन श्रमणधर्मैर्दशभिरष्टादशशतानि गुणितानि अष्टादशशील-सहस्राणि भवन्तीति ।–मूला० ११।२।५. "पुलाकवकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्था " ।–त० सू० ९।४६। ६ कुलान्तो यो च० ।

तथा च

संप्राप्तस्तदनन्तरं जिनबले वैरीभपञ्चाननो
[1]यस्याङ्घ्री नमति स्वयं सुरपतिर्विद्याधराद्यास्तथा।
ब्रह्माद्या धरणीधरार्कशशिनो [2]यस्याङ्घ्रियुग्मं नम-
न्त्येते नित्यमसौ रतीशदलनः सम्यक्त्वदण्डाधिपः ॥१९॥ ५

एवमाद्यसंख्यवीरक्षत्रियसामन्तनिचयैर्निचितं जिनबलमतिराजते। तथा च दुर्धरोन्नतदुर्जयबलचपलमनोहरजीवस्वभावतुरंगमखु[3]रपुटनिचयोद्धूतपांसुच्छन्नाम्बरम-ण्डलं [4]प्रमाणचतुष्कसप्त[5]भङ्गिम[6]हागजचीत्काररवश्रवणदिग्गजभयजनकं [7]चतुरशीति-लक्षगुणमहारथरवकोलाहल[8]निर्जितजलनिधिगर्जितं पञ्चसमितिपञ्चमहाव्रतशब्दस्याद्वाद-भेर्यांत्रा(ता)ट(ड)[9]नसमुत्थितातिकोलाहलबधिरीभूतं[10] शुभलेश्यातिदीर्घयष्टिकाभिः १० कृतगगनमण्डलस्पर्शनाभिरनङ्गदलभयजनकं विस्फुरल्लब्धिचिह्नच्छायाच्छादितदिक्चक्रं

इसके पश्चात् सम्यक्त्व-राजा भी जिनेन्द्रकी सेनामें आकर मिल गया। यह नरेश शत्रुरूपी हाथीके लिए सिंहके समान भयकर था और इसे इन्द्र, विद्याधर, ब्रह्मा, महादेव, सूर्य और चन्द्र आदि समस्त देव स्वय नमस्कार करते थे। साथ ही रतिपतिके सहारके लिए यह प्रमुख साधन था। १५

इस प्रकार जिनेन्द्रकी सेनामें जब असंख्य क्षत्रिय-वीर सामन्त आकर सम्मिलित हो गये तो जिनराजकी सेना अत्यन्त सुशोभित हो उठी। उस समय दुर्धर, उन्नत, दुर्जय और सशक्त जीवके स्वाभाविक गुणरूपी अश्वोंके खुराघातसे जो धूलि उठी उससे आकाश-मण्डल आच्छन्न हो गया। चार प्रमाण और सप्तभंगीरूप महान् गजोंके चीत्कारके सुननेसे दिग्गजोंको भी भय होने लगा। चौरासी लक्षणरूप महारथके कोलाहलने समुद्रके गर्जनको २० भी अभिभूत कर दिया। पाँच समिति, पाँच महाव्रतोंके सन्देश और स्याद्वाद-भेरीके शब्दने दिङ्मण्डलको बधिर कर दिया। गगनचुम्बी शुभ लेश्यारूपी विशाल दण्डोंसे अनंगकी सेनाको भी भय होने लगा। विकसित लब्धिरूपी पताकाओंकी छायासे दिक्चक्र भी आच्छन्न

१ यस्या हीनमति च०। २. यस्या हि न–च०। ३ खरपु–च०। ४ प्रत्यक्षानुमानागमोप-मानभेदात्। ५ स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्ति, स्यादवक्तव्यम्, स्यादस्त्यवक्तव्यम्, स्यान्नास्त्य-वक्तव्यम्, स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यमिति सप्तभङ्गी। ६ महाराजची–च०। ७ प्राणिवधमृषावादादत्तमैथुन-परिग्रहक्रोधमदमायालोभभयरत्यरतिजुगुप्सामनोवचनकायमङ्गुलमिथ्यादर्शनप्रमादपिशुनत्वाज्ञानेन्द्रियानिग्रहा एक-विंशतिभेदा हिंसादय। अतिक्रमणव्यतिक्रमणातीचारानाचारविकल्पैर्गुणिता एकविंशतिश्चतुरशीतिर्भवति। तथा पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकानन्तकायिकद्वित्रिचतु पञ्चेन्द्रियाणा परस्परमाहताना विकल्पैर्गुणिताश्चतुरशीति-विकल्पाश्चतुरशीतिशतभेदा भवन्ति। इमानि चतुरशीतिशतानि स्त्रीससर्गप्रणीतरसभोजनगन्धमाल्यसस्पर्श-शयनासनभूषण-गीतवादित्रार्थसप्रयोग-कुशीलससर्गराजसेवा-रात्रिसचरणरूपैर्दशविकल्पैर्गुणितानि चतुरशीति-सहस्राणि भवन्तीति। एतानि चतुरशीतिसहस्राणि, आकम्पितानुमानितदृष्टबादरसूक्ष्मच्छन्नशब्दाकुलितबहुजना-व्यक्ततत्सेविदशविकल्पैर्गुणितान्यष्टलक्षाभ्यधिकानि चत्वारिंशत्सहस्राणि भवन्ति। अमून्यष्टलक्षाभ्यधिकचत्वारिंश-त्सहस्राणि, आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदमूलपरिहारश्रद्धानदशविकल्पैर्गुणितानि चतुरशीतिलक्ष-सावद्यविकल्पा भवन्ति। तद्विपरीतास्तावन्त एव गुणा भवन्तीति।—मूला०, टी० ,११९–१६। ८ जल-धिग–ग०। ९ समुच्छलितातिको–क०, ग०। १० 'महारथरव'–इत्यारभ्य–'बधिरीभूतम्' इतिपर्यन्त पाठ ख० पुस्तके नास्ति।

बहुव्रतबहुस्तम्भैरुपशोभितम् । एवंविधिचतुरङ्गसैन्यसमन्वितः क्षायिकदर्शनमातङ्गारूढो-
ऽनुप्रेक्षास[1]न्नाहाच्छादिताङ्गः स्वसम[2]यनेत्रपटोत्तमाङ्गबद्धविराजमानः करतलकलितमहा-
समाधिगदाप्रहरणः सिद्धस्वरूपस्वरशास्त्रतत्त्वज्ञसहितः परमेश्वरो मदनोपरि यावत्
संचलितस्तावत्तस्मिन्नवसरे भव्यजनैरभिवन्द्यते, शारदयाऽग्रे मङ्गलगानं गीयते, दयया
५ शेषाभरणं क्रियते, मिथ्यात्वपञ्चक(केन)[3] निम्बलवणमुत्तार्यते ।

२. एवंविधस्य समरभूमिसंचलितस्य [4]जिनेशस्याग्रे सुशकुनानि जज्ञिरे । [5]तद्यथा

दधिदूर्वाक्षतपात्रं जलकुम्भश्चेक्षुदण्डपद्मानि ।
[6]सूनुमती स्त्री वीणाप्रभृतिकमग्रे सुदर्शनं जातम् ॥२०॥

तद्यथा

१० प्रदक्षिणेन प्रतिवेष्टयन्ती यतो (तः) कुमारी सकलार्थसिद्धये ।
वामाङ्गभागे ध्वनिरम्बुदानां [7]जाताशिखीनां च तथा वृषाणाम् ॥२१॥
(जातो वृषाणां शिखिना यथा च ॥)

[8]उन्नतदक्षिणपक्षविभागा [9]तत्क्षणमुखकृतपार्थिवशब्दा[10] ।
शान्तदिशा[11] भगवत्यनुलोमा सेति[12] जिनस्य जयाय [13]गताऽग्रे ॥२२॥

---

१५ हो गया । और विविध व्रतरूपी स्तम्भोंसे सेनाकी शोभा और अधिक निखर आयी ।

इस तरह चतुरंग सेनाके साथ क्षायिकदर्शनरूपी हाथीपर सवार होकर, अनुप्रेक्षामय कवच पहनकर, भालपर आगमरूपी मुकुट धारण कर, हाथमें महासमाधि-शस्त्रको लेकर और सिद्धस्वरूपरूपी स्वर-शास्त्रके तत्त्वज्ञको साथमें लेकर जिनराज कामके ऊपर चढ़ाई करनेके लिए जैसे ही तैयार हुए, अनेक भव्य जीव उनका अभिवादन करने लगे। शारदा
२० सामने आकर मगल गान करने लगी । दया आभरण पहनाने लगी और निम्ब और नमक लेकर पाँच मिथ्यात्वरूपी नजर उतारने लगी ।

२. इस प्रकार जब जिनराज प्रस्थानके लिए उद्यत हुए, उस समय निम्न प्रकारके शुभ शकुन होने लगे :

दही, दूर्वा, अक्षतपात्र, जलपूर्ण कलश, इक्षुदण्ड, कमल, पुत्रवती स्त्री, और वीणा
२५ आदिके दर्शन हुए ।

साथ ही दक्षिण भागमें कुमारी और वामभागमें मेघोंकी, मयूरोंकी और बैलोंकी गर्जनाएँ होने लगीं ।

इसके अतिरिक्त दक्षिण भागमें राजाओंकी 'मारो-पकड़ो की' भी ध्वनि होने लगी । और जिस दिशामें जिनराजका प्रस्थान होना था वह बिलकुल शान्त हो गयी । शकुन-
३० विदोंका कहना है :

---

१. "जगरः कङ्कटो योग सनाह' स्यादुरश्छद ।" इति वोपालित । २ समय आगम इत्यर्थः । ३. लोकेऽपि दृष्टिदोपनिवारणार्थमेतादृशी पद्धतिरवलम्ब्यते । ४. जिनेशाग्रे सु–ख०, ड०, च० । ५ तथा च च० । ६ सूनुव्रती च० । ७. जाता शिखीणा च त–ख०, ड० । जातारिव्रसोना च त–क०, ग०, घ०, च० । ८. उन्नतिद–क०, ग०, घ०, च० । ९ भक्ष्यगुखीकृत क०, ख०, ग०, घ०, च० । १० शब्दा ज० । ११. दिश भ–क०, ख०, ग०, ड०, च० । १२. याति जि–घ० । १३ गता ये ड० ।

दुर्गाकौशिक[1]वाजिवायसखरोलूकीशिवासारसा
ज्येष्ठाजम्बुकपोतचातकवृका गोदन्तिचक्रादयः।
यस्यैते पुरतोऽनिशं च पथिकप्रस्थानवामस्थिता-
स्तस्याग्रे मनसः समीहितफलं कुर्वन्ति सिद्धिं सदा ॥२३॥

३. एवं निर्गच्छन्तं जिनमवलोक्य संज्वलनेनैवं हृदि चिन्तितम् – अहोऽधुना-ऽस्माकमत्रावासो युक्तो न भवति। एवमुक्त्वा मदनसकाशमागत्य प्रणम्य विज्ञापयामास[2] – 'देवदेव, जिनेन्द्रोऽसौ महाबलवान् दर्शनवीरमग्रणीकृत्य संप्राप्त एव तच्छीघ्रं [3]जीवनस्थानं प्रति गम्यते।' [4]उक्तं च यतः – ५

"त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥ १ ॥ १०
रक्षन्ति देशं ग्रामेण ग्राममेकं कुलेन वै।
कुलमेकेन चात्मानं पृथ्वीत्यागेन पण्डिताः ॥ २ ॥"

तच्छ्रुत्वा मदनः [5]संक्रुद्ध्यमानो भूत्वा (संक्रुद्ध्यन्) अब्रवीत् – अरे संज्वलन, यद्येवं भूयो वदसि तत्तत्क्षणादेव वधिष्यामि। अन्यच्च

दुर्गा, उल्लू, घोडा, कौवा, गधा, उलूकी, सियारनी, सारस, वृद्धा, जम्बुक-पोत, चातक, भेडिया और गायका दाँत जिसके प्रस्थानके समय बायें भागमें आयें उसका मनोरथ सदैव सिद्ध समझना चाहिए। १५

३ जब इस प्रकारके माङ्गलिक मुहूर्तमें जिनराज कामके ऊपर चढाई करनेके लिए चल पड़े तो कामके गुप्तचर सञ्ज्वलनने सोचा: अब मुझे यहाँ रहना ठीक नहीं है। यह सोचकर वह तुरन्त कामके पास चला आया और प्रणाम करके कहने लगा: देवदेव, जिनराज महान् बली सम्यग्दर्शन वीरको साथमें लेकर आपके ऊपर चढाई करनेके लिए आ गये है। इसलिए मै तो अब किसी सुरक्षित स्थानमें जा रहा हूँ। कहा भी है: २०

"कुलके लिए एकको छोड दे। गाँवके लिए कुलको छोड दे। जनपदके लिए गाँवको छोड़ दे। और अपने स्वार्थके लिए पृथ्वी तकको छोड दे।

बुद्धिमान मनुष्य देशको गाँवसे बचाते है, गाँवको कुलसे बचाते है, कुलको एक व्यक्तिसे बचाते है और अपनेको पृथ्वी तक देकर बचाते है।" २५

सञ्ज्वलनकी बात सुनकर कामको बड़ा क्रोध हो आया। वह कहने लगा. संज्वलन, यदि तुमने यह बात फिर मुँहसे निकाली तो मै तुम्हारा वध कर डालूँगा। क्योंकि:

---

१. पद्यमिदं क०, ग०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति। २ व्यजिज्ञपत् ख०। ३ जीवितस्था–च०। ४ च० पुस्तके पद्यमिदं नास्ति। ४. पञ्च० मि० भे० ३८६। पद्यमिदं क०, ग०, घ०, ङ०, च० पुस्तकेषु नास्ति। ५ क्रुध्धातो परस्मैपदत्वाच्छानचोऽप्राप्ते 'संक्रुध्यमान' इति प्रयोगस्य संभावना नास्ति।

दृष्टं श्रुतं न क्षितिलोकमध्ये मृगा मृगेन्द्रोपरि संचलन्ति ।
विधुंतुदस्योपरि [1]चन्द्रमा(मोऽ) कौं किं वै बिडालोपरि [2]मूषकाः स्युः ॥२४॥

तथा च

किं वैनतेयोपरि [3]काद्रवेयाः किं सार[4]मेयोपरि [5]लम्बकर्णाः ।
कि वै कृतान्तोपरि भूतवर्गाः किं कुत्र श्येनोपरि वायसाः स्युः ॥२५॥

एवमुक्त्वा [6]मोहमाहूय एतदुक्तं [7]कामेन – अहो मोह, अद्य रणे युद्ध्वाऽहं जिनं न जयामि चेत्तत् सागरवडवानलवदने निजकलेवरं क्षिपामि ।

मोहः प्राह – देव, सत्यमिदम् । यतः कोऽप्येवंविधः सुरतरोऽस्ति यस्त्वां जित्वा जयवान् भूत्वा निजगृहं गच्छति ? एवं मया न दृष्टो न श्रुतोऽस्ति । उक्तं[8] च

"हरिहरपितामहाद्या बलिनोऽपि तथा त्वया प्रविध्वस्ताः ।
त्यक्तत्रपा यथैते [9]स्वाङ्कान्नारीं न मुञ्चन्ति ॥ ३ ॥"

अन्यच्च, अहो देव, जिनेन्द्रोऽसौ यदि कथमपि संग्रामसंमुखो भवति, तत्तस्य किंचिदन्यन्न कर्त्तव्यं भवति । निगडबन्धैर्बन्धयित्वाऽविचारकारायतने प्रक्षिप्यते(ताम्)।

संसारमें यह बात न कहीं देखी गयी है और न सुनी गयी है कि हिरन सिंहके ऊपर, चन्द्र-सूर्य राहुके ऊपर और चूहे बिलावके ऊपर विक्रमण करते हैं ।

और न यह बात ही सुनने तथा देखनेमें आयी है कि गरुडके ऊपर साँप, कुत्तोके ऊपर खरगोश, कालके ऊपर प्राणी और बाजके ऊपर कौवे विक्रमण कर रहे है ।

यह कहकर कामने मोहको बुलाया और उससे कहने लगा : मोह, मैने यह निश्चय किया है कि आज समरभूमिमें उतरनेपर यदि मुझे विजय नहीं मिलती है, तो मै अपने शरीरको सागरके वड़वानलमें दग्ध कर डालूँगा ।

कामकी प्रतिज्ञा सुनकर मोह कहने लगा : देव, आप बिलकुल सत्य कह रहे है । आजके संग्राममें विजय आपकी ही संगिनी बनेगी । ऐसा कौन बलवत्तर देव है जो आपको पराजित कर सके और विजयी होकर अपने घर लौट सके । इस प्रकारका देव न मैंने सुना है और न देखा ही है । क्योंकि :

"हरि, हर और ब्रह्मा आदि प्रबल देवोंको भी आपने इस तरहसे परास्त कर दिया है कि वे निर्लज्ज होकर आज भी अपनी अङ्कको नारी-शून्य नहीं कर रहे है ।"

मोह कामसे कहने लगा : देव, इस प्रकार एक तो जिनराजका इतना साहस ही नहीं कि वह आपका सामना करनेके लिए समराङ्गणमें आ सके । यदि कदाचित् आया भी तो यह निश्चय है कि वह आपका कुछ भी बिगाड़ न कर सकेगा । उसे पकड़कर बेड़ियाँ पहना दी जायँगी और वह अविचार-कारागारमें डाल दिया जायेगा ।

---

१ चन्द्रमसः सान्तत्वात् 'चन्द्रमोऽर्कौ' इत्येव साधु । 'सान्ता अदन्ता अपि भवन्ति' इति प्रवादात् 'चन्द्रमार्कौ' इत्यस्यापि साधुत्वम् । २ मूषिका स्यु क०, ख०, ग०, घ०, ङ० । ३. "नागाः काद्रवेया "-इत्यमर । ४. सारमेय श्वा । ५. "लम्बकर्णो मतश्छागे स्यादङ्कोरमहीरुहे" इति विश्व. । ६. मोहमल्लमा –ख० । ७ 'कामेन' ख० पुस्तके नास्ति । ८. " '' 'तथा स्मरेण विध्वस्ता "–ज्ञाना० ११।४६ । ९ स्वाङ्केन ना–क०, घ०, ङ०, च० ।

तदाकर्ण्य पञ्चेपुना(णा) बहिरात्मानं वन्दिनमाहूय समभिहितम् – अरे बहि-रात्मन्, यद्य त्वं जिनं मे [1]दर्शयसि तत्तव प्रभूतं संमानं करिष्यामि। एवमुक्त्वा स्मरवीर[2]नामाङ्कितं कटिसूत्रं वन्दिनो हस्ते [3]दत्त्वा द्रुततरं संप्रेपितः।

४. अथाऽसौ वन्दी जिनसकाशमागत्य प्रणम्योवाच – देवदेव, संप्राप्तो द्रुततर-मयमनङ्गो निजदूतापमानमाकर्ण्य। देव, तत्त्वयेदमशुभं कृतं यदनेन मकरध्वजेन सह युद्धमारब्धम्। अन्यच्च, यद्यपि तस्य मकरध्वजस्य भयात् स्वर्गे गमिष्यसि तत्त्वा सहेन्द्रं हरिष्यति। यदि कथमप्यधुना पाताल प्रविश्य(श)सि तत् सफणीन्द्रं [4]वधिष्यति। यदि तोयनिधौ प्रविश्य(श)सि तज्जलं संशोष्य असून् [5]गृहीष्यति। देव, तत् किमनेन भूरि-प्रोक्तेन। यदि भवान् संगरकामस्तत्स्मरकठिनकोदण्डाद्विमुक्तां वाणावलीं [6]प्रतिसहस्व। अथवा, तस्य भृत्यत्वेन जीव। अन्यच्च

प्रस्थापिता मम करे निजधीरवीर-
नामावली च मदनेन शृणु प्रभो त्वम्।
कोऽस्तीन्द्रियौघविजयी तव सैन्यमध्ये
कोऽप्यस्ति दोपभयगारववीरजेता? ॥२६॥

मोहकी बात सुनकर कामने वन्दी वहिरात्माको बुलाकर कहा : अरे बहिरात्मन्, यदि तुम आज मुझे जिनराजका साक्षात्कार करा दो तो मै तुम्हारा बहुत सम्मान करूँगा। इस प्रकार कहकर कामने अपने नामसे अङ्कित एक कटि-सूत्र वन्दीके हाथमे दिया और उसे शीघ्र ही जिनराजके पास भेज दिया।

४ तदुपरान्त बन्दी जिनराजके पास पहुँचा और उन्हें प्रणाम करके कहने लगा : देवदेव, आपने कामके दूतका इतना घोर अपमान किया कि जिसके कारण काम आपके ऊपर चढकर आ गया है। और आपने यह और ही अभद्र काम किया जो कामके साथ युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। लेकिन मालूम होता है, आप इस युद्धमें विजयी न हो सकेंगे और आपको समराङ्गणसे भागना पडेगा। उस समय कामके डरसे और आत्म-रक्षाकी दृष्टिसे यदि तुम स्वर्ग भी पहुँचे तो वहाँ भी तुम्हारी रक्षा न हो सकेगी। काम वहाँ भी पहुँचकर इन्द्रसहित तुमको खींच लायेगा। यदि तुमने पातालमें प्रवेश किया तो काम पातालमें भी पहुँचकर शेपनागसहित तुम्हें मार डालेगा। और यदि सागरमें प्रवेश किया तो काम वहाँ भी पहुँचकर उसके जलको सुखा देगा और तुम्हें पकड लायेगा। जिनराज, मुझे इस सम्बन्धमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि अब भी तुम्हारी इच्छा संग्राम करनेकी है तो कामके कठिन कोदण्डसे छोडी गयी बाणावलीका सामना करो और यदि तुम्हारा युद्ध करनेका विचार न हो तो कामकी दासता स्वीकार कर लो। इसके अतिरिक्त एक बात और है।

जिनराज, कामने हमारे हाथमें कुछ धीर-वीर पुरुषोंकी नामावली दी है। तुम उसे देखो और बताओ कि क्या तुम्हारी सेनामें ऐसा कोई धीर-वीर सुभट है जो इन्द्रिय, दोष

---

१ दर्शयिष्यसि ड०, च०। दर्शसि क०, घ०। २ नामाङ्कितकटि–च०। ३. दत्त्वाथ द्रु–ख०, ग०, घ०, च०। ४ वधिष्यसि ग०, च०। ५ गृहीष्यसि च०। ६ प्रति सह ख०।

कोऽप्यस्ति यो व्यसनदुष्परिणाममोह-
शल्यास्रवादिविजयी वद हे जिनेन्द्र।
मिथ्यात्ववीरसमरार्णवमज्जता च
[1]कस्तारकस्तव बले कथय त्वमेव ? ॥२७॥

५ इत्यादिवीरनिचयस्य पृथक्-पृथक्को नाम(नामाद्य)वीरमवधारयितुं समर्थः।
चेत् सन्ति ते वरभटाः परिमार्जयन्तु [2]नामावलीमलमिमामथवा [3]नमन्तु ॥२८॥

५. तत्कठिनवचनं श्रुत्वा [4]सम्यक्त्ववीरोऽप्यब्रवीत्–अरे वन्दिन्, मया मिथ्यात्व-संज्ञको[5] वीरोऽङ्गीकृतः। पञ्चमहाव्रतैः पञ्चेन्द्रियाण्यङ्गीकृतानि। केवलज्ञानेन मोहोऽङ्गीकृतः। शुक्लध्यानेनाष्टादशदोषा अङ्गीकृताः। तपसा कर्मास्रवश्चाङ्गीकृतः। सप्ततत्त्वैर्भय-
१० वीराः। अज्ञानं श्रुतज्ञानेन। प्रायश्चित्तैः शल्यत्रयम्। गारवाश्चारित्रेणाङ्गीकृताः। सप्त-व्यसनानि दयाधर्मेणाङ्गीकृतानि। एवमादि परस्परं वरवीरलक्षैर्नरेन्द्राः अङ्गीकृताः। ततोऽनन्तरं वन्दिनं प्रति जिनेनोक्तम्–अरे वन्दिन्, यदद्य [6]संग्रामे मम मारं [7]दर्शयसि तत्तुभ्यं बहुदेशमण्डलालङ्कारच्छत्रादीनि दास्यामि। स चाह–देव, यद्यत्र [8]क्षणमेकं स्थिरो

और भय सुभटोंको जीत सके। साथ ही वह अपना वीर भी बतलाइए जो व्यसन, दुष्परि-
१५ णाम, मोह, शल्य और आस्रव आदि सुभटोंको जीत सके तथा मिथ्यात्व-वीरके द्वारा समर-सागरमें डुबोये जानेवाले योधाओंको बचा सके।

वन्दी कहता गया : कामने कहा है कि इस प्रकार हमने अपनी सेनाके कतिपय वीरोंकी ही यह संख्या गिनायी है। समस्त वीरोंके नाम कौन गिना सकता है। इसलिए यदि आपके यहाँ इन योधाओंके प्रतिद्वन्द्वी योधा है तो आप इस नामावलीमें संशोधन कर
२० दीजिए और यदि आपके यहाँ इनकी जोड़के कोई योधा नहीं है तो चलकर कामदेवकी अधीनता स्वीकार कीजिए।

५. बहिरात्मा बन्दीकी बातको सम्यक्त्व-वीर सुन रहा था। उसे बन्दीका यह वार्तालाप बहुत अशिष्ट मालूम हुआ। उसने कहा : वन्दिन्, तुम क्या बेकार अनर्गल प्रलाप कर रहे हो ? मै मिथ्यात्वसे लड़ूँगा। पाँच महाव्रत पञ्चेन्द्रिय-सुभटोंसे युद्ध करेंगे।
२५ केवलज्ञान मोहसे संग्राम करेगा। शुक्लध्यान अठारह दोषोंके लिए पर्याप्त होगा। तप कर्मास्रवोंके साथ जुटेगा। सात तत्त्व भय-वीरोंके साथ युद्ध करेंगे। श्रुतज्ञान अज्ञानका सामना करेगा। प्रायश्चित्त तीन शल्योंसे भिडेगा। चारित्र अनर्थदण्डोंसे लडेगा। दया-धर्म सात व्यसनोंके साथ संग्राम करेंगे। इस प्रकार हमारे दलके लाखों योधा तुम्हारे सुभटोंके साथ लड़नेके लिए तैयार है।

३० सम्यक्त्व और बहिरात्माकी इस चर्चाके प्रसगमें जिनराजने बन्दीसे कहा : वन्दिन्, यदि आज रणस्थलीमें तुमने कामका साक्षात्कार करा दिया तो तुम्हें बहुत देश, मण्डल, अलङ्कार और छत्र आदिक पारितोषिकमें दूँगा।

उत्तरमें बहिरात्मा जिनराजसे निवेदन करने लगा : देव, यदि आप यहाँ क्षण-

१ कस्तावकस्त-च०। २ नामावलीमि-च०। ३ नयन्तु च०। ४. सम्यक्त्ववीरेण ख०। ५. मज्ञिको व-च०। सज्ञाङ्गीकृता ङ०। ६. सगरे म-क०, ख०, ग०, ङ०। ७ दर्शयति च०। ८-नेकोस्थि च०।

भविष्यसि तत् समोहं कृतसंगरमनङ्गं दर्शयिष्यामि।

एवमाकर्ण्य निर्वेगः संक्रुद्ध्यमानो भूत्वा(सक्रुध्यन्) अवोचत् – अरे [1]भ्रष्ट, तवै-तद्वचनमप्रस्तुतं प्रभूतमुपसहितम्[2]। अतो यदि किंचिद्वदिष्यसि तद्वधिष्यामि। ततस्स बन्दी चाह – भो निर्वेग, किमेवं जल्पसि, कोऽस्मिन्नस्ति यो [3]मा हन्ति। एतदाकर्ण्य निर्वेगेणोत्थाय[4] तस्य बन्दिनः शिरोमुण्डनं[5] नासिकाछेदं च कृत्वा द्वाराद् बहिर्निष्कासितः। ५

ततो घृतसिक्तानलवत् कोपं गत्वाऽब्रवीत् – हे निर्वेग, युष्माक चेदनङ्गहस्तेन यमायतनं न [6]दर्शयामि तदहमनङ्गचरणद्रोहको भवामि। एवमुक्त्वा निर्गतो बन्दी।

६. ततस्तमागच्छन्तमेवंविधं मकरध्वज प्रति कैश्चिद् दृष्ट्वा परस्परं विहस्योक्तम् – अहो, पश्यत पश्यत बन्दिनोऽवस्थाम्। कीदृशो भूत्वाऽऽगच्छति? १०

ततः स उवाच – अहो हताश, प्रथमं ममैव संजातम्। अधुना[7] युष्माकमपीत्थमेवं (व) भविष्यति। यतो यस्मिन् कार्ये प्रथमं यादृशी शकुनलब्धिः स्यात्तादृशं तत्कार्य

भरके लिए स्थिर रहे तो मै रणाङ्गणमें अवतरित हुए मोहसहित कामको दिखला सकता हूँ।

बहिरात्माकी इस बातसे निर्वेगको बड़ा क्रोध हो आया। वह कहने लगा, अरे नीच, तू हमारे स्वामीका इस प्रकार उपहास कर रहा है। चुप रह। अब यदि एक भी शब्द मुँहसे निकाला तो मै तेरे प्राण ले लूँगा। १५

बन्दी कहने लगा : अरे निर्वेग, क्या कह रहे हो? दुनियामे ऐसा कौन है जो मेरे प्राण ले सके।

निर्वेगने ज्यो ही बन्दीकी बात सुनी, उठकर खड़ा हो गया और बन्दीका सिर घोटकर उसकी नाक काट डाली तथा उसे समिति-भवनके द्वारसे बाहर निकाल दिया। २०

इस व्यवहारसे बहिरात्मा क्रोधसे इस प्रकार जल उठा जिस प्रकार घीके पड़नेसे आग भभक उठती है। वह निर्वेगसे कहने लगा : निर्वेग, यदि कामके हाथसे तुझे यमलोक न पहुँचा दूँ तो तू मुझे कामदेवका द्रोही समझना। बहिरात्मा बन्दी इस प्रकार कहकर वहाँसे चल दिया। २५

६. जब कामदेवके कतिपय सुभटोने बन्दीको इस प्रकार विकलाग रूपमे आते हुए देखा तो उन्हे बडी हँसी आयी। वे कहने लगे : अरे, देखो-देखो, बन्दी कैसी दुःखद अवस्थामें आ रहा है!

बन्दी इन लोगोको इस प्रकार उपहास करता हुआ देखकर कहने लगा – अरे मूर्खो, मुझे देखकर क्यो हँस रहे हो। अभी मेरी यह दुर्गति हुई है और आगे तुम्हारी भी यही दशा होनेवाली है। कारण जिस कार्यमें पहले जैसे शकुन दिखते है उस कार्यका ३०

---

१ भ्रष्ट ख०, ट०। २ –मुपहसितम् ख०, च०। ३ मोह ह–ग०। मा ट०। ४ निर्वेगोत्थाय क०, ग०, घ०, च०। ५ मुण्डन ना–च०। ६ दर्शयिष्यामि ख०। ७. 'अधुना' च० पुस्तके नास्ति।

भवति। तथैवं मे प्रथमं संजातम्। तदत्रैवेदं शकुनम्। तदधुना यद्यस्ति शक्तिस्तद्युद्धं क्रियते(ताम्)। अथवा देशत्यागेन[1] जीव्यते(ताम्)।

एवं श्रुत्वा मन्मथो वन्दिनमपृच्छत् – अरे बहिरात्मन्, स जिनः किं वदति? तदाकर्ण्य संमुखो भूत्वाऽब्रवीद् वन्दी – हे स्वामिन्, पश्यन्नपि किं न पश्यति? अन्यच्च

५ जनो [2]जनोक्ति या(या) ब्रूते सा सत्याऽस्मिश्च दृश्यते।
विद्यमानं शिरो हस्ते कति घाताश्च[3] [4]तस्करे ॥२९॥

तथा च

कोऽस्मिंल्लोके शिरसि सहते यः पुमान् वज्रघातं
कोऽस्तीदृक् यस्तरति जलधिं बाहुदण्डैरपारम्?
१० कोऽस्त्यस्मिन् यो दहनशयने [5]सेवते सौख्यनिद्रां
ग्रासैर्ग्रासैर्गिलति सततं कालकूटं च कोऽपि ॥३०॥

अन्यच्च[6]

सतप्तं द्रुतमायसं पिबति कः को याति कालगृहं
को हस्तं भुजगानने क्षिपति वै कः सिंहदंष्ट्रान्तरे।

---

१५ अन्त भी लगभग उसी प्रकारका होता है। जब मेरी इस प्रकारकी दुर्गति हुई है तो कह नहीं सकता कि इस युद्धका परिणाम स्वामीके हितमें किस प्रकारका रहेगा। इसलिए आप लोग अच्छी तरहसे सोच लीजिए। यदि हम लोगोंमें जिनराजकी सेनाके सामना करनेकी शक्ति हो तो ही हम लोगोंको लड़ना चाहिए। अन्यथा इस देशको छोड़कर यहाँसे चल देना चाहिए। जिससे जीवन-रक्षा हो सके।

२० कामदेव बन्दीकी यह बातें सुन रहा था। उसने बन्दीको बुलाया और उससे कहने लगा : अरे बहिरात्मन्, बतलाओ तो वह जिनराज क्या कह रहा है? कामदेवकी बात सुनकर बन्दी उसके सामने उपस्थित हुआ। कहने लगा : स्वामिन्, आप देखते-समझते हुए भी पूछ रहे है कि जिनराज क्या कह रहा है? वह कहने लगा :

लोग जो "हाथ कंगनको आरसी क्या" वाली किंवदन्ती कहते है वह इस
२५ सम्बन्धमें पूर्णतया लागू हो रही है। यह बात वैसी ही है, जिस प्रकार किसी आदमीका कटा हुआ सिर अन्य किसी व्यक्तिके हाथपर रखा हो और लोग पूछें कि उस आदमीके हाथमें कितने आघात लगे है।

और स्वामिन्, मेरी यह खुली घोषणा है – जिस प्रकार संसारमें कोई पुरुष सिर-पर वज्रका आघात नहीं झेल सकता, बाहुओंसे अपार समुद्र-तरण नहीं कर सकता, आगपर
३० सुखपूर्वक शयन नहीं कर सकता, विषको ग्रास-ग्रास रूपसे भक्षण नहीं कर सकता, सन्तप्त और पिघले हुए लौहका पान नहीं कर सकता, यमराजके आलयमें प्रवेश नहीं कर सकता, साँप और सिंहके मुँहमें हाथ नहीं डाल सकता, और अपने हाथसे -यमराजके महिषके

---

१. जीवति ङ०। २ जिनोक्ति वा क०, ख०, ङ०। ३ यातश्च ग०। घोताश्च च०। ४ तस्करे क०, ख०, ङ०, च०। तस्कर. ग०। ५ सेव्यते सौ–च०। ६ 'अन्यच्च' च० पुस्तके नास्ति।

क: शृङ्गं यममाहिषं निजकरैरुत्पाटयत्याशु वै
कोऽस्तीदृग् जिनसंमुखो भवति यः संग्राममूमौ पुमान् ॥३१॥ (युग्मम्)

एवं वन्दिनो वचनमाकर्ण्यारुण[1]लोचनः[2] क्रुद्ध्यमानो भूत्वा(क्रुद्ध्यन्) निर्गतो मकरध्वजः[3] । तद्यथा

सीमा[4] यथाऽपास्य[5] विनिर्गतोऽम्बुधिः केतुर्यथा क्रुद्धशनैश्चरो यथा । ५
कल्पान्तकालेऽद्भुतपावको यथा विनिर्गतो भाति तथा[6] मनोभवः ॥३२॥

तस्मिन्नवसरे[7] तस्यापशकुनानि बभूवुः । तद्यथा

शुष्कारिष्ठस्थितो[8]ऽरिष्टो[9] विरौति[10] विरसस्वनैः ।
पूर्वदिक्[11] ध्वांक्षवज्जाता पथि वामो गतः फणी ॥३३॥

लग्नोऽनलः प्रचण्डश्च खररवौ खरोलूकौ । १०
दृष्टौ शूकरशशकौ गोधानकुलो शिवासखा (खः) ॥३४॥

तारस्वरेण सुमुखो (शुनको) रोदिति कर्णौ धुनोति संमुखो भूत्वा ।
दृष्टो रिक्तघटो वै पुरतः शरट तथा तु (तथौतु)मद्राक्षीत् ॥३५॥

[12]तथा च

सींग नहीं उखाड़ सकता है उसी प्रकार ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो समर-भूमिमें जिनराज- १५
का सामना कर सके ।

बन्दीकी यह बात सुनकर कामदेवके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये । और जिस प्रकार कल्पान्तकालमें समुद्र सीमा तोडकर आगे निकल जाता है, केतु और शनैश्चर क्रुद्ध हो जाते है, और अग्निदेव प्रचण्ड हो जाता है उसी प्रकार कामदेव भी जिनराजके साथ युद्ध करनेके लिए चल दिया । २०

कामदेवने जैसे ही जिनराजपर चढाई करनेके लिए प्रस्थान किया, उसे निम्न प्रकारके अपशकुन दिखलाई दिये :

कौवा सूखे वृक्षपर बैठा हुआ विरस ध्वनि करने लगा । पूर्व दिशाकी ओर कौवोंकी पंक्ति उड़ती हुई दिखलाई दी । और साँप मार्ग काटकर बायीं ओर चला गया ।

प्रचण्ड आग लग गयी । गधा और उल्लूका तीखा स्वर होने लगा । शूकर, २० खरगोश, छिपकली, नकुल और शृगाल भी दिखलाई दिये ।

कुत्ता सामने आकर रोने लगा और कान फटफटाने लगा । दुष्ट पुरुष, खाली घड़ा और गिरगिट भी सामने दिखलाई दिये ।

---

१ अरुणवर्णलो–क०, ग०, घ०, ङ० । २. –लोचनक्रुद्धमानो भू–क०, ग०, ङ०, च० । ३ 'मकरध्वज.' ख०, ङ० पुस्तकयोर्नास्ति । ४ "सीमा यथा त्यज्य विनिर्गतो भाति तथा मनोभव" इत्येव खण्डितमशुद्धञ्च पद्य ख० पुस्तके वर्त्तते । ५. त्यज्य वि–ख०, ङ० । ६. यथा च० । ७ तस्य मकरध्वजस्य । ८ स्थितो घ० । ९. –रिष्टो क०, घ०, ङ० । १० विरौतो घ० । ११ क्षत्रथुर्जाता–ख० । १२ 'तथा च' च० पुस्तके नास्ति ।

अकालवृष्टिस्त्वथ भूमिकम्पो [1]निर्वातमुल्कापतनं प्रचण्डम् ।
इत्याद्यनिष्टानि ततो बभूवुर्निवारणार्थे सुहृदो यथैव ॥३६॥

एतान्यपशकुनान्यव[2]गणय्यमाणो(न्यवगणयमानो)मदनो यावन्निर्गतस्तावत्तस्मिन्नवसरे यादृशं यत्प्रवृत्तं तन्निरूप्यते ।

५ दिक्चक्रं चलितं भयाज्जलनिधिर्जातो महाऽव्याकुलः
पाताले चकितो भुजंगमपतिः क्षोणीधराः कम्पिताः ।
भ्रान्ता सुपृथिवी महाविषधरा [3]क्ष्वेडं वमन्त्युत्कटं
जातं सर्वमनेकधा रतिपतेरेवं चमूनिर्गमे ॥३७॥

तथा च

१० पवनगतिसमानैरश्वयूथैरनन्तै-
र्मदधरगजयूथै [4]राजते सैन्यलक्ष्मीः ।
ध्वजचमरवरास्त्रैरावृतं [5]खं समस्तं
पटुपटहमृदङ्गैर्भेरिनादैस्त्रिलोकी ॥३८॥

[6]अश्वाङ्घ्रयाहतरेणुभि[7][8]र्बहुतरैर्व्याप्तं त्वशेषं नभः
१५ छत्रैरावृतमन्तरालमखिलं व्याप्ता च वीरैर्धरा ।

असमयमें वर्षा होने लगी । भूकम्प होने लगा । वज्र और उल्कापात होने लगा । कामदेवकी यात्राके समय यह सब घोर अपशकुन हुए जो एक सहृदय मित्रकी भाँति इस बातको व्यक्त कर रहे थे कि कामदेवको इस समय अपनी यात्रा अवश्य स्थगित कर देनी चाहिए ।

२० कामदेवने इन अपशकुनोंको देखा और उसे अनुभव हुआ कि इस समय हमारा जाना श्रेयस्कर नहीं है । फिर भी वह लड़ाईके लिए निकल ही पड़ा ।

उस समय भयसे दिशाएँ चलित हो गयीं । समुद्र भी अत्यन्त व्याकुल हो उठा । पातालमें शेष नाग और मध्यलोकमें पर्वत कम्पायमान हो गये । पृथ्वी घूमने लगी और महान् विषधर विष-वमन करने लगे ।

२५ उस समय पवनके समान अनन्त घोड़ों और मदोन्मत्त हाथियोंसे सेनाकी शोभा द्विगुणित हो गयी । आकाश ध्वजाओं, चामरों और अस्त्रोंसे खचाखच भर गया । और नगाड़े, मृदङ्ग तथा भेरियोंकी ध्वनि तीनों लोकमें व्याप्त हो गयी ।

और गगनमण्डल अश्वोंके पद-रजसे सम्पूर्णतया आच्छन्न हो गया । छत्रोंसे समस्त मध्यभाग व्याप्त हो गया और पृथ्वी वीरोंसे आक्रान्त हो गयी । रथोंकी चीत्कारसे कान

---

१. निर्घातमु–क०, ग०, घ०, ङ०, च० । २ न्यवगम्यमाणो क०, ग०, घ०, ङ०, च० । ३. 'क्ष्वेडस्तु गरलं विषम्" इत्यमर । ४. राजितं ङ०, च० । ५ खमाकाशम् । "ख विहायो वियद्व्योम" इति धनञ्जय । ६ अश्वा युद्धतरे–क०, ग० घ०, ङ०, च० । ७ वरतरैर्व्या–ङ० । ८. 'बहुतरं' इत्यारभ्य 'धरा' इति पर्यन्त पाठ ङ० पुस्तके नास्ति ।

निर्घोषे रथजैः [1]स्वनः प्रपतितं(तः) कर्णेऽपि न श्रूयते
वीराणां निनदैः प्रभूतभयदैर्युक्ता प्रपन्ना चमूः ॥३९॥

७. एवमुभयसैन्यकोलाहलमाकर्ण्य संज्वलनेनैवं हृदि चिन्तितम् – किमयमनङ्गो मूढः ? यतो जिनबलं सबलं दृश्यते। नत्किं करोमि। 5

[2]उक्तं च यतः

"उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।
पयःपानं भुजंगानां केवलं विषवर्द्धनम् ॥ ४ ॥

[3]प्राय सम्प्रति कोपाय सन्मार्गस्योपदेशनम्।
निर्लूननासिकस्येव विशुद्धादर्शदर्शनम् ॥ ५ ॥

[4]मूर्खत्वं हि सखे ममापि रुचितं तस्मिंस्तदष्टौ गुणा 10
निश्चिन्तो बहुभोजनो वठरता रात्रौ दिवा सुप्यते।
कार्याकार्यविचारणान्धबधिरो मानापमानौ समौ
इत्त सर्वजनस्य मूर्ध्नि च पदं मूर्खः सुखं जीवति ॥ ६ ॥

इतने भर गये थे कि कोई शब्द भी सुनाई न पडता था। उस समय सेनामे केवल वीरोंके भयकर शब्द ही सुनाई पड रहे थे। 15

७ इस प्रकार दोनो पक्षकी सेनाओंका कोलाहल सुनकर संज्वलनने अपने मनमें सोचा कि क्या कामदेव मूर्ख हो गया है जो उसे यह भी मालूम नहीं है कि उसकी सेना कहाँतक शक्ति-सम्पन्न है ? समझमें नहीं आता कि स्वामीके पास जाकर क्या कहूँ ? क्योंकि :

"मूर्ख पुरुषोंको उपदेश देनेसे उन्हें क्रोध ही आता है। बातका समाधान तो कुछ होता नहीं। जिस प्रकार साँपको दुग्ध-पान करानेका परिणाम विष-वृद्धि ही होता है। 20

जिस प्रकार नासिकाविहीन पुरुषको दर्पण बुरा लगता है उसी प्रकार मूर्ख पुरुषको सन्मार्गका उपदेश भी अच्छा नहीं मालूम देता।

संज्वलन सोचता है : वैसे मूर्खता मुझे बडी अच्छी लगती है। क्यों कि उसमें आठ गुण है : 25

मूर्ख आदमी निश्चिन्त रहता है। बहुत भोजन करता है। उसकी पाचनक्रिया ठीक रहती है। रात-दिन सोनेको मिलता है। कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यका विचार नहीं करना पडता। किसीकी बातपर ध्यान नहीं देना पडता है। मान-अपमान नहीं मालूम देते और सबके सिर-माथे रहनेका अवसर प्राप्त होता है। इस प्रकार मूर्ख मनुष्य सदैव सुखपूर्वक जीवन-यापन करता है। 30

---

१ स्वन प्र-स०। २ पञ्च० मि० भे० ४२०। ३. यश० च० ६।२७०। ४. "मूर्खत्व सुलभ भजस्व कुमते मूर्खस्य चाष्टौ गुणा निश्चिन्तो बहुभोजनोऽतिमुखरो रात्रिंदिव स्वप्नभाक्। मानापमाने सम प्रायेणामयवर्जितो दृढवपुर्मूर्ख सुख जीवति।"–सुभाषित० भा० ४१।६६।

मूर्खैरपक्वबोधैश्च [1]सहालापैश्च(पे च)तुष्फलम्[2] ।
वाचां व्ययो मनस्तापस्ताडनं दुष्प्रवादनम् ॥ ७ ॥" इति

तथापि परं[3] किंचिद्भणिष्यामि [4]यतोऽयमस्मत्स्वामी[5] । एवमुक्त्वा संमुखो भूत्वाऽब्रवीत् – देव, दुर्द्धरोऽयं जिनराजः । ततः किमनेनच्छलेन प्रयोजनम् ?

५ ततः स्मर ऊचे – अरे मूढ, क्षत्रियाणां छलार्थं जीवितम्[6] ? [7]उक्तं च

"यज्जीव्यते[8] क्षणमपि प्रथितं मनुष्यै–
र्विज्ञानशौर्यविभवार्यगुणैः समेतम् ।
तन्नाम जीवितफलं प्रवदन्ति [9]तज्ज्ञाः
काकोऽपि जीवति [10]चिरं च बलिं च भुङ्क्ते ॥ ८ ॥"

१० अन्यच्च[11] प्रथमं[12] मे[13] रत्नानि गृहीत्वा गतः । द्वितीयं मम दूतापमानं[14] कृतम् । तृतीयं जगत्प्रसिद्धबन्दिनो नासिकाछेदः[15] कृतः । चतुर्थं स्वयमेवा[16]क्रम्यागतोऽस्ति । [17]तदैतच्छलं सिद्ध्यङ्गनार्थं[18] परित्यजन् न लज्जेऽहम् । अन्यच्च, यदि कथमपि जिनं

अपक्वज्ञानी मूर्खोंके साथ वार्तालाप करनेके चार परिणाम है : वाणीका व्यय, मनस्ताप, दण्ड और व्यर्थका बकवाद ।

१५ संज्वलन मनमें सोचता है : यद्यपि यह बात है, फिर भी कामदेव हमारा स्वामी है । इसलिए मुझे उससे इस सम्बन्धमें कुछ-न-कुछ अवश्य कहना चाहिए ।

यह सोचकर संज्वलन कामदेवके सामने पहुँचा । और कहने लगा : स्वामिन्, आप जिनराजको जीत नहीं सकते । फिर यह छल क्यों कर रहे है ?

कामदेव कहने लगा : अरे मूढ, क्षत्रियोंकी वृत्तिको तू छल बतला रहा है । क्या

२० तुझे जीवनकी परिभाषा नहीं मालूम है ?

"मनुष्योंका यदि एक क्षण भी विज्ञान, शौर्य, विभव और आर्यजनोचित प्रवृत्तियोंके साथ व्यतीत होता है, बुद्धिमान् उसे ही जीवनका फल कहते है । वैसे तो कौवा भी चिर-काल तक जीवित रहकर अपनी उदर-पूर्ति करता रहता है ।"

कामदेव कहता गया : संज्वलन, फिर जिनराजने जितने अपराध किये है । हम उन्हें

२५ क्या-क्या गिनायें । पहले तो इसने हमारे रत्न चुराये । दूसरे हमारे दूतका अपमान किया । तीसरे जगत्प्रसिद्ध बन्दीकी नाक काटी और विरोधाग्निको पहलेकी अपेक्षा और अधिक प्रज्वलित किया । और चौथे यह हमारे ऊपर स्वय ही चढ़कर आ गया है । संज्वलन, तुम्हारी दृष्टिमें यदि यह छल ही है तो मै सिद्धिअङ्गनाके लिए उसे छोड़कर लज्जित नहीं

---

१ सहालापञ्च–गं० । २. च निष्फलम् ग० । ३. 'पर' च० पुस्तके नास्ति । ४ ततोऽयम–च० । ५. 'स्वामी' इति च० पुस्तके खण्डित. । ६ क्षत्रियाणा जीवित छलार्थम् ख०, ङ० । ७ पञ्च० मि० भे० २४ । ८ जायते क्ष–क०, घ०, च० । ९ प्रज्ञाः च० । १० चिराय ङ० । पञ्च० मि० भे० । ११. 'अन्यच्च' ख० पुस्तके नास्ति । १२. प्रथमे क०, ङ० । १३. 'मे' क०, घ०, ङ०, च० पुस्तकेषु नास्ति । १४. कृत क०, ङ० । १५. –च्छेद कुर्वन्त नियमेन निरोध कृत , क०, घ०, ङ०, च० । १६ चङ्क्रम्या –क०, घ०, ङ०, च० । १७. तदेवच्छ–ख०, घ० । १८. परितस्त्यजन्नुपयोजयन्नित्यर्थ ।

संग्रामे प्राप्नोमि, तत्सुरनरकिन्नरयक्षराक्षसफणीन्द्रादीनां [1]यत् कृतं तत् करिष्यामि। यतो हि प्रभूतदिवसपर्यन्तं स्वगृहाभ्यन्तरे गर्जना [2]कुर्वन् सुखेन स्थितः। अतो महागुराया पतितः कुतो यास्यति।

उक्तं च

"तावच्छौर्यं ज्ञानसंपत् प्रतिष्ठा तावच्छील संयम [3]स्याच्चपक्ष। ५
तावत् सिद्धि सपदो विक्रमो वै यावत् क्रुद्ध सगरे नाहमेक[4] ॥ ९।"

८. ततो वन्दिनाऽभिहितम् – देव, पश्य [5]पश्य। [6]संप्राप्तः संप्राप्तोऽयं जिननाथः तत्किमेवं [7]गलगर्जसि। एवमुक्त्वा वन्दी स्मरं प्रति [8]जिनसुभटान् दर्शयामास।

तथा च

पश्य निर्वेगवीरोऽयं [9]खड्गहस्तो महाबलः[10]। १०
पश्य दण्डाधिनाथोऽयं सम्यक्त्वाख्यो हि दुर्द्धरः ॥४०॥
संमुखो दुर्द्धरोऽयं च तत्त्ववीरोऽतिदुर्जयः।
संप्राप्ताः पश्य पश्यैते महाव्रतनरेश्वराः ॥४१॥
ज्ञानवीरा महाधीरा यैर्जितं सचराचरम्।
[11]पश्यायं संयमो वीरो वैरिणामपरो यमः ॥४२॥ १५

होना चाहता। और यदि मैं जिनराजको किसी तरह संग्राममें प्राप्त कर सका तो उसकी भी वही दशा करूँगा जो सुर, नर, किन्नर, यक्ष, राक्षस और फणीन्द्रोंकी की है। अबतक जिनराज अपने घरमें बैठकर ही गरजता रहा है। अब मेरे जालमें आ फँसा है और देखते हैं कि इस जालसे वह किस प्रकार निकलता है। क्योंकि

"पुरुषोंके शौर्य, ज्ञान, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, शील, संयम, चारित्र, सिद्धि, सम्पत्ति २० और पराक्रम तभीतक साथ देते हैं जबतक मैं क्रुद्ध होकर रणाङ्गणमें अवतीर्ण नहीं होता।"

८. इतने ही में वन्दीने कहा : स्वामिन्, देखिए, जिनराज आ गये। आप यह क्या गला फाड रहे हैं? यह कहकर वन्दी कामके लिए जिनराजके सुभट दिखलाने लगा।

वह कहने लगा : देखो, यह अत्यन्त बलवान् निर्वेग वीर है, जिसके हाथमें २५ खड्ग चमक रहा है। और यह दण्डाधिपति सम्यक्त्व है, जिसे कोई पराजित नहीं कर सकता।

सामने यह दुर्जय और दुःसह तत्त्व-वीर है, और देखो-देखो, यह महाव्रत-राजा भी आ गये हैं।

साथ ही चराचरविजेता और महाधीर यह ज्ञान-वीर है और देखो, यह संयम- ३० वीर है जो वैरियोंके लिए द्वितीय यमकी तरह है।

---

१ यत्कृतय त–ख०। २ कुर्वन्नयत् ग०, ङ०, च०। ३ चात्र पदय घ०। –स्चात्रपस्य ङ०। –स्चात्तपस्य क०। ४ –मेकम् क०, ग०, ङ०। ५ पश्य क०, घ०, ङ०, च०। ६ 'संप्राप्त' क० घ०, ङ०, च० पुस्तकेषु नास्ति। ७ गर्जसे ख०। गलस्यो गर्जो यस्यासौ तथोक्तस्तमिवात्मानमाचरसीति गलगर्जसि। ८ वीरान् द–ख०। ९. खर क०, घ०, ङ०, च०। १० महाबली ख०। महाबलै ङ०। ११. पश्येय घ०, ङ०, च०। यस्याऽय म–क०।

एवमाद्यनन्तं[1] जिनसैन्यं यावद्वन्दिना दर्शितं तावन्मदनबलं वेगेन[2] निर्गतम्। ततोऽनन्तरं [3]जयका(क)रणार्थं दलयुगलमामिलितम्[4]। तद्यथा

तोरैर्वाचालभल्लैः परशुहयगदामुद्गराद्यैर्न्दुचापै-
र्नाराचैर्भिण्डमा(पा)ला(लैः) हलझपमुसलैः[5] शक्तिकुन्तैः कृपाणैः।
पट्टीशैश्चक्रवज्रप्रभृतिभिरपरैर्दिव्यशस्त्रैस्तथास्त्रै-
रन्योन्यं युद्धमेवं मिलितदलयुगे वर्त्तते सद्भटानाम् ॥४३॥

तथा[6] च

[7]एके वै हन्यमाना रणभुवि सुभटा जीवशेषाः पतन्ति
ह्येके मूर्च्छां प्रपन्नाः स्युरपि च पुनरुन्मूर्छिता वै[8] भवन्ति।
मुञ्चन्त्येकेऽट्टहासं[9] निजपतिकृतसंयानमाद्यं प्रसादं
स्मृत्वा धावन्ति चाग्रे [10]जिनसमरभयाः प्रौढिवन्तो हि भूत्वा[11] ॥४४॥
एके वै कातराणां समरभरवशात् त्रासमुत्पादयन्ति
ह्येके संपूर्णघातैरुपहतवपुषो[12] नाकनारीप्रियाः[13] स्युः।
एके ये[14] धीरधैर्या रिपुहतजठरालम्ब्य(म्ब)मानान्त्रजाला-
घातैः सभिन्नदेहा अपि भयरहिता वैरिभिर्यान्ति योद्धुम् ॥४५॥

वन्दी इस प्रकारसे कामदेवको जिनराजकी सेनाके सेनानियोंका परिचय करा ही रहा था कि इतनेमें कामकी सेना वेगसे आगे निकल गयी और जिनराज तथा कामकी सेनामें भयंकर संघर्ष छिड़ गया।

उस समय तीर, भाला, फरसा, गदा, मुद्गर, धनुष, बाण, भिण्डि, हल, मुसल, शक्ति, कुन्त, कृपाण, चक्र और दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे दोनों दलके योधाओंमें युद्ध होने लगा।

इस युद्धकालमें अनेक सैनिक मरे और जीवन-शून्य होकर पृथ्वीपर गिर गये। कुछ मूर्च्छित हो जाते थे और कुछ पुनः सावधान होकर लड़ने लगते थे। किन्हींका हँसना बन्द हो गया था, और कुछ अपने स्वामीका प्रोत्साहन प्राप्त करके स्वामीके आगे-आगे दौड़ रहे थे।

अनेक सैनिक युद्धसे डरकर कातर हो गये। कोई सम्पूर्ण शरीरमें आघात पहुँचनेसे मर गये और स्वर्गमें जाकर देवाङ्गनाओंके प्रेम पात्र हुए। कुछ धीर-वीर सैनिक इस प्रकारके थे जो शत्रुओंके आघातोंसे शरीरकी अँतड़ियाँ कट जानेपर भी निर्भय होकर वैरियोंके साथ युद्ध करते रहे।

---

१ एवमादित जि–क०, घ०, च०। २ धावन् नि–ख०। मयवे नि–च०। यवे नि–घ०। ३ जिनका–घ०, ढ०, च०। रणका–रु०। ४ –मामोलिनम् क०, च०। ५ जसमु–ख०। ६ 'तथा च' क०, घ०, ट०, च० पुस्तकेषु नास्ति। ७ केचिद् वै ख०। एव वै–च०। ८ भरन्ति क०, ढ०, घ०। ९ –ट्टहासा नि–ख०।–हासनि–च०। १० जिनम–ख०। ११ न विद्यन्त उल्लिखितपद्यद्वयस्यान्तिमषट्चरणानि घ० पुस्तके। १२ वपुपे ख०। मृता सन्त। १३ नाकनारिप्रिया क०, ख०। देवाङ्गनाप्रेमपात्रा। १४ हा धी–ख०। जे धी– क०।

एके विभ्रान्तनेत्रास्त्रुटितपदभुजा[1] शोणितैर्लिप्तदेहाः
संग्रामे भान्ति वीरा[2] द्रुवतरुगहने[3] पुष्पिताः किंशुकाः स्युः ।
अन्योन्यं बाणघातोच्छलितभटशिरोराहुशङ्कां दधेऽर्को[4]
युद्धं मिथ्यात्वनाम्नस्त्विति समरभरे वर्तते दर्शनस्य ॥४६॥

एवं यावदुभौ विग्रहं कुरुतस्तावद्यो जिनस्याग्रणीर्दर्शनवीरः स मिथ्यात्ववीरेण संगरार्णवे[5] भङ्गमानीतः । तावत् कीदृशः संगरार्णवः । तद्यथा ५

मेदोमांसवसादिकर्दमयुतो रक्ताम्भसा पूरितः
प्रध्वस्ताश्वखुरौघ[6] शुक्तिसहितः छत्रादिफेनाकुलः ।
नानावीरकिरीटमौक्तिकमहारत्नादिशिक्ता[7] (सिकता)न्वितो
[8]मिथ्यात्वाद्भुतवाडवानलयुतः कोलाहलैर्गर्जितः ॥४७॥ १०

तत्रासिच्छुरिकादिशस्त्रनिचयो भातीव मीनाकृतिः
केशस्नायुशि(सि[9])रान्त्रजालनिचयः शैवालवद् दृश्यते ।
यानीभेन्द्रकलेवराणि[10] [11]पतितानीद्गूरणाम्भोनिधौ
पोतानीव[12] विभान्ति तानि रुधिरे वाऽस्थीनि शङ्खा इव ॥४८॥

कुछ सैनिकोंकी आँखें फिर गयीं । किन्हींके हाथ-पाँव कट गये । और किन्हींके शरीर खूनसे लथ-पथ हो गये । इस युद्धकालमें वे वीर सेनानी इस प्रकारसे मालूम हुए जैसे वृक्षावली-मण्डित अरण्यमें किंशुक फूले हुए हों । उस समय बाणोंके प्रहारसे अनेकों कटे हुए सिर उछलते थे जो राहुके समान प्रतीत होते थे और उनसे ऐसा मालूम देता था जैसे अनेकों राहु और सूर्यका युद्ध हो रहा हो । इस प्रकार मिथ्यात्व और दर्शनवीरका यह युद्ध अत्यन्त भयकर था । १५ २०

इस तरह मिथ्यात्व और जिनेन्द्रके अग्रणी दर्शनवीरका परस्पर युद्ध हो ही रहा था कि मिथ्यात्वने दर्शनवीरको समरभूमिमें पछाड दिया । उस समय समरार्णव इस प्रकारसे प्रतिभासित होने लगा ।

जिनेन्द्रका सैन्य-सागर मेदा, मास, चर्बी आदि कीचडसे युक्त हो गया । खूनके जलसे भर गया । घोडोंकी टूटी हुई खुररूपी शुक्तियोंसे पूर्ण हो गया और छत्ररूपी फेनसे वह आकुल हो गया । उनके वीरोंके मुकुटोंमें जडे हुए मोती और महान् रत्नोंकी रेतसे अन्वित हो गया । मिथ्यात्वरूपी अद्भुत बडवानल उसमें प्रवेश कर गया और कोलाहलसे गर्जना करने लगा । २५

इस सैन्य-सागरमें तलवार, छुरी आदि अस्त्र-समूह मीनके समान प्रतीत हुए । केश, स्नायु, नाडियाँ और अँतडियाँ सेवालके समान प्रतीत हुईं । हाथियोंके कलेवर पोतोंके समान मालूम हुए और हड्डियाँ शंखोंके समान मालूम हुईं । ३०

---

१. पदभुजाशो– ङ०, च० । २ हृदत– ख० । द्रवत– ध०, च० । इव त–ङ० । ३. गहने पु–घ०, ङ० । ४ –धेऽर्कं घ०, च० । ५ तत्को–ख० । ६. –रोऽश्व शु–च० । ७ शक्तान्वि–क०, च० । ८. 'शिक्तान्वितो' इत्यारभ्य 'शस्त्रनिचयो' इति पर्यन्त पाठ ख० पुस्तके नास्ति । ९ शिरा नाडी । "नाडी तु धमनि सिरा" इत्यमर । १० गजेन्द्रशरीराणि । "द्विरदेभमतङ्गमा" इति धनञ्जय । ११ पतिता ताद्–क०, घ०, च० । १२ चिन्त्यमत्र नपुंसकत्वम् ।

वीक्ष्यैवं व्रणसागरं जिनपतेः सैन्यं च नश्यत्यलं
मार्गं त्यज्य[1] (त्यक्त्वा वर्त्म) विशत्यमार्गनिचये दीना[2] (नं) जनं (ना) शङ्कितम्।
धीरत्वं स्वपतेर्न लक्षयति तद्वाञ्छत्यहो मन्दिरं
मिथ्यात्वस्य भयान्नरेषु[3] शरणं गच्छत्स्वनेकेषु[4] च ॥४९॥
५ त्यक्तात्मशरणं जातमतीचारे[5] प्रवर्त्तितम्।
कस्यापि मन्यते नाज्ञां[6] मिथ्यात्वेनेति[7] तर्जितम् ॥५०॥

६. यावदेवं प्रवर्त्तते तावद्गगनस्थिता[8] ब्रह्माद्यास्त्रिदशाः कौतूहलं[9] विलुलोकिरे। तत्र पितामहः प्रोवाच – भो सुरनाथ, पश्य पश्य जिनस्य सैन्यं भज्यमानं दृश्यते। ततः शचीपतिरवोचत् – भो अम्भोजभव, यावन्निर्वेगसहितः प्रचण्डसम्यक्त्ववीरः न प्राप्नोति
१० तावज्जिनसैन्यस्य[10] भङ्गो भविष्यति। तदिदानीं क्षणमेकं स्थिरीभव, यावत्सम्यक्त्वनिः[11]-शङ्काशक्तिघातेन शतखण्डीभूतं मिथ्यात्वं न दर्शयामि।

पुनः स चाह – भो शक्र, यदि कथमपि मिथ्यात्वस्य भङ्गो भविष्यति तन्मोहमल्लः केन जेतव्यः? उक्तं च–

"न मोहाद् बलवान् धर्मस्तथा दर्शनपञ्चकम्।
१५ न मोहाद् बलिनो देवा न मोहाद्बलिनोऽसुराः[12] ॥१०॥

६. कामदेव और जिनेन्द्रकी सेनाके इस युद्धको आकाशमें विराजमान ब्रह्मा और इन्द्र देख रहे थे। उन्होंने देखा कि मिथ्यात्वके प्रतापसे जिनेन्द्रकी सेना नष्ट हो चली है और मार्ग छोडकर कुमार्गकी ओर उन्मुख हो रही है तथा अनेक सैनिक मिथ्यात्वकी शरणमे जा रहे है तो वह इन्द्रसे कहने लगा मिथ्यात्वके प्रभावसे जिनराजकी सेनाने अपने
२० स्वामीकी शरण छोड दी है और वह उन्मार्गमें प्रवृत्त हो गयी है। मिथ्यात्वकी उपस्थितिमें शायद ही किसीकी विवेक-बुद्धि स्थिर रह सके।

इन्द्रने उत्तरमें कहा : ब्रह्मन्, जबतक निर्वेगके साथमें प्रचण्ड सम्यक्त्ववीर नहीं आता है तबतक जिनराजकी सेनाकी सुरक्षा नहीं है। वह आगे कहने लगा : ब्रह्मन्, इसलिए आप क्षण-भरको जरा स्थिर होकर बैठ जाओ। देखो, मै अभी हाल निःशङ्का
२५ शक्तिके आघातसे मिथ्यात्वको सैकडो खण्डके रूपमें दिखलाता हूँ।

ब्रह्मा इन्द्रसे कहने लगे : इन्द्र, यह तो तुमने ठीक कहा। पर यह तो बताओ, इस प्रकारसे मिथ्यात्वके भङ्ग हो जानेपर भी मोहमल्लको कौन पराजित कर सकेगा? कहा भी है :

"मोहसे बलवान् न धर्म है और न दर्शन है। न देव है और न ही बलशाली
३० मनुष्य है।

---

१ अत्र क्त्वाप्रत्ययान्तत्वमेव साधु। २. मार्गस्य दीनत्वोक्त्या तस्योत्तमजनगर्हणीयत्व व्यञ्जितम्। ३. भयातुरेषु ग–क०, ङ०, च०। ४. गच्छन्ति अन्येषु च क०, घ०, ङ०, च०। ५ अतीचारेऽपथ इत्यर्थ। ६ ज्ञान मि–क०, घ०, ङ०, च०। ७ –ति लज्जित ख०। ८ गगन स्थित्वा घ०। ९ 'द्यास्त्रिदशा.' इत्यारभ्य 'अम्भोजभव' इति पर्यन्त पाठ घ०, च० पुस्तकयोर्नास्ति। १०. भङ्गो भवेत् घ०, च०। ११. सम्यक्त्वस्य नि–ख०। १२ –नो नरा क०, घ०, ङ०, च०।

न मोहात् सुभट कोऽपि त्रैलोक्ये [1]सचराचरे ।
यथा गजाना गन्धेभ [2] शत्रूणा च तथैव सः ॥११॥"

तच्छ्रुत्वा सुरेन्द्रो विहस्योवाच – हे पद्मयोने [3], तावन्मोहस्य पौरुषं यावत् केवल [4]-ज्ञानवीरो न दृश्यते । उक्त [5] च यतः

"निद्रामुद्रितलोचनो [6] मृगपतिर्यावद्गुहां सेवते
तावत्स्वैरममी चरन्तु हरिणा स्वच्छन्दसचारिण ।
उन्निद्रस्य विधूतकेसरसटाभारस्य निर्गच्छतो
नादे श्रोत्रपथं गते हतधिया सन्त्येव दीर्घा दिशः ॥१२॥
तावद्गर्जन्ति फूत्कारै काद्रवेया विषोल्कटा. ।
यावन्नो दृश्यसे शूरो वैनतेय. खगेश्वर [8] ॥१३॥"

ततः [9]पङ्कजभवोऽवोचत् [10]– भो कुलिशधर [11], यदि कथमपि संग्रामे केवलज्ञान-वीरेण मोहो जितस्तन्मदनराजस्य मनोमातङ्गं धावन्तं धर्त्तु कः समर्थोऽस्ति ? तदेतदनिष्टं जिनेश्वरेण कृतं यदनेन सह युद्धं कर्त्तुमारब्धम् । यतोऽस्माभिरस्य पौरुषं [12]दृष्टं श्रुतमनुभूतमस्ति । अन्यच्च, ये ये चानेन जितास्तान् [13]प्रकटान् किं कथयामि ।

चराचर तीनो लोकमें मोहसे बढकर कोई सुभट नहीं है । जिस प्रकार गजोंमे गन्धगजकी प्रसिद्धि है, उसी प्रकार शत्रुओंमें मोहमल्ल भी प्रसिद्धिमान् है ।"

ब्रह्माकी बात सुनकर सुरेन्द्र हॅस पडा । वह कहने लगा : ब्रह्मन्, मोहका पुरुषार्थ तभीतक कार्यकर हो सकता है जबतक वह केवलज्ञानवीरका साक्षात्कार नहीं करता है । कहा भी है :

"सिंह जबतक ऑख बन्द करके गुहामें सोता है हिरण तभीतक स्वच्छन्द विचरण करते है । किन्तु जैसे ही वह जागता है और जागकर सटाओंको फटकारता हुआ गरजकर गुफासे बाहर आता है उस समय बेचारे हिरनोंको दिशाओंमें भागनेके सिवाय और कोई चारा नहीं रह जाता । और

उत्कट विषवाले सॉप तभीतक फुसकारते है, जबतक उन्हे पक्षिराज गरुड दिख-लाई नहीं देता ।"

ब्रह्माने इन्द्रकी बात सुनी और कहने लगा · इन्द्र, यदि आपके कहनेके अनुसार केवलज्ञानवीर मोहको जीत भी ले, लेकिन यह बताओ, इस द्रुतगतिसे दौडनेवाले मन-मातङ्गका कौन सामना कर सकता है ? इसलिए जिनेन्द्रने यह अच्छा काम नहीं किया

---

१ सचराचर च० । २. गन्धप्रधान इभो गन्धेभ, प्रमुखहस्तीत्यर्थ. । ३ पद्मयोने ब्रह्मन् । "पद्म-योनिरयोनिज" इति धनञ्जय । ४ "बाह्येनाभ्यन्तरेण च तपसा यदर्थमर्थिनो मार्ग केवन्ते सेवन्ते तत्केवलम् । असहायमिति वा ।" —स० सि० १।९ । ५ " गते गतधिय सन्त्वेव दीर्घायुष ।" – सुभाषितत्रि० २१।८१ । ६ पद्यमिद क०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति । ७ पद्यमिद ख० पुस्तके नास्ति । ८. खे व्योम्नि गच्छन्तीति खगा पक्षिणस्तेषामीश्वर स्वामी । ९ पङ्कजभवो ब्रह्मा । १० –वो वक्ति क०, ख०, ड०, च० । ११ कुलिश वज्र धरतीति तथोक्त इन्द्र, तत्सम्बुद्धौ हे कुलिशधर । १२ 'दृष्ट' ख० पुस्तके नास्ति । १३ प्रत्येकान् किं– ख० ।

एवमुक्त्वा संमुखं गत्वा सुरेन्द्रश्रवणे सकलं वृत्तान्तमकथ(य)त्। 'अहं शंकरो हरि[1]श्चेति त्रयोऽप्येकत्र मिलित्वा वयं मदनोपरि युद्धार्थं चलिताः। ततोऽनन्तरं शंकर एवं ववाद – "अहं मदनारिरिति जगत्प्रसिद्धः।" एवं तस्य वचनबलादावामपि सगर्वौ जातौ।

ततो गिरिजेशो मदनारिनामगर्वादग्रेऽग्रे धावन्निर्गतो यावद् मदनस्थानं संप्राप्तस्तावत्तेन संमुखो दृष्टः। तदनन्तरं स्वबाणेनैकेन मदनेन [2]श्रीकण्ठो वक्षस्थले विद्धो मूर्च्छां प्रपन्नो निपपात। [3]तस्मिन्नवसरे [4]गिरितनुजया निजवसनाञ्चलेन वातं कृत्वा निजमन्दिरं नीत्वा गङ्गाजलेन संसिक्तः स्वस्थोऽभूत्।

इतोऽनन्तरं नारायणो बाणद्वयेन हतः। तस्मिन्नवसरे कमलाऽनङ्गपादयोर्लग्ने। ततः पुरुषभिक्षां ययाचे – देव, मम भर्तृ[3]दानं दीय[5]ताम्। [6]रक्ष मे(मां) वैधव्यम्(व्यात्)। एवमुक्त्वा स्वगृहं निनाय[7]।

[8]तद्वद् बाणद्वयेन मां विव्याध[9]। तदवसरे [10]ऋश्यया रक्षितोऽहम्। तदुपकारात्तद्दिनप्रभृति ऋश्या मम [11]भार्या बभूव।

जो कामके साथ युद्ध ठान बैठे। मै यह बात इसलिए कह रहा हूँ कि मैंने कामका पौरुष देखा है, सुना है और अनुभव भी किया है। कामने अपने पौरुष-प्रतापसे जिन-जिनको पछाड़ा है, उनकी गिनती गिनानेसे लाभ नहीं है। इतना कहकर वह सुरेन्द्रके पास गया और उसके कानमें जाकर सब कुछ वृत्तान्त सुना दिया। ब्रह्माने इन्द्रके कानमें इस प्रकार कहा :

"मै, शंकर और हरि तीनों ही एकत्र मिलकर मदनके ऊपर चढाई करनेके लिए चले। इतनेमें शंकर कहने लगे : संसारमें मेरी 'मदनारि'के नामसे प्रसिद्धि है। शंकरके इस कथनसे हम लोगोंको भी गर्व हो आया। इस प्रकार मदनारि गिरिजेश अभिमानके मारे आगे-आगे दौड़ते हुए जैसे ही कामके स्थानपर पहुँचे—दोनोंका कामसे सामना हो गया। कामने श्रीकण्ठके वक्षस्थलमें एक बाण मारा, जिससे आहत होकर वह मूर्च्छित हो गये और पृथ्वीपर गिर पड़े। इतनेमें पार्वती वहाँ आ गयीं और अपने वस्त्रके अंचलसे हवा कर उन्हें अपने घर ले गयीं। वहाँ गंगाजलसे सिंचन करनेपर वह स्वस्थ हो सके। तदनन्तर उसने नारायणको दो बाण मारे, जिससे कमला घबड़ा गयी और कामके पैरोंमें गिरकर

---

१. हरिब्रह्माणावपि। २. श्रीकण्ठो हर। "उग्र कपर्दी श्रीकण्ठ" इत्यमरः। ३. ततस्तस्य जायया नि–ख०। ४. गिरितनुजा गौरी, तया। ५. भर्त्तुर्नारायणस्य दानं जीवनदानमित्यर्थं। ६. दीयते च०। ५. 'रक्ष मे' च० पुस्तके नास्ति। ७ 'सा कमला तम्' इत्यध्याहार्यम्। ८. हरिहरवत्। ९. 'स' इत्यध्याहार्यम्। १०. ऋश्या मृगी। "एण. कुरङ्गमो ऋश्य स्यादृश्यश्चारुलोचन" इति पुरुषोत्तम। ११ "एव हि पुराणेपु प्रसिद्धम्—'ब्रह्मा स्वदुहितर सध्यामतिरूपिणीमालोक्य कामवशो भूत्वा तामुपगन्तुमुद्यत। सा चाय पिता भूत्वा मामुपगच्छतीति लज्जया मृगीरूपा बभूव। ततस्ता तथा दृष्ट्वा ब्रह्माऽपि मृगरूपं दधार। तच्च दृष्ट्वा त्रिजगन्नियन्त्रा श्रीमहादेवेनाय प्रजानाथो धर्मप्रवर्तको भूत्वाऽप्येतादृश जुगुप्सितमाचरतीति महताऽपराधेन दण्डनीयो मयेति पिनाकमाकृष्य शर प्रक्षिप्त। तत स ब्रह्मा व्रीडित पीडितश्च सन् मृगशिरोनक्षत्ररूपो बभूव। तत श्रीरुद्रस्य शरोऽप्यार्द्रानक्षत्ररूपो भूत्वा तस्य पश्चाद्भागे स्थितः। तथा चार्द्रामृगशिरसो सर्वदा सनिहितत्वादद्यापि न त्यजति, इत्युक्तम्।"—म० स्तो० म० टी० २२।

तदेतद् वृत्तान्तं[1] त्वां प्रति कथ्यते, यतः कथनयोग्यस्त्वम्। अन्यान्यमूढान् प्रति चेत् कथ्यते तत् केवलं हास्यं भवति। यतः प्रसूता एव वेदनां वेत्ति, न च वन्ध्या। तदस्मत्सदृशानां देवानां य एवंविधस्त्रासो[2] दर्शितस्तत्र जिनेश्वरस्य किं प्रष्टव्यम्। यतो जिनः, सोऽपि देवसंज्ञकः।'

तच्छ्रुत्वाऽत्रार्थे सुरेन्द्रः प्रमाणवचनमवोचत् – [3]अहो ब्रह्मन्, भवत्वेवम्, परं [4]किं त्वन्तरान्तरमस्ति। [5]उक्तं च यतः ५

"[6]गोगजाश्वखरोष्ट्राणां काष्ठपाषाणवाससाम्।
नारीपुरुषतोयानामन्तरं [7]महदन्तरम्॥ १४॥"

तत्किं देवत्वेन समत्वं प्राप्यते? तथा च

[8]मीनं भुङ्क्ते सदा शुक्लः पक्षौ द्वौ गगने गतिः। १०
निष्कलङ्कोऽपि चन्द्राच्च(चन्द्रेण) न याति समतां वकः॥५१॥

भीख माँगने लगी। उसने कहा : "मै अपने पतिका जीवन-दान चाहती हूँ। कामदेव, तुम मुझे विधवा नहीं करो।" इस प्रकार प्रार्थना करके वह उन्हें घर ले गयी। तदुपरान्त कामने मुझे भी अपने दो बाण मारे। उस समय मुझे ऋश्याने बचाया। इसलिए उस दिनसे लेकर ऋश्या मेरी पत्नी हो गयी।" १५

इन्द्र, यह घटनाचक्र मैं तुम्हें इसलिए सुना रहा हूँ कि तुम इस वृत्तान्तके सुननेके पात्र हो। यदि यही बात अन्य मूढोंको बतायी जाये तो वे सिर्फ हँसी ही करेंगे। क्योंकि प्रसव-जन्य वेदनाका अनुभव प्रसूता ही कर सकती है, वन्ध्या नहीं। इस प्रकार जब कामने हम-सरीखे देवोंको इस प्रकारका त्रास दिया है तब जिनराजका क्या कहना? क्योंकि जिनराज भी तो एक देव ही है। २०

सुरेन्द्रने ब्रह्माकी बात सुनी और वह इस सम्बन्धमें कहने लगा : ब्रह्मन्, आपकी बात सच है। परन्तु जिनराज और आप लोगोंमें कुछ-न-कुछ अन्तर तो है ही। कहा भी है :

"गाय, हाथी, घोडा, गधा, ऊँट, काठ, पाषाण, वस्त्र, नारी, पुरुष और जल-इनमें आपसमें अन्तर ही नहीं, महान् अन्तर है।" २५

हे ब्रह्मन्, इसी प्रकार कोई देव होनेसे ही एक नहीं हो सकता। देखिए

चन्द्रमा और बगला – दोनो ही मीन-भोजी है, शुक्लपक्षवाले हैं, गगन-विहारी है परन्तु निष्कलङ्क होनेपर भी क्या बगला चन्द्रकी समानता कर सकता है?

---

१ "वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्त स्यात्" इत्यमर। वृत्तान्तशब्दस्य नपुंसकत्व चिन्त्यमत्र। २ –त्रास क्लेश। ३. अहे ब्र०–च०। ४ अन्तरेऽप्यन्तरं भवति। न ह्यन्तर कदाचिदप्येकरूप भवितुमर्हतीति तात्पर्यम्। ५ हितोप० सुहृ० ३५। ६ वाजिवारणलोहाना का–ख०। ७ –मन्तरान्म–ग०, घ०, ङ० च०। ८ चन्द्रो मीन मीनराशि भुङ्क्ते, बकश्च मीन मत्स्यराशिमश्नाति। सदा शुक्लत्वमुभयोरपि वर्तत एव। चन्द्रस्य कृष्णशुक्लत्वेन द्वौ पक्षौ, बकस्यापि गतिहेतू तौ द्वौ। गगनचारिणावप्युभौ। निष्कलङ्कत्वमप्युभयो. सममस्ति। इति तुल्यतायामपि न ह्युभयोरेकत्वं सभवति यथा, तथा हरिहरब्रह्मादीना जिनेन्द्रस्यापि च समानत्वेऽपि देवाभिधेये न वरीवर्ति साधीयसी समत्वकल्पनेति रहस्यम्।

१० ततोऽनन्तरं सम्यक्त्ववीरेण स्वकीयसैन्यं[1] भज्यमानं दृष्टम्, [2]तावद्धावन्नागत्य (धावं धावमागत्य) 'अरे रे भवद्भिर्मा [3]भेतव्यम्' [4]इत्युक्त्वाऽऽत्मदलस्याश्वासनं कृत्वा जिनराजं प्रति प्रतिज्ञां(ज्ञा)गृहीतवान्(गृहीता)। तद्यथा

ये [5]चर्मसंस्थितहविर्जलतैलभोजिनो
५ ये क्रूरजीवगणपोषणतत्परा नराः।
ये रात्रिभोजनरता व्रतशीलवर्जिता
ये निष्कृपाः कृततिलादिकधान्यसंग्रहाः ॥ ५२ ॥

[6]द्यूतादिकव्यसनसप्तकशीलिनो हि ये
हिंसारताश्च जिनशासननिन्दका नराः।
१० ये क्रोधिनः खलु कुदेवकुलिङ्गधारिणो
ये चार्तरौद्रसहिताः स्युरसत्यवादिनः ॥ ५३ ॥

ये शून्यवादिन उदुम्बरपंचकाशिनो
लब्ध्वा त्यजन्ति किल जैनमहाव्रतानि ये[7]।
तेषां भवामि सदृशो दुरितात्मनामहं
१५ मिथ्यात्वनामसुभटं न [8]जयामि चेद्रणे ॥ ५४ ॥ (संदानितकम्)

[9]एवंविधप्रतिज्ञारूढो भूत्वा सम्यक्त्ववीरो जिनमानम्य निर्गतः। ततो मिथ्यात्वं प्रत्याह – अरे[10] मिथ्यात्व, संप्राप्तोऽहमधुना। मा [11]भङ्गं यासि। यतो गगनस्थानामम-

---

१० इतने ही में सम्यक्त्ववीर आ पहुँचा। उसने देखा – हमारी सेना डरके मारे भागना ही चाहती है तो उसने शीघ्र आकर अपने सिपाहियोंको आश्वासन दिया कि २० आप लोग डरिए नहीं। और जिनराजके सम्मुख उपस्थित होकर प्रतिज्ञा की कि :

"यदि आज युद्धमें मैने मिथ्यात्व-सुभटको पराजित नहीं किया तो मै इन पापियोंके तुल्य पापका भागी बनूँ जो चर्म-पात्रमें रखे हुए घी, जल और तेलके खानेवाले है। क्रूर जीवोंके पोषणमें निरत रहते है। रात्रिमें भोजन करते है। व्रत और शीलसे शून्य हैं। निर्दय है। तिल आदि धान्यका संग्रह करते है। जुआ आदि सप्तव्यसनसेवी है। २५ हिंसक है। जिनशासनके निन्दक है। क्रोधी है। कुदेव और कुलिंगधारी है। आर्त्त और रौद्र परिणामवाले हैं। असत्यवादी है। शून्यवादी हैं। पाँच उदुम्बरभक्षी और महाव्रत लेकर उन्हें छोड़ देते है।"

सम्यक्त्व-वीरने इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करके जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार किया – और वहाँसे चल पड़ा। इसके उपरान्त वह मिथ्यात्वसे कहने लगा :-अरे मिथ्यात्व, मै

---

१ भङ्गं प्राप्तमवलोकितम्। भज्यमान दृ–क०, ध०, च०। २ धावन्नित्यस्य 'सम्यक्त्ववीरेण' सह विशेषणविशेष्यभावाभावात्तु स्पष्टमेव। ३ न भे–ख०, घ०। ४ इति विश्वासकराणि वचनानि उक्त्वा–ख०। ५ "चर्मस्थमम्भः स्नेहश्च हिङ्ग्वसंहृतचर्म च। सर्वं च भोज्यं व्यापन्नं दोषः स्यादामिषव्रते ॥–सागारध० ३।१२। ६. सप्तकुशीलितो हि ङ०। ७. 'ये' ख०, घ० पुस्तकयोर्नास्ति। ८ जिधातुर्न्यूनीकरणे सकर्मक। ९ एवंविधा प्र–च०। १० रे रे मि–घ०। ११ सङ्गं या–ख०।

राणां विद्यमानमु[1]भयबल(लं)प्रत्यक्षम् । आवयोर्विग्रहेणा[2]नङ्ग जिनयोर्जयो [3]वाऽजयो भविष्यति ।

ततो मिथ्यात्ववीरोऽवोचत्—अरे सम्यक्त्व, गच्छ गच्छ । किं ते[4]मरणेन प्रयोजनम् ? प्रथमं दर्शनवीरस्य यादृशस्त्रासो दर्शितस्तादृश यत्ते न करोमि चेत्तदा स्मरचरणद्रोहकोऽहं भवामि ।

तदाकर्ण्य सम्यक्त्ववीरोऽब्रवीत्—अरे अधम, किमेतज्जल्पसि ? यद्यस्ति शक्तिस्ते तत् स्वशस्त्रसंस्मरणं कुरु । एवं वचनमात्रश्रवणाद् मिथ्यात्ववीरस्तस्य सम्यक्त्ववीरोपरि मूढत्रयबाणावलीं मुमोच । ततः सम्यक्त्वेनान्तराले [5]षडायतनबाणैर्विध्वंसिता । ततोऽनन्तरं मिथ्यात्ववीरः समररौद्रकोपानलदीप्यमानः शङ्काशक्तिं करतले जग्राह । तद्यथा

> वीरश्रीवेणिरेखा मदनभुज[6]लसद्द्रव्यरक्षाभुजङ्गी
> किं वा दुर्वारवैरिक्षितिपतिपृतना[7]नाशकी[8]नाशजिह्वा[9] ।
> किं वा क्रोधाग्निकीला[10] किमु विजयवधूर्मूर्त्तिमन्मन्त्रसिद्धि-
> र्मिथ्यात्वाख्यो हि तस्योपरि समरभरे प्रेरयामास शक्तिम्[11] ॥५४॥

आ गया । गर्व मत करो । देखो, आकाशमें देवतागण बैठे हुए है । इनकी साक्षीमें हम दोनोका युद्ध हो जाने दो । काम और जिनकी जय-पराजयका निर्णय इस संग्रामसे ही हो जायेगा ।

सम्यक्त्वकी वात सुनकर मिथ्यात्व-वीर कहने लगा : अरे सम्यक्त्व, चल, चल । क्या तू मरना चाहता है ? याद रख, जिस प्रकार मैने दर्शन-वीरकी दुर्गति की है यदि वही हाल तेरा न कर डालूँ तो तू मुझे स्वामी-द्रोही समझना ।

मिथ्यात्व-वीरकी बात सुनकर सम्यक्त्व-वीर कहने लगा : रे नीच, तू क्या कहता है । यदि तुझमे कुछ शक्ति है तो अपना हथियार सँभाल ।

इतना सुनते ही मिथ्यात्व-वीरने सम्यक्त्व-वीरके ऊपर तीन मूढतारूपी बाणावली छोडी, जिसे सम्यक्त्व-वीरने कुछ आयतनरूपी बाणोंसे बीच ही में छेद दिया ।

तदनन्तर मिथ्यात्व-वीरने युद्धरूपी प्रचण्ड कोपानलसे दीप्त होकर शंका-शक्तिको हाथमें ले लिया और उसे सम्यक्त्व-वीरके ऊपर चला दिया ।

यह शक्ति वीरश्रीकी वेणि-रेखाके समान थी । कामदेवके भुजबलसे अर्पित द्रव्यकी रक्षाके लिए सर्पिणी थी । दुःसह शत्रु-राजाओंकी सेनाके भक्षणके लिए कालकी जिह्वा थी । क्रोधाग्निकी कील थी । विजयकी वधू थी और मूर्तिमान् मन्त्रसिद्धि मालूम देती थी ।

---

१. उभयपक्षीयसैन्यम् । २ —णाङ्गजजि—च० । ३. 'वाऽजयो' ख० पुस्तके नास्ति । ४. मरणे प्र—क०, च० । मरण प्र—घ० । ५ षडावश्यकबा—ख० । षडायतनानि देवशास्त्रगुरुतद्भक्तरूपाणि । ६ बलद्र—ख०, च० । मकरध्वजकरविलसन्तो धननिधानसर्पिणीत्यर्थः । ७ पृतना सेना । "ध्वजिनी पृतना सेना" इति धनञ्जय । ८ कीनाशः कालः । ९ दुर्दमवैरिनरेशसैन्यसंहारे कालजिह्वेवेत्यर्थः । १० कीला स्फुलिङ्ग । "कीला कफोणघाते स्यात् कीले शङ्कौ च कीलवत्" इति विश्वः । ११ एवंविधा शङ्काशक्तिं मिथ्यात्वभटः सम्यक्त्ववीरस्योपरि प्रेरयामास ।

ततस्तूर्णं[1] सम्यक्त्वेन निःशंकशक्त्यन्तराले शंकाशक्तिर्विध्वंसिता[2]। ततो मिथ्यात्ववीरेण[3] आकांक्षाप्रभृतीन्यायुधानि तस्य[4] सम्यक्त्ववीरस्योपरि प्रेरितानि। तावत्तेन[5] सम्यक्त्ववीरेण [6]निष्काङ्क्षाद्यायुधै[7]र्निवारितानि।

एवमन्योऽन्यं तयोस्त्रैलोक्यचमत्कारकारि[8] युद्धं कुर्वतोर्न च कस्यापि भंगो ५ भवति, तदा सम्यक्त्वेनैवं मनसि चिन्तितम्—अतः किं कर्त्तव्यम्। यद्यनेन सह [9]सम्यग् युद्धयुक्त्या युद्धं करिष्यामि तदधमोऽयं मम [10]दुर्ज्जयो भविष्यति। [11]तदेकेन घातेनायं हन्यते मया। एवमुक्त्वा परमतत्त्वसुतीक्ष्णासिना [12]जघान। [13]यज्ञोपवीताकृतिच्छेदेन भूमण्डले पातितः। ततोऽनन्तरं मिथ्यात्वसुभटो यावद्धरातले पतितस्तावदनङ्गदलं[14] पराङ्मुखमभूत्। तद्यथा

१० पराङ्मुखं याति यथा तमो रवेर्यथा खगेशस्य भयाद्भुजंगमाः।
[15]स्वनान्मृगेन्द्रस्य यथा गजादयस्तथाऽभवत् कामबलं पराङ्मुखम्॥५६॥

[16]ततो गगनस्थितेनामरेन्द्रेणाम्बुजभवं[17] प्रत्यभिहितम्—भो [18]पितामह, पश्य पश्य सम्यक्त्वेनानङ्गसैन्यं पराङ्मुखीकृतम्। ततो जिनसैन्ये जयजयरवसमेतः परमानन्दकोलाहलः संजातः।

---

१५ सम्यक्त्व-वीरने इस शङ्का-शक्तिको निःशङ्का-शक्तिसे बीच में ही काट दिया। इसके पश्चात् मिथ्यात्व-वीरने आकाङ्क्षाप्रभृति आयुधोंका प्रयोग किया। लेकिन सम्यक्त्व-वीरने इन्हें भी निःकाक्षा—आयुधोंसे निष्क्रिय कर दिया।

इस प्रकार सम्यक्त्व-वीर और मिथ्यात्व-वीरमें परस्पर त्रैलोक्यविजयी युद्ध होनेपर भी किसी एककी भी हार-जीत न हो सकी।

२० अबकी बार सम्यक्त्व-वीरने मनमें सोचा : यदि इस मिथ्यात्व-वीरके साथ समीचीन युद्ध-पद्धतिसे युद्ध करता हूँ तो यह नीच दुर्जय होता जायेगा। इसलिए अब एक प्रहारसे इसका घात ही कर देना चाहिए। यह सोचकर उसने परम तपरूपी अस्त्रका उसपर प्रहार कर दिया और इस प्रकार मिथ्यात्व-वीर यज्ञोपवीतके आकारमें गोलरूपसे पृथ्वीपर आ गिरा। मिथ्यात्व-वीरके धराशायी होते ही कामकी सेना पीछे हटने लगी।

२५ जिस प्रकार सूर्यके भयसे अन्धकार भागता है, गरुड़के भयसे साँप भागते है और सिंहके गर्जनसे हाथी भागते है उसी प्रकार कामकी सेना भी मिथ्यात्व-वीरके गिरते ही भागने लगी।

इतनेमें आकाशमें स्थित इन्द्रने ब्रह्मासे कहा : पितामह, देखिए, सम्यक्त्वने

---

१. तूर्णं त्वरितम्। "सत्वर चपलं तूर्णमविलम्बितमाशु च" —इत्यमर। 'तूर्ण' क०, च० पुस्तकयोर्नास्ति। २—विनाशिता ख०। ३. 'वीरेण' ख०, ङ० पुस्तकयोर्नास्ति। ४ तस्योपरि प्रे—ख०, ङ०। ५. तेन नि·का—ख०, ङ०। ६. नि काक्षायु—ख०। नि काक्षायुधेन ङ०। ७. —र्निवारितानि ख०। ८. चमत्कारि यु—ख०, घ०। ९ सम्यक्त्वयु—ख०। १० 'मम दु'—क०, घ०, ङ०, च० पुस्तकेषु नास्ति। ११. तदेकेन घा—च०। १२. स तमित्यध्याहार्यम्। १३. योग्योप—च०। १४ कामसैन्यम्। १५. सिंहस्य नादे प्रयुक्त स्वनशब्दो मध्यम एव। अत्र च प्रसिद्धित्यागो दोष·। १६ 'ततो' इत्यारभ्य 'संजातः' इति पर्यन्त पाठ ख० पुस्तके नास्ति। १७. अम्बुजभव ब्रह्माणम्। १८ पितामह ब्रह्मन्।

ततोऽनन्तरं मदनेनात्मसैन्यं [1]भज्यमानं दृष्ट्वा परबलकोलाहलमाकर्ण्य मोहं प्रत्येतदुक्तम् – भो मोह, परबलकोलाहलः । कथमेतत् ? । मोहः प्राह – देव, योऽस्मदीयो-[2]ऽग्रणीर्मिथ्यात्ववीरः स[3] सम्यक्त्ववीरेण समराङ्गणे पातितः । तस्मात् परबलं गर्जति ।

११ एवं तयोर्यावत्परस्परं वदतोस्तावन्न[4]रकानुपूर्वी द्रुततरं [5]नरकगतिस्थानमुद्दिश्य [6]डुढौके । इतः सा नरकगतिरसिपत्रमध्ये [7]वैतरिण्यां जलक्रीडां कृत्वा सप्तभूमिकाधवलगृहे यावदुपविष्टास्ति तावन्नरकानुपूर्वी संप्राप्ता । ततः सा नरकानुपूर्वी प्राह – हे सखि, तव भर्त्ता मिथ्यात्वनामा समरांगणे पतितः । तत्किं सुखेनोपविष्टासि त्वम् ? एवं सखीवचनमात्रश्रवणात् प्रचण्डवातप्रहतकदलीदलवत् कम्पमाना भूत्वा भूतले पपात[8] । ततस्तत्क्षणाच्चेतनां लब्ध्वा सखीं प्रत्यवोचत्

हारो नारोपितः कण्ठे मया विरहभीरुणा ([9]भीतया) ।
इदानीमन्तरे जाताः सरित्सागरपर्वताः[10] ॥५७॥

कामकी सेनामें भगदड़ मचा दी है । और इस कारण जिनराजकी सेनामें आनन्दमय जय-जयकार होने लगा है ।

जब कामने देखा कि उसकी सेना डरकर भाग रही है और शत्रुपक्षीय सेनामें जय-जयकार हो रहा है तो उसने मोहसे पूछा : मोह, शत्रुवर्गकी सेनामें यह क्या आनन्द-कोलाहल हो रहा है ? उत्तरमें मोह कहने लगा . स्वामिन् , हमारे अग्रणी मिथ्यात्व-वीरको सम्यक्त्व-वीरने समराङ्गणमें पछाड़ दिया है । इसीलिए शत्रुपक्षीय सेनामें आनन्दका कोलाहल छाया हुआ है ।

११. मोह और कामकी इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि इतनेमें नरकानुपूर्वी शीघ्र ही नरकगतिके स्थानकी ओर रवाना हुई । जैसे ही नरकानुपूर्वी नरकगतिके पास पहुँची, वह असिपत्रोंके बीच वैतरणीमें जलक्रीडा करके स्वच्छ सतखण्डे भवनपर बैठी हुई नरकापूर्वीको दिखलाई दी ।

नरकानुपूर्वीने नरकगतिसे कहा : सखि, मिथ्यात्व नामका तुम्हारा पति युद्ध-भूमिमें मर चुका है और तुम यहाँ इस प्रकारसे सुखपूर्वक बैठी हुई हो ? नरकगतिने ज्यों ही नरकानुपूर्वीकी बात सुनी, वह प्रचण्ड पवनसे आहत कदलीके पत्रकी तरह कँप गयी और जमीनपर गिर पड़ी । कुछ देरमें जब उसे होश आया तो वह सखीसे कहने लगी :

सखि, पतिदेवसे विरह न रहे इसलिए मैंने अपने कण्ठमें हार तक नहीं पहना था । और अब तो हमारे और उनके बीच नदी-नद, सागर और पर्वतोंका अन्तर पड गया है । विधि-विडम्बना तो देखो । तथा

---

१ भज्यमान दृ–च० । २ –ग्रोग्रणी मि–च० । ३ वीर सम्य–च० । ४. "पूर्वशरीराकाराविनाशो यस्योदयाद्भवति तदानुपूर्व्यनाम ।"–स० सि० ८।११। ५ "यदुदयादात्मा भवान्तरं गच्छति सा गतिः । यन्निमित्त आत्मनो नारको भावस्तन्नरकगतिनाम ।"–स० सि० ८।११। ६ ढौकृधातोर्गत्यर्थकाल्लिटि रूपमिदम् । डुढौके जगामेत्यर्थः । डुलोके च० । ७. वैतरिण्यां नरकनद्याम् "भवेद्वैतरिणी प्रेतनद्यां राक्षसमातरि" इति विश्व । ८ नरकगतिरित्यध्याहार्यम् । ९ नरकगतेस्त्री विरहभीरुणेति विशेषणस्य स्पष्टमेवासागत्यम् । १० एतेन नितान्तमसह्योऽयं विरह इति ध्वनितम् ।

तथा च

उद्यतप्रेम्णि प्रथमवयसि प्रावृषि प्राप्तवत्यां
[1]स्कन्धावारं मम पतिरसौ निर्गतो मा विहाय।
सेयं जाता जगति विदिता सुप्रसिद्धा जनोक्ति-
[2]रग्रग्रासग्रसनसमये मक्षिकासंनिपातः ॥५८॥

एवं विजल्प्य पुनरपि नरकानुपूर्वी(र्वीं) सखीं प्रति बभाण – हे सखि, मत्प्रियोऽसौ मिथ्यात्वनाम(नामा)मृत इति सत्यं मे न[3] प्रतिभासते। यतः पूर्वं मत्पितरं नरकाभिधं प्रति, मम देहे वैधव्यचिह्नमालोक्य, केनचिल्ल[4]क्षणज्ञेनैवं निरूपितम् – 'अहो न युष्मत्पुत्रीयं यावज्जीवमक्षयसौभाग्या भविष्यति। यतोऽस्या देहेऽशुभचिह्नानि दृश्यन्ते।' तच्छ्रुत्वा भूयोऽपि मत्पित्रा तानि चिह्नानि कानीति पृष्टो लक्षणज्ञः। ततस्तेन लक्षणज्ञेन सर्वाण्यपि चिह्नानि कथितानि। ततस्तत्समीपस्थया मया श्रुतानि तान्यद्यापि मद्वपुषि दृश्यन्ते। तानि[5] त्वमाकर्णय – 'न[6] (ननु) मे [7]कृष्णमांसानि करालाश्च[8] दन्ताः।'

अथ नरकानुपूर्वी ब्रूते – हे सुन्दरि, किं वृथा विलापं करोषि? [9]वार्त्ता[10]माकर्णय –

नष्टं[11] मृतमतिक्रान्तं नानुशोचन्ति पण्डिताः।
पण्डितानां च मूर्खाणां विशेषोऽयं यतः स्मृतः ॥ ५९ ॥

एक ओर उत्कट प्रेमपूर्ण मेरी युवावस्था है और दूसरी ओर वर्षाकाल आ गया है। ऐसे अवसरपर मेरे पतिदेव मुझे छोड़कर परलोक चले गये हैं। इस समय तो 'प्रथम-ग्रासे मक्षिकापात' वाली सुप्रसिद्ध किंवदन्ती चरितार्थ हो रही है।

इस प्रकार कह-कहकर वह अपनी सखी नरकानुपूर्वीसे पुनः कहने लगी : सखि, मेरा मिथ्यात्व नामका पति मर गया है, यह बात मुझे भी सत्य-सी लग रही है। क्योंकि बहुत दिन पहलेकी बात है जब किसी लक्षणशास्त्री ज्योतिषीने मेरे शरीरमें वैधव्यके चिह्न देखकर मेरे पितासे कहा था कि तुम्हारी यह पुत्री जीवनपर्यन्त अक्षय सौभाग्यवती न रहेगी। क्योंकि इसके शरीरमें कुछ अशुभ चिह्न दिखलाई दे रहे है।

उस समय मेरे पिताने पूछा था कि वे अशुभ चिह्न कौन-कौन है? तब ज्योतिषीने उन्हें वे सब चिह्न बतलाये थे। मै पिताके पास ही बैठी थी और मैंने भी उन्हें सुन लिया था। वे चिह्न आज भी मेरे शरीरमें अंकित हैं। तुम चाहो तो उन्हें सुन सकती हो। मेरा मास काला है और दाँत भयंकर है।

नरकानुपूर्वी कहने लगी : सुन्दरि, व्यर्थ विलाप क्यों करती हो? मेरी बात सुनो :

---

१ स्कन्धावार सैन्यावासम्। २. "प्रथमग्रासे मक्षिकापातः"–भुवनेशलौ० ७५२ इति जनोक्तिः सुप्रसिद्धा। ३. अत्र 'न' इत्यननुगुणम्। ४ लक्षणज्ञेन दैवज्ञेनेत्यर्थः। ५. 'तानि' ख० पुस्तके नास्ति। ६ 'न मे' इत्यारभ्य '–माकर्णय' इति पर्यन्त पाठ. ख० पुस्तके नास्ति। ७. कन्याशारीरिककृष्णमासस्यात्यन्तममङ्गलत्वात् पतिघातसूचकत्वाच्च। ८ स्त्रीदन्ताना करालत्व विरलत्वं भयङ्करत्वमपि पतिसुतमृत्यु-दुराचारसूचकम्। "पिङ्गाक्षी कूपगण्डा प्रविरलदशना दीर्घजङ्घोर्ध्वकेशो सा कन्या वर्जनीया पतिसुतरहिता शीलचारित्र्यदूरा॥"–सामु० शा० २।२७। ९. मदीयामनुभवपूर्णां नीतिज्ञानुमोदिता च वार्तामित्यर्थः। १० अत पर 'कथभूता' इत्यधिक पाठ क०, घ० पुस्तकयोरुपलभ्यते। ११ पञ्च० मि० भे० ३६३।

तथा च

अशोच्यानि[1] हि भूतानि यो मूर्खस्तानि शोचति ।
स [2]दुःखे लभते दुःखं द्वावनर्थौ निषेवते ॥६०॥

अथ[3] सा नरकगतिं प्रति नरकगत्यानुपूर्वी प्रोवाच – तत्तव भर्त्ता सम्यक्त्ववीर-खड्गघातभयभीतः कुमार्गे प्रविष्टोऽस्ति, तद्वृथा शोकं मा कुरु । यत उक्तं च[4] ५

"हीयडा संवरि धाहडी मूउ न आवइ कोइ ।
अप्पत्रं अजरामरु करिवि पछइ अनेरां रोइ[5] ॥१५॥"

एवं संबोध्य[6] प्रेषिता ।

१२ ततोऽनन्तरं लोकत्रयशल्यो मोहमल्लोऽनङ्गचरणौ प्रणम्य स्वसैन्यमाश्वास्य निर्गतस्तत्र [7]यत्र [8]केवलज्ञानवीरप्रभृतयस्तिष्ठन्ति, तैः सह मिलित । तद्यथा १०

पञ्चेन्द्रियैः पञ्चमहाव्रतानि तथा च शुक्लेन सहार्त्तरौद्रौ ।
[9]रणाङ्गणे वा [10]मिलिताखिशल्या योगैः सहेभैश्च यथा [11]मृगेन्द्राः ॥६१॥

पण्डित जन नष्ट हुई, मृत हुई और बिछुडी हुई वस्तुके सम्बन्धमे कदापि शोच नहीं करते है । पण्डित और मूर्खोमें यही विशेषता तो है । तथा

प्राणियोके सम्बन्धमे कदापि शोच नहीं करना चाहिए । जो उनके सम्बन्धमे कुछ भी शोच करता है वह मूर्ख कहलाता है और वह दुःख-ही-दुखः भोगता रहता है । इस प्रकार उसे मूर्खता और दुःख – ये दो अनर्थ कदापि नहीं छोडते । १५

नरकानुपूर्वी कहती है : इसलिए हे सखि, तुम्हारा पति सम्यक्त्व-वीरकी तलवारके आघातसे आहत होकर कुमार्गमें ही प्रविष्ट हुआ है । अतः तुम व्यर्थ शोक मत करो । कहा भी है : २०

"रे हृदय, इस आघातको सम्हाल । मरकर फिर कोई नहीं आता । अपनेको अजर अमर मान कर पीछे अपूर्व रुदन करना पडता है ।"

इस प्रकार नरकानुपूर्वी उसे धीरज बँधाकर वहाँसे चल दी ।

१२ इस बीच लोकत्रयमें शल्यस्वरूप मोहमल्लने कामके चरणोमें प्रणाम किया और अपनी सेनाको धीरज बंधाकर जहाँ केवलज्ञान-वीर आदि सुभट ठहरे हुए थे वहाँ चला गया । और वहाँ पहुँचकर उसने सबको इस प्रकारसे भिड़ा दिया : २५

पाँच महाव्रत पाँच इन्द्रियोके साथ भिड़ गये और शुक्लध्यानके साथ आर्त्तरौद्र मिल गये । और जिस प्रकार मृगेन्द्र हाथियोके साथ जुट जाते है उसी प्रकार तीन शल्य-वीर भी योग-वीरोंके साथ रणागणमें जुट पड़े ।

---

१ "अशोच्यानीह भूतानि ।"–पञ्च० मि० मे० ३६४ । २ दु खैर्ल– ड० । ३ वाक्यमिद क०, घ०, च० पुस्तकेपु नास्ति । ४ वाक्य पद्य चेद क०, घ०, च० पुस्तकेपु नास्ति । ५ रे हृदय, सहस्वामुमाघातम् । न हि मृत्वा पुन कश्चिदायाति । आत्मनि (शरीरे) अजरामरबुद्धया अद्भुत दारुण च रुद्यते प्राणिभिरिति तात्पर्यम् । तथा च नरकगत्यानुपूर्व्यापि नरकगतिराश्वास्यते यद्धे सखि, त्वमपि मा कुरु शरीरेऽस्मिन्नजरामरबुद्धिम् । अशाश्वतोऽय कायपर्याय । इति विधाय मत्य तत्त्वमिद हृद्गत त्वयापि सोढव्य शान्त्या पत्युर्विरह । ६ मतोध्य घ० । ७ 'यत्र' च० पुस्तके नास्ति । ८ केवलज्ञानीवी–च० । ९ रणो गणे वा च० । १० 'मिलिता' इत्यारभ्य अनन्तरोक्तपद्यगत 'मिलिता' इति पर्यन्तस्त्रुटित पाठ ख० पुस्तके । ११ मृगेन्द्रै. च० ।

तत्त्वैः [1]सहार्था मिलिता [2]भयेशाः स्वाचारवीरैः सह [3]चास्रवाश्च ।
क्षमादमाभ्यां सह [4]रागरोषौ मुण्डैः सहार्था मिलितास्त्रिदण्डाः ॥६२॥

पदार्थवीरैः सह चानयाश्च धर्मैः सहाष्टादशदोषवीराः ।
अब्रह्मवीरैः सह ब्रह्मवीरास्तपोऽभिधानैश्च कषायवीराः ॥६३॥

५ एवमादि यो यस्य संमुखो जातः स तेन सह मिलितः ।

ततोऽनन्तरं परमेश्वरेणानन्देन सिद्धस्वरूपनामानं स्वरशास्त्रज्ञं प्रष्टुमारब्धम् – अहो सिद्धस्वरूप, पुराऽस्मत्सैन्यस्य भङ्गः केन प्रकारेण संजातः ? अथ स [5]सिद्धस्वरूपो जजल्प – देव, [6]उपशमश्रेणिभूमौ यावत् स्थितं तावद्भङ्गमा (भङ्ग आ) गतं(गतः) [7]त्वत्सैन्यस्य । तदधुना [8]क्षपकश्रेणिमारोहति चेत्तदवश्यं [9]जयवद्भविष्यति । तदाकर्ण्य जिनो
१० [10]जहर्ष । ततो बभाण – अहो सिद्धस्वरूप, तर्हि त्वमेव मे सैन्यं क्षपकश्रेणिभूमावारूढं कुरु तदाकर्ण्य स सिद्धस्वरूपो जिनसैन्यं क्षपकश्रेणिभूमावारूढं कृतवान् । तदवलोक्य जिनोऽति संतुतोष ।

१३. ततोऽनन्तरं रथवरसङ्घट्टै [11]र्हेषितहययूथैर्मदभरमत्तमातङ्गैर्विस्फुरद्भिर्ध्वजापटै-

---

तत्त्वोंके साथ भय मिल गये और आचार-वीरोंके साथ आस्रव मिल गये । राग-
१५ द्वेष क्षमा और संयमके साथ और अर्थ तथा दण्ड मुण्ड-सुभटोंके साथ भिड़ गये ।

नव पदार्थोंके साथ अनय, धर्मोंके साथ अष्टादश दोष, ब्रह्मवीर अब्रह्म वीरोंके साथ और कषाय-वीर तप-वीरोंके साथ भिड़ पड़े ।

इस प्रकार जो जिसके सामने आया वह दूसरेसे टक्कर लेने लगा ।

तदनन्तर परमेश्वर आनन्दने स्वरशास्त्रज्ञ सिद्धस्वरूपसे पूछा : सिद्धस्वरूप, बताओ
२० तो पहले हमारी सेनामें भगदड़ क्यों मच गयी थी ?

उसने कहा : देव, उस समय तुम्हारी सेना उपशम-भूमिकामें स्थित थी । इसलिए उसमें भगदड़ मच गयी थी । अब यदि क्षपकश्रेणीमें आरूढ होगी तो नियमतः उसकी विजय होगी । सिद्धस्वरूपकी बात सुनकर जिनराजको बड़ी खुशी हुई । वे कहने लगे : यदि यह बात है तो तुम ही उसे क्षपकश्रेणीभूमिमें आरूढ़ कर दो । जिनराजकी बात
२५ सुनकर सिद्धस्वरूपने जिनराजकी सेनाको क्षपकश्रेणीभूमिमें आरूढ कर दिया । यह देखकर जिनराजको अत्यन्त हर्ष हुआ ।

१३. तदनन्तर मोहने जैसे ही रथोंके संघर्ष, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, मदमत्त हाथियों-

---

१. सहाया मि–घ० । सहाथ मि–च० । २. सप्त भयेशा , ऐहिकपारलौकिकवेदनाऽरक्षाऽगुप्तिमरणाकस्मिकभयेशभेदात् । ३ चानयाश्च च० । ४. रागद्वेषौ ख०, च० । ५. सिद्धस्वरूप ज–ख० । ६. अपूर्वानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसाम्परायोपशान्तमोहेषु यत्र मोहनीयैकविंशतिप्रकृतीनामुपशमो विधीयते सोपशमश्रेणि. । ७. 'त्वत्सैन्यस्य' ख०, ङ० पुस्तकयोर्नास्ति । ८ यत्र चारित्रमोहनीयस्य क्षयो विधीयते सा क्षपकश्रेणि । ९ विजयि भविष्यति त्वदीय सैन्यमित्यर्थ । १० प्रसन्नो बभूवेत्यर्थ. । ११. "कश्य तु मध्यमश्वाना हेषा ह्रेषा च नि.स्वनः ।" इत्यमर ।

दन्तसंमुखचरणमहावीरैः पूरितं जिनवलं यावद् दृष्टं तावन्मोहनरेन्द्रः कोपं गत्वा संमुखो धावन्नागत्य तमस्तम्भमारोपितवान्। ततो मोहनरेंद्रः प्राह – अरे रे केवलज्ञानवीर, दृढतरो भव। यदि योद्‌धुं शक्नोषि तद्‌द्रुततरं मम संमुखमागच्छ। अथवा यन्मम घातभयाद् बिभेषि तच्छीघ्रं याहि याहि। किं ते मरणेन प्रयोजनम्।

ततः केवलज्ञानवीरः स क्रुद्धमनो(नाः)भूत्वाऽवोचत् – अरे अधम, किमेतज्जल्पसि? चेदिदानीं संगरे त्वां न जयामि तज्जिनचरणद्रोहकोऽहं भवामि। ततः समरक्रुद्धेन मोहेन आशाकार्मुकात्तस्य केवलज्ञानवीरस्योपरि गारवत्रयबाणावली मुक्ता[1]। तत केवलज्ञानवीरेण रत्नत्रयबाणेनान्तराले विध्वंसिता। भूयोऽपि केवलज्ञानवीरेण समाधिस्थानं धृत्वा उपशममार्गणेन[2] वक्षःस्थले विद्धः समूर्छो भूमण्डले पातितः। तत्क्षणादुन्मूर्च्छितो भूत्वा तस्य केवलज्ञानवीरस्योपरि प्रमादबाणावलीं[3] [4]चिक्षेप। ततः केवलज्ञानवीरेण षडावश्यकबाणैस्त्रयोदशविधचारित्रबाणैर्निवारिता[5]। भूयोऽपि केवलज्ञानेन मोहः प्रचारितः – 'अरे रे मोह, स्वधनुरेतद्रक्ष रक्ष' इति भणित्वा निर्ममत्वबाणेन तस्य मोहवीरस्य करतलस्थं कार्मुकं चिच्छेद। ततो मोहेन तस्योपरि मदान्धगजघटाः संप्रेषिताः। तत. केवलेन निजकरिघटाभिः संरुद्धाः, पश्चादुपशमघातेन विध्वसिताः। तदा मोहवीरः प्रकृतिसमूहमानन्देन प्रेरितवान्। तद्यथा

की चिग्घाड, उडती हुई पताकाएँ और सामने पैर बढाते हुए महान् योधाओंसे पूरित जिनराजकी सेना देखी, उसे अत्यन्त क्रोध हो आया और आगे बढकर उसने अन्धकार-स्तम्भ गाड़ दिया तथा केवलज्ञानवीरसे कहने लगा : केवलज्ञानवीर, सावधान हो जाओ। यदि हमारे साथ युद्ध करनेकी हिम्मत हो तो तुरन्त हमारे सामने आओ। यदि तुम्हें हमारे आघातोंका डर हो तो चुपचाप भाग जाओ। मुफ्तमें मरना क्यों चाहते हो? मोहकी बात सुनकर केवलज्ञानवीरको क्रोध हो आया। वह कहने लगा : अरे अधम, क्या बकता है? यदि आज मैने युद्धमें तुझे पराजित न किया तो तू मुझे जिनचरणोंका द्रोही समझना।

केवलज्ञानकी बात सुनकर मोहको भी रोष हो आया। उसने आशा-धनुषसे गारवनामक तीन बाण लेकर केवलज्ञानके ऊपर छोडे। परन्तु केवलज्ञानवीरने उन्हें रत्नत्रय-बाणसे बीचमें ही छिन्न-भिन्न कर दिया और पुनः समाधिस्थानमें बैठकर उपशम बाण चलाया जो मोहके वक्षस्थलमें विंध गया और मोह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर आ गिरा।

मोहको थोडी ही देरमें चैतन्य हो आया और इस बार उसने केवलज्ञानवीरके ऊपर प्रमादरूप बाणावलीकी वर्षा प्रारम्भ कर दी। किन्तु केवलज्ञानवीरने आवश्यक और त्रयोदश चारित्रबाणोंसे उसे बीचमें ही भंग कर दिया। और मोहसे यह कहकर कि 'अरे मोह, अपना धनुष सँभालो' उसने निर्ममत्व बाणसे मोहवीरके हाथमें स्थित धनुषको छेद डाला।

तदुपरान्त मोहने केवलज्ञानवीरके ऊपर मदान्ध गज-घटाएँ भेजीं, जिन्हें केवलज्ञान-

१ मोचिता क०, घ०, ङ०, च०। २ मार्गणेन बाणेन। "शिलीमुख शरो बाणो मार्गणो रोपण कण" इति धनञ्जय। ३ प्रमाणत्रा–०। ४ मोह इत्यर्थ। ५. त्रयोदशचारित्रत्रा–घ०,। त्रयोदशबाणैर्नि–ख०।

प्रकृतिनिचयभीता भूधराः संचलन्ति
त्रिदशनरभुजङ्गाः कम्पमाना भ्रवन्ति।
प्रचलति[1] वसुधाऽलं सागरा व्याकुलाः स्युः
प्रकृतिवरसमूहे प्रेरिते[2] वृत्तमेवम् ॥६४॥

५ एवं तं प्रकृतिसमूहं महादुर्जयं दृष्ट्वा जिनसैन्यं सभयं भूत्वा प्रकम्पितम्। तदा [3]केवलज्ञानवीरेण सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्पराययथाख्यात-मिति [4]पञ्चविधचारित्रदिव्यायुधघातै प्रकृतिसमूहश्चूर्णितः। ततो मोहमल्लं सम-राङ्गणे हत्वा धरातले मूर्च्छान्वितः पातितः। ततोऽनन्तर पुनरुन्मूर्च्छितो भूत्वा अना-चारखड्गं करतले गृहीत्वा स क्रुद्धमना यावत्संमुखमागच्छति तावत्केवलज्ञानेनानु-
१० [6]कम्पाफरीं करे धृत्वा संमुखं स्थित्वा स मोहो निर्ममत्वमुद्गरेण हतो [7]जर्जरितशिरा आक्रन्दनं कुर्वंस्त्रिदशासुरनरविद्याधरविद्य[8]मानो धरातले पातितः। एवं प्रभूतघातहन्य-मानो यदा मोहवीरः प्रपतितस्तदा वृत्तान्तमवलोक्य बन्दी मदनं प्रति गत्वा प्रणम्यो-

---

वीरने अपने हाथियोंकी घटाओंसे रोक दिया और पीछेसे उपशमके आघातसे उनका विध्वंस कर दिया।

१५ जब मोहने देखा कि उसका अबतकका प्रयत्न बिलकुल निष्फल गया है तो अबकी बार उसने कर्मप्रकृति-समूहका प्रयोग केवलज्ञानवीरके ऊपर किया। उसके प्रयोग करते ही इस प्रकारकी स्थिति उत्पन्न हो गयी।

प्रकृति-निचयसे डरकर पर्वत चलित होने लगे। देव, नर और साँप कम्पित होकर आवाज करने लगे। वसुधा काँप गयी और समुद्र व्याकुल हो उठे। इस प्रकार सम्पूर्ण
२० प्रकृति क्षुब्ध हो उठी।

इस तरह प्रकृति-समूहको महादुर्जय देखकर जिनराजकी सेनामें भयका संचार होने लगा और काँपने लगी। जब केवलज्ञानवीरने अपने सैन्यकी यह स्थिति देखी तो उसने सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यातरूपी पाँच चारित्र-वीरोंके प्रहारसे उस प्रकृतिसमूहको निःशेष कर दिया। इसके पश्चात् उसने मोहमल्लपर
२५ प्रहार किया और वह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पडा।

कुछ देरके पश्चात् मोह पुनः चैतन्य हुआ और अनाचार खड्ग हाथमें लेकर क्रोधा-वेशमें जैसे ही केवलज्ञानवीरके सामने आया वह अनुकम्पा-फाल हाथमें लेकर मोहके सामने खडा हो गया और निर्ममत्व-मुद्गरसे उसके सिरपर जोरका प्रहार दे मारा। मोह मुद्गरके इस प्रहारको सहन नहीं कर सका। वह इस प्रहारसे बुरी तरह घायल हुआ और चिल्लाकर
३० पृथ्वीपर गिर पड़ा।

इस प्रकार प्रबल प्रहारके कारण जब मोह लड़खड़ाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा तो बन्दी बहिरात्मा इस घटनाको सुनानेके लिए कामके पास पहुँचा। बन्दीने वहाँ पहुँचकर उसे

---

१. प्रचरति क०, घ०, च०। २. प्रेरित वृत्तमेव क०, घ०, च०। ३. केवलेन सा–ख०, ङ०। ४ पञ्चचारित्रदि–ख०, ङ०। ५. प्राकृतस–च०। ६ फरी फाल इत्यर्थः। फरीशब्दस्य फालार्थे प्रयोग· प्रान्तिकः। ७. जर्जरितशिरानन आ–ख०। ८. विद्यमानो ज्ञायमान इत्यर्थ।

वाच-भो देवदेव, त्रैलोक्यशिल्पो[1] मोहमल्लो भङ्गं गतः। अन्यच्च जिनसैन्येन[2] सकलसैन्यं भङ्गमानीतम्। तच्छीघ्रं देवेन[3] कालवञ्चना क्रियते।

तच्छ्रुत्वा रत्योक्तम्-देव[4], वहिरात्मायं बन्दी युक्तमेतद्वदति। यथा गमनोपायो भवति तथा क्रियते(ताम्)। अपरं स्वभावेन शुभतरं भवति। तत्किमनेन वृथाऽभिमानेन प्रयोजनम्। तदवश्यं गम्यते(ताम्), नात्र स्थातव्यम्। ५

ततः प्रीतिः प्राह-हे सखि, किं भणिष्यसि? मूर्खोऽयम्। पापात्माऽयम्। महाऽऽग्रही।

यतः[5]

आग्रहश्च ग्रहश्चैव द्वावेतौ लोकवैरिणौ।
ग्रह एकाकिनं हन्ति, आग्रहः सर्वनाशकः॥६५॥ १०

[6]ततो जिनस्य[7] जयश्रीश्चास्माकं वैधव्यं केन [8]वार्यते।

अन्यच्च[9]

वचस्तत्र प्रयोक्तव्यं यत्रोक्तं लभते फलम्।
स्थायी भवति चात्यन्तं रागः शुक्लपटे यथा॥६६॥

तदाकर्ण्य मदनेनोक्तम्-हे प्रिये, वचनमेतदाकर्णय १५

प्रणाम किया और निवेदन करने लगा: महाराज, त्रैलोक्यके लिए शल्यस्वरूप मोहका सर्वस्व भग हो गया है - उनकी जीवन-लीला समाप्त हो चुकी है और जिनराजकी सेनाने अपनी समस्त सेनाका विध्वंस कर दिया है। इसलिए इस समय आपको यह अवसर टालकर अन्यत्र चला जाना चाहिए।

बन्दी बहिरात्माकी बात सुनकर काम तो चुप रहा; पर रतिसे नहीं रहा गया। वह २० कहने लगी: स्वामिन्, बन्दी ठीक तो कह रहे हैं। इस समय आपको यहाँसे चल देनेका ही कोई उपाय करना चाहिए और इस प्रकार प्रस्थान कर देनेका परिणाम शुभ ही होगा। इसलिए आप झूठा अभिमान छोड़िए और यहाँसे प्रस्थान कर दीजिए।

रतिकी बात सुनकर प्रीति कहने लगी: सखि, व्यर्थ क्यों प्रलाप करती हो? यह महामूर्ख, पापी और नितान्त हठी जीव है। यह हम लोगोंकी बात नहीं सुनेंगे। क्योंकि २५

"आग्रह और ग्रह - ये दोनों ही लोकके अत्यन्त वैरी हैं। ग्रह जहाँ एकका नाश करता है वहाँ आग्रह सर्वस्व नाश कर डालता है।"

प्रीति कहती गयी - अब ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो जिनराजको जयश्रीकी प्राप्ति और हम लोगोके वैधव्य-योगको टाल सके। और फिर

अपनी राय वहाँ देनी चाहिए जहाँ उसकी कुछ पूछ हो। जिस प्रकार स्वच्छ ३० वस्त्रपर लाल रंग खूब गहरा चढ़ता है।

रति और प्रीतिकी बात सुनकर कामने कहा ' हे प्रिये, मेरी बात तो सुनो:

---

१ -शल्यो मो-क०, घ०, ङ०, च०। २ आत्मीय सकलमपि सैन्य भ-ख०। ३. देवे का-च०। ४ देवे देवे ख०। ५ पद्यमिद क०, घ०, ङ०, च० पुस्तकेपु नास्ति। ६. 'ततो' क०, घ०, ङ०, च० पुस्तकेपु नास्ति। ७ जिनेन ज-ख०। जिने ज-ङ०। ८. भज्यते ख०, ङ०। ९. पञ्च० मि० भे० ३४।

सुरासुरेन्द्रोरगमानवाद्या जिताः समस्ताः स्ववशीकृता यैः[1] ।
ते सन्ति मे पाणितले च बाणास्तत्किं न लज्जेऽत्र पलायनेन ? ।।६७।।

एवमुक्त्वा मदनमोहनवशीकरणोन्मादनस्तम्भनेतिपञ्चविधकुसुमबाणावलीं शरासने संधित्वा(संधाय) मनोगजमारुह्य द्रुततरं धावन् स मदनः समराङ्गणे गत्वा जिनसंमुखमवोचत्— अरे रे जिन, पुरा मया सह संग्रामं कृत्वा पश्चात् सिद्धिवराङ्गनापरिणयनं कुरु। [2]मुक्त्यङ्गनालिङ्गनसुखं मे बाणावल्येव ते दास्यति ।

१४. तच्छ्रुत्वा मोक्षनदराजहंसेन साधुशकुनिविश्रामारामेण[3] मुक्तिवधूकामेन पुष्पायुधोदधिमथनमन्दरेण भव्यजनकुलकमलविकासमार्त्तण्डेन मोक्षद्वारकपाटस्फोटनकुठारेण दुर्वारविषयविषधरवैनतेयेन साधुकुमुदाकरविकासचन्द्रेण मायाकरिणीमृगेन्द्रेण संग्रामावसरे मदन आहूतो जिनेन्द्रेण — रे रे मदनवराक, किमर्थं मे बाणमुखाग्नौ त्वं पतङ्गवत् पतितुमिच्छसि ? याहि याहि ।

ततः क्रोधाग्निज्वालाज्वलितेन[4] मदनेनोक्तम्— अरे जिन, मच्चरित्रं किं न[5] जानासि त्वम् ? तद्यथा

रुद्रेण लङ्घिता गङ्गा मद्भयाद्धारिणाम्बुधौ[6](धिः) ।
क्षिप्रमिन्द्रो गतः स्वर्गं धरणीन्द्रस्त्वधो गतः ।।६८।।

जिन बाणोंके द्वारा मैंने सुर, असुर, इन्द्र, उरग और मानव आदिको जीता और अपने अधीन किया, वे बाण अब भी मेरे हाथमें है। फिर मै कैसे भागूँ ? और इस प्रकार भागनेसे क्या मुझे लज्जित नहीं होना पड़ेगा ?

इस प्रकार कहकर मदन, मोहन, वशीकरण, उन्मादन और स्तम्भन रूप पॉच प्रकारकी कुसुमबाणावलीको धनुषपर चढ़ाकर और मनोगजपर आरूढ होकर उसे शीघ्र दौड़ाता हुआ कामदेव समराङ्गणमें जिनराजके सामने जाकर कहने लगा : अरे जिनराज, पहले हमारे साथ युद्ध करो। पश्चात् सिद्धवधूके साथ विवाह करना। मेरी बाणावलीसे ही तुम्हें मुक्त्यङ्गनाके आलिङ्गनका सुख मिल जायेगा ।

१४. कामका आह्वान सुनकर मोक्षनदके राजहंसस्वरूप, साधुपक्षियोंके लिए विश्रामाश्रय, मुक्तिवधूके पति, काम-सागरके मथनके लिए मन्दराचल, भव्यजन-कुल-कमल-विकासके लिए मार्तण्डस्वरूप, मोक्षद्वारके कपाट तोड़नेके लिए कुठार-स्वरूप, दुर्वार विषय-विषधरके लिए गरुड़के समान, साधु-सरोवरके विकासके लिए चन्द्रके तुल्य और मायाकरिणीके लिए मृगेन्द्रकी तरह जिनराजने कामदेवसे कहा : अरे नीच काम, तू मेरी बाणाग्निमें पतङ्गकी तरह व्यर्थ ही क्यों झुलसना चाहता है ? चल, चल, यहॉसे ।

जिनराजकी बात सुनकर कामदेवकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। वह कहने लगा : अरे जिनराज, क्या तुम्हें मेरा चरित्र याद नहीं है ?

मेरे भयसे ही रुद्रने गङ्गाको लॉघा। मेरे भयसे ही जल समुद्रमें गया। मेरे भयसे ही इन्द्र स्वर्गमें गया और मेरे भयसे ही धरणेन्द्र अधोलोकमें गया ।

---

१. यै ख० । २. वाक्यमिद क०, ग०, घ०, ङ०, च० पुस्तकेषु नास्ति । ३. –श्रमेण च० । –श्रयेण क०, ख० । ४ ज्वालोज्व–च०। ५. 'न' च० पुस्तके नास्ति । ६. –द्वारिणा–क०, घ०, ङ०, च०।

मेरुपार्श्वे च गुप्तोऽर्को[1] ब्रह्माऽसौ मम सेवकः[2]।
न मे प्रतिवलः[3] कोऽपि त्रैलोक्ये सचराचरे ॥६९॥

एवं श्रुत्वा मुक्तिपतिरवोचत्, रे कन्दर्प, तव शूरत्वं वृद्धानां गोपालानां पशुपतीनामुपरि। न त्वस्मत्सदृशः कोऽपि त्वया स्वप्नेऽपि जितोऽस्ति। तदिदानीं यद्यस्ति तव शक्तिस्तर्हि शीघ्रं वली भव। एतदाकर्ण्य रतिपतिना मदभरमत्तो दुर्नयरवगर्जमानो मनोमातङ्गो जिनेन्द्रोपरि प्रेरितः। तद्यथा ५

उद्दण्डसंसारकरेण[4] रम्यश्चतुष्कषायैश्चरणैः समेतः।
दन्तावुभौ यस्य च रागद्वे(रो)षौ[5] यो रम्य आशाद्वयलोचनाभ्याम् ॥७०॥

एवंविधमनोगजमागच्छन्तमवलोक्य निजकरिणा जिनेन्द्रेण प्रतिस्खलितः। पश्चात् दृढकठिनसमभावमुद्गरेण निहत्य भूतले पातितः। ततो जिनघातहन्यमानो निजकरी यावद्भूतले[6] पतितो दृष्टस्तावद्रतिहृदयं महाव्याकुलीभूतम्। १०

अथ सा रतिर्दीनास्या[7] प्रवलाश्रुपातगद्गदवाचान्विता[8] भूत्वा कामं प्रत्युवाच—भो नाथ, अद्यापि किं पश्यसि? सकलसैन्यं भङ्गमागतम्। एको जीवशेष उद्धृतोऽसि त्वम्। द्रुततरं गम्यते[9] (ताम्)। ततोऽनन्तरं कामसैन्यस्य भङ्गः कीदृशः प्रवर्त्तते तत् कथ्यते— १५

मेरे भयसे ही सूर्य मेरुके निकट छिपा, और मेरे भयसे ही ब्रह्मा मेरा सेवक बना। इस प्रकार चराचर तीनों लोकमें मेरा कोई प्रतिभट नहीं है।

यह सुनकर जिनराज कहने लगे: अरे काम, तुम्हारी शूरवीरता वृद्ध, गोपालक और पशुपतियों तक ही चल सकती है। हम-जैसोंके ऊपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। और हम-जैसा तो तुमने स्वप्नमे भी पराभूत नहीं किया होगा। फिर इतनेपर भी यदि तुम मेरे साथ लडनेकी क्षमता रखते हो तो आकर मेरा सामना करो। २०

यह सुनकर कामने मदोन्मत्त और दुर्नय रूपसे चिग्घाडता हुआ मन-मातंग जिनेन्द्रके ऊपर छोड दिया।

यह मन-मतंगज, उन्नत संसाररूपी शुण्डादण्ड, कषायरूपी चार चरण, राग-द्वेषरूपी दाँत और आशारूपी दो लोचनोंसे मनोहर था। २५

इस प्रकार मनोगजको आता हुआ देखकर जिनराजने अपने हाथीसे उसे छेड दिया और तत्पश्चात् दृढ़ मुद्गरके प्रहारसे मारकर उसे भूतलपर गिरा दिया।

जब रतिने अपने हाथीको जिनके आघातसे आहत होकर पृथ्वीपर गिरते देखा तो उसका हृदय अत्यन्त व्याकुल हो गया। उसका मुख दीन पड गया और वह अश्रुगद्गद वाणीमे कामसे कहने लगी: स्वामिन्, आप अब भी क्या देख रहे है? सेनाका सर्वनाश हो चुका है। अकेले तुम ही बच रहे हो। इसलिए मेरी तो यही राय है कि अब हमें ३०

---

१ अन्तर्हितो बभूव। २ सेवका च०। ३ प्रतिरोधक इत्यर्थ। ४ करो शुण्डादण्ड। "करो वर्षोपले रश्मौ पाणौ प्रत्यायशुण्डयो" इति मेदिनी। ५ छन्दोभङ्गभिया 'रागरोषौ' इत्यात्मक एव पाठ संगत। ६ भूतलेऽपि द—च०। ७ विपण्णाननेत्यर्थ। ८ —लाश्रुतग—च०। ९ निर्गम्यते ख०।

यावत् स्याद्वादभेरी या जिनसैन्ये प्रगर्जति ।
तावद्भङ्गं [1]समायान्ति [2]दर्शनान्याशु पञ्च वै ॥७१॥

तथा च

यावत् पञ्च महाव्रतानि समरे धावन्ति पञ्चेन्द्रिया-
ण्यागच्छन्ति च तावदाशुविलयं यद्वत्तमो भास्करात् ।
यावच्छ्रीदशधर्मभूमिपतयो धावन्ति शीघ्रं रणे
तावत् कर्मचयो बिभेति च तथा सिंहाद्यथा कुञ्जरः ॥७२॥
यावद्धावन्त्यभिमुखमलं तत्त्ववीराश्च ताव-
[3]ज्जायन्ते [4]ते चकितमनसाः[5] सप्त वीरा भयाख्याः ।
प्रायश्चित्तप्रवरसुभटाः संगरे संचलन्तो
यावत्तावत् सभयमनसः शल्यवीरा [6]द्रवन्ति ॥७३॥

तथा च

जिनपतिदलमध्ये यावदाचारवीरः
प्रचलति किल तावत् कम्पते चास्रवाख्यः ।
अभिमुखमति यावद्धावतो धर्मशुक्लौ
द्रवत् इति हि तावच्चार्त्तरौद्रप्रवीरौ ॥७४॥

१५. एवंविधो मदनसैन्यस्य भङ्गो यावत् प्रवर्त्तते तावत्तस्मिन्नवसरेऽवधिज्ञान-नामा वीरो जिनसकाशमागत्य प्रणम्योवाच – भो भो देव, लग्नमासन्नं संप्राप्तम् । किम-

---

यहाँसे तुरन्त चल देना चाहिए । कामकी सेनाका जिस प्रकारसे विनाश हुआ उसे भी देख लीजिए :

ज्यों ही स्याद्वाद भेरीकी आवाज होनी शुरू हुई और जिनराजकी सेनाका गर्जन प्रारम्भ हुआ, कामकी सेनामें भगदड़ मच गयी ।

उस समय जिस प्रकार भास्करसे डरकर अन्धकार भाग जाता है, उसी प्रकार पाँच इन्द्रियाँ भी पाँच महाव्रतोंसे डरकर भीत हो गयीं । और जिस प्रकार सिंहसे हाथी भयभीत हो जाता है उसी प्रकार दस धर्मराजाओंके सामने कर्मवीर भी डर गये ।

और जैसे ही तत्त्ववीर सामने आये, सात भयवीर मनमें चकित हो गये । तथा जैसे ही प्रायश्चित्त सुभटोंने प्रयाण किया, शल्यवीर भी सभयमन होकर रणसे भागने लगे ।

और जिनराजकी सेनामें जैसे ही आचारवीरने प्रवेश किया, आश्रयवीर काँप गया । तथा धर्म और शुक्लवीरके सामने आते ही आर्त और रौद्रवीर द्रवित हो उठे ।

१५. इस प्रकार जैसे ही मदनकी सेनाका संहार प्रारम्भ हो गया, अवधिज्ञानवीर जिनराजके सामने आया और उन्हें प्रणाम करके निवेदन करने लगा : भगवन्, अब

---

१ समायाति क०, घ०, ङ०, च० । २. पञ्च मिथ्यादर्शनानि । ३. जायन्त्येते क०, ख०, घ०, च० । ४. 'ते' ख० पुस्तके नास्ति । ५ अतोऽनन्तर 'शल्यवीरा·' इति पर्यन्त. पाठ· ख० पुस्तके नास्ति । ६ द्रवीभूय निर्गच्छन्तीत्यर्थ ।

नेन[1] युद्धविम्त(स्ता)रेण ? यतोऽयमेको मदन[2] इहाधृतोऽस्ति। अन्यच्च, मोहोऽयं तावत् केवलज्ञानवीरघातैः क्षीणत्वं गतोऽस्ति। तच्छीघ्र[3] द्वयोरेकेन[4] संधानेन[5] साधनं कुरु। एवमवधिज्ञान[6]वीरवचनमाकर्ण्य जिनेन्द्रेण मदनं प्रत्युक्तम् – रे कंदर्प, [7]दर्पः ? यं वहसि स्त्रीणा पुरतः स्वगृहमध्ये ?

> [8]अन्तःपुरस्य पुरतः पुरुषीभवन्तः
> श्मश्रूणि मुखैः (हस्तैः) कति नोल्लिखन्ति।
> युद्धे तु तुन्नकरिशोणितसिन्धुतीरे
> वीरव्रती चरति वीरकराल एव ॥७५॥

तत्किमनेन[9] क्षात्रेण ?

तदाकर्ण्यानङ्गेन मोहं प्रति प्रष्टुमारब्धम् – हे सचिवेश, इदानीं किं क्रियते ? स चाह–भो देव, [10]परीषहाख्या विद्या स्मर्यते, [11]तत्त्वया(तव) तद्विद्यावलेनाभीष्टसिद्धि-

---

विवाह-वेला निकट आ गयी है। अतः आप अनावश्यक युद्धका विस्तार क्यों कर रहे हैं ? केवल काम ही ऐसा शेष रह गया है जिसको वश नहीं किया जा सका है। मोहको तो केवलज्ञानवीरके आघातोने क्षीण ही कर दिया है। इसलिए आप शीघ्र ही ऐसा मार्ग स्वीकार कीजिए कि एक ही सधानसे सेनाका संहार हो जाये।

इस प्रकार अवधिज्ञानवीरकी बात सुनकर जिनेन्द्रका साहस और अधिक बढ गया और वे कामको इस प्रकार ललकारने लगे : अरे काम, घरके भीतर बैठकर ही तुमने अपने स्त्रीसुलभ दर्पका प्रदर्शन किया है।

अन्तःपुरके सामने मूँछ ऐंठते हुए अपनेको पुरुष कहलानेवाले बहुत मिलेंगे। परन्तु जहाँ छिन्न हुए हाथियोंके खूनसे समुद्र लहरा उठता है, उस युद्धमें विरले वीर ही डटे रह पाते हैं।

अतः यदि साहस हो तो आओ, मुझसे सामना करो।

जिनराजकी बात सुनकर मोह एकदम स्तब्ध रह गया। कुछ क्षण बाद उसने मोहसे मन्त्र करना प्रारम्भ कर दिया। वह मोहसे कहने लगा : सचिवोत्तम, बतलाइए, इस समय हमें क्या करना चाहिए। मोह कहने लगा · देव, इस समय परीषह नामक विद्याका स्मरण कीजिए। उस विद्याके बलसे आपकी अवश्यमेव अभीष्ट सिद्धि होगी।

---

१ शब्दस्य विस्तार एव विम्तरशब्दस्य प्रयोग कोपकाराणा समत। अत्र तु युद्धविस्तारे विस्तार-शब्दस्य प्रयोग एव समीचीन। तथा हि–"विस्तारो विपुलो व्यास स तु शब्दस्य विस्तर।" इत्यमर। २ इहोद्धृतोऽस्ति क०, ख०, घ०, ङ०। मदन एव केवलमनिर्गृहीतो विद्यत इत्यर्थ। ३ द्वयोर्मदनमोहयो। ४ सघातेन च०। लक्ष्यप्रयोगेणेत्यर्थ। ५ पराजय करोत्वित्यर्थ। ६ ज्ञानव–ख०, ङ०। ७. दर्पोऽय च०। 'दर्पोऽय ते ?' इति गभीराक्षेप। ८ पद्यमिद क०, घ०, ङ०, च० पुस्तकेपु नास्ति। ९ तेन क०, घ०, ङ०, च०। १०. "मार्गाच्यवननिर्जरार्थ परिषोढव्या परीषहा।"–त० सू० ९।८। ११ वाक्यमिद ख० पुस्तके नास्ति।

भवति । ततस्तेन सक्रोधमनसा रक्तध्यानेनाह्वानिता(आहूता) तत्क्षणात् सा [1]द्वाविंशतिरूपैः सहिता 'देहि देह्यादेशम्' इति वदन्ती संप्राप्ता । ततो मदनेनोक्तम्—हे देवि, 'त्वया जिनो जेतव्यः । साहाय्यमेतत् करणीयम् ।' एवमुक्त्वा जिनोपरि संप्रेषिता मदनेन ।

ततः सा निर्गता द्रुततरमसिधारोपमा नानाविधभावैर्भिन्दन्ती दंशमशकप्रभृतिभिरुपसर्गभेदैर्नानाविधिदुःखजनकैः सहिता परीषहाख्या विद्या जिनेन्द्रं रुणद्धि स्म । ततोऽनन्तरं जिनेन निर्जराख्या[2] विद्या मनसि चिन्तिता । सा स्मरणमात्रेण संप्राप्ता । अथ ता निर्जरां दृष्ट्वा सा[3] परीषहाख्या विद्या तत्क्षणात् पलायिता ।

१६ ततो मनः[4]पर्ययेण जिनो विज्ञप्तः—देव, अद्यापि किं निरीक्ष्यसि(से) ? विवाहसमयः संप्राप्तः । अन्यच्च, बल[5]क्षीणमिमं मोहं न हन्सि चेत्तर्हिसिद्धिवराङ्गनापरिणयनं न भवति । उक्तं च यतः

कामको मोहकी राय पसन्द आयी । उसने क्रोधावेशमें तत्क्षण उस विद्याका आह्वान किया, जिसके कारण वह बाईस प्रकारका रूप धारण करके कामके सामने उपस्थित हो गयी । और उपस्थित होते ही कामसे कहने लगी : देव, मुझे आदेश कीजिए, आपने किस प्रयोजनसे मुझे स्मरण किया है ?

काम कहने लगा : देवि, तुम्हे जिनराजको जीतना है । और जिनराजको पराजित करनेमें मेरी सहायता करनी है । इस प्रकार कहकर कामने उसे जिनराजके पास भेज दिया ।

कामकी आज्ञा पाते ही परीषह विद्या वहाँसे चल दी और तलवारकी धारके समान तीक्ष्ण दंशमशक आदिके उपसर्गों और अनेक प्रकारके दुःखद उपायोंसे जिनेन्द्रको कष्ट देने लगी ।

जैसे ही परीषह विद्या जिनराजको कष्ट देनेके लिए उद्यत हुई उन्होंने निर्जरा विद्याका मनमें स्मरण किया । जिनराजके स्मरण करते ही वह उनकी सेवामें आ उपस्थित हुई और निर्जरा विद्याके आते ही परीषह विद्या तत्क्षण पलायन कर गयी ।

१६. तदुपरान्त मनःपर्ययज्ञानवीर जिनराजके पास आया और उनसे निवेदन करने लगा : भगवन्, अब आप क्या परीक्षा कर रहे है ? विवाहका समय आ गया है । अभी आपको क्षीणशक्ति मोहका भी समूल उन्मूलन करना है । जबतक आप मोहका विनाश नहीं करेंगे, आपका मुक्ति-कन्याके साथ पाणिग्रहण होना कठिन है । फिर मोह भी साधारण सुभट नहीं है । कहा भी है :

---

१. क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याऽऽक्रोशवधयाचनाऽलाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानादर्शनभेदाद् द्वाविंशतिरूपैरलंकृता । २ "एकदेशकर्मसंक्षयलक्षणा निर्जरा ।" –स० सि० ११४ । ३. सा तत्क्षणात् प–ख०, ड० । ४ "परकीयमनोगतोऽर्थो मन इत्युच्यते । साहचर्यात्तस्य परिगमन मन पर्ययः ।" – स० सि० ११४ । ५. बलाक्षीण ख० ।

"मोहकर्मरिपो नष्टे सर्वे[1] दोषाश्च विद्रुता ।
छिन्नमूलद्रुमा[2] यद्वद् यथा[3] सैन्य नि(वि)नायकम् ॥१६॥"

तदस्मिन् मोहे हते सति मदनोऽयं गमिष्यति ।

तच्छ्रुत्वा जिनेन[4] पञ्चशरं प्रति विहस्योक्तम्—अरे वराक मार, मा म्रियस्व। याहि याहि। युवतीजनगिरिगह्वरान्तरनिवासी भव । ५

तद्वचनमाकर्ण्य मोहेन कामं प्रत्युक्तम्—अहो देव, अधुनैवंविधेऽवसरे आत्मकुलदेवता आशिनी नाम विद्या संस्मर्यते(ता)त्वया । तस्या[5] आशिन्याः प्रसादेन रणसागरोत्तरणं भविष्यति । तच्छ्रुत्वा[6] मदनस्तथाविधं चकार । तद्यथा

प्राप्ता[7] चेतसि चिन्तिताऽद्भुततरं कामेन[8] दिव्याशिनी
द्वात्रिंशद्द्विजराक्षसैः परिवृता यद्वत्परा चण्डिका । १०
कुर्वन्ती भुवनत्रयस्य कवलं देवेन्द्रकम्पप्रदा
याऽत्यन्तच्छलपालकाद्भुतबला ब्रह्मादिकैर्दुर्जया ॥७६॥

[9]एवंविधा संप्राप्य मदनाभिमुखा(खी) तस्थौ । ततस्तामाशिनीमवलोक्य मुकुलितकरकमलो मदनो विनयालापैः प्रशंसयामास । तद्यथा

"जिस प्रकार सेनापतिके नष्ट हो जानेके बाद सेना नष्ट हो जाती है और जड़ कट जानेपर वृक्ष नष्ट हो जाते है उसी प्रकार मोहकर्मके नाश हो जानेपर समस्त बाधाएँ भी विलीन हो जाती है ।" १५

दूसरे मोहके आहत होनेपर काम स्वयमेव भाग जायेगा ।

मन:पर्ययवीरकी बात सुनकर जिनराजने कामदेवसे कुछ स्मितके साथ कहा, अरे वराक काम, चल यहाँसे । मरना क्यों चाहता है ? स्त्री रूपी गिरि-कन्दराओंमें जाकर अपने प्राण बचा । अन्यथा तुझे अभी समाप्त किये देता हूँ । २०

जिनराजकी बात सुनकर कामको बड़ा विस्मय हुआ । उसने अपने प्रधानमन्त्री मोहसे इस सम्बन्धमे परामर्श किया तो मोह कहने लगा : इस समय आपको अपनी कुलदेवी दिव्याशिनी विद्याका स्मरण करना चाहिए। उसीके प्रसादसे आप इस रण-सागरसे पार हो सकेंगे । २५

मोहकी बात कामको जँच गयी। उसने ऐसा ही किया और दिव्याशिनी इस प्रकारके वेषमें तत्काल आकर उपस्थित हो गयी :

यह दिव्याशिनी बत्तीस द्विज-राक्षसोंसे वेष्टित थी, चण्डीके समान भयंकर और तीनों लोकको भक्षण करती हुई-सी प्रतीत हो रही थी । देवेन्द्रको भी कँपा देनेवाली थी । अद्भुत बलशाली, अत्यन्त छलमय और ब्रह्मा आदिसे भी दुर्जय थी । ३०

इस प्रकार कामके स्मरण करते ही दिव्याशिनी आकर कामके सामने उपस्थित हो

१ पलायिताः भवन्ति । २. -लस्तरुर्य-ख० । ३. भ्रष्टसैन्यमराजकम् ख० । ४ पञ्चशरो 'विहस्य प्रोक्त' ख० । पञ्चशर काम । ५ तस्या' प्रसा-ख० । ६. कुलदेवताशिनीविद्यास्मरण चकारेत्यर्थ । ७. प्राप्ते चे-च० । ८ दैत्याशिनी ख० । ९ आशिनी विद्या ।

जितलोकत्रया त्वं च त्वमचिन्त्यपराक्रमा ।
मानापमानदा त्वं च विद्या त्वं भुवनेश्वरी ॥७७॥
[1]त्वं च ज्ञानवती .... ।
ब्राह्मी त्वं शब्दब्रह्मत्वाद्विश्वव्याप्ता च वैष्णवी ॥७८॥
५ प्राप्तासि सर्वभाषात्वं तस्मात् त्वं देवमातृका ।
पुष्टं स्यात्त्वयि भुक्तायामभुक्तायां जगत् कृशम् ॥७९॥
तस्मात्त्वं च जगन्माता सकलानन्ददायिनी ।
निघण्टुनाटकच्छन्दस्तर्कव्याकरणानि च ॥८०॥
इत्याद्यं त्वद्यतो जातं तस्मात्त्वं श्रुतदेवता ।
१० त्वं पद्मा स्याद(स्या ह्य)जन्मत्वात्त्वमेका हि जगत्प्रिया ॥८१॥
एवं बहुभिः(बहु)प्रकारैः स्तोत्रैः स्तुत्वा जगत्प्रिया(याम्) ।
इति श्रुत्वा च संतुष्टा प्रोवाचेति तमाशिनी ॥८२॥

हे मदन, [2]पूर्यताम् । ममाह्वाने[3] किं कार्यं तत्कथय ।

ततः स्मरो जगाद – हे परमेश्वरि, अनेन ममाखिलं सैन्यं भङ्गमानीतम् । तस्मात्तव
१५ स्मरणं कृतम् । अधुना येन[4] केनोपायेन मां रक्षसि चेत्तदहं जीवामि, नान्यथा । यतस्तव जयेन जयवानहं तव पराजयेन[5] पराजयं गमिष्यामि । एवं तस्य वचनामाकर्ण्य जिन-

---

गयी । जैसे ही कामने दिव्याशिनीको अपने सामने उपस्थित देखा, वह हाथ जोडकर खडा हो गया और अनेक स्तुति-वचनोंसे उसकी निम्न प्रकार प्रशंसा करने लगा :

हे देवि, तुमने तीनों लोक जीत लिये है । तुम्हारा पराक्रम अचिन्त्य है । तुम मान
२० और अपमान करनेमें दक्ष हो और तुम असाधारण भुवनेश्वरी विद्या हो । तुम ज्ञानवती हो । शब्दब्रह्म होनेसे ब्राह्मी हो । और विश्वमें व्याप्त हो । वैष्णवी हो । सर्वभाषामय होनेसे देवमातृका हो । तुम्हारे भोजन करनेपर जगत् पुष्ट रहता है और भूखे रहनेसे कृश । अतः तुम जगत्की माता हो । तुमसे सबको आनन्द मिलता है । निघण्टु, नाटक, छन्द, तर्क और व्याकरण आदि तुम्हींसे उत्पन्न हुए है । अतः तुम कुलदेवता हो । तुम अजन्मा
२५ हो और पद्मा हो । तुम एक हो और जगत्को प्यारी हो ।

इस प्रकार कामने जब दिव्याशिनीकी विविध भाँति स्तुति की तो वह भी इसके ऊपर प्रसन्न हो गयी और कामसे कहने लगी : काम, कहो, तुमने मुझे किस लिए स्मरण किया है ?

काम कहने लगा · देवि, जिनराजने हमारी समस्त सेनाका सहार कर डाला है ।
३० इसलिए यदि इस समय तुमने मुझे किसी प्रकारसे बचा लिया तो ही मै जीवित रह सकता हूँ । मेरी प्राणरक्षाका अन्य कोई उपाय मुझे नजर नहीं आ रहा है । अब आपकी ही जयसे मै जयवाला और आपकी ही पराजयसे मै पराजित समझा जाऊँगा ।

---

१. पद्यचतुष्टयमिदं क०, घ०, ङ०, च० पुस्तकेषु नास्ति । २. विरम विरम तावत् सत्स्तुतेरस्याः । ३. ममाह्वानेन ख० । ४. 'येन' घ० पुस्तके नास्ति । ५ पराजयेन ग–क०, घ० । पराजये ग–ख० ।

संमुख धावन्ती निर्गता साऽऽशिनी [1]भक्ष्याभक्ष्यं भक्षयन्ती सागरनदीसरित्तडागादि शोषयन्ती।

एवमागच्छन्ती यावज्जिनेन [2]दृष्टा [3]तावदधाकर्ममार्गणैर्विद्धा परं [4]नास्थिरा भवति। ततो भूयोऽपि जिनेन नानान्तरायप[5]ष्ठभुक्तषष्ठचान्द्रायणैकस्थानप्रभृतिभिर्बाण-समूहैर्विद्धा, पर तु दुर्द्धरा जिनाभिमुखं सम्प्राप्याब्रवीत्– हे जिन, त्यज गर्वम्, मया सह संग्रामं कुरु। ५

ततो जिनेश्वरेणोक्तम्– हे आशिनि, भवत्या सह संग्रामं कुर्वन् लज्जेऽहम्। यतः शूरतरा ये क्षत्रिया भवन्ति ते स्त्रीभिः सह संग्राम न कुर्वन्ति। इति [6]श्रवणमात्रादाभू-तलाद् गगनपर्यन्तं प्रसारितवदना विकटदंष्ट्राकराला भैरवरूपं धृत्वाऽट्टहासं [7]मुञ्चन्ती जिननिकटा सजाता। ततस्तेन जिनेनैकान्तरत्रिरात्राष्टोपवासरसपरित्यागपक्षमासत्वे-यनवर्षोपवासप्रभृतिभिर्बाणजालै[8]र्विद्धा भूतले पतिता। १०

[9]ततस्ता पतितामाशिनीमवलोक्य मोहेन मदन प्रत्युक्तम्– भो देव, अद्यापि किं-

---

जब काम दिव्याशिनीके सामने इस प्रकारसे विनत हुआ और दिव्याशिनीने उसकी तथोक्त दीन दशा देखी और आर्त्त-वाणी सुनी तो वह अनेक अभक्ष्य पदार्थोंको भखती हुई और मार्गवर्ती अनेक सागर, नदी-नद और तडाग आदिको सुखाती हुई तत्क्षण जिनराजके पास दौडती हुई पहुँची। १५

जिनराजने जैसे ही दिव्याशिनीको आते हुए देखा, उसने अध कर्म बाणोंसे उसपर प्रहार किया। पर इतने पर भी उसके आक्रमणका वेग अवरुद्ध नहीं हुआ। अतः इस बार जिनराजने प्रबल प्रतिरोधक चान्द्रायण प्रभृति बाण-समूहोंकी उसपर वर्षा की। परन्तु यह बाण-वर्षा भी व्यर्थ सिद्ध हुई। इसके विपरीत दिव्याशिनी क्रुद्ध वेषमें सामने आयी और कहने लगी: जिनराज, तुम अभिमान छोड़ दो और मेरे साथ संग्राम करो। उत्तरमें जिनराज कहने लगे: दिव्याशिनी, तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें हमें लाज लगती है। क्योंकि क्षत्रिय स्त्रियोंके साथ युद्ध नहीं करते। २०

जिनराजके इस प्रकार कहते ही दिव्याशिनीने अपना मुँह धरतीसे लेकर आसमान तक फैला लिया, अपनी विकराल दाढोंको बाहर निकाल लिया और भयंकर वेष बनाकर अट्टहास करती हुई जिनराजके और निकट पहुँच गयी। २५

तदुपरान्त जिनराजने एकान्तर, तेला, आठ दिनके उपवास, रसपरित्याग, पक्ष, मास, ऋतु, अयन और वर्षके उपवास आदि बाणजालोंसे उसे छेद दिया और वह भूतल-पर जा गिरी।

जब मोहने देखा कि जिनराजने दिव्याशिनीको भी भूतलपर गिरा दिया है तो वह ३०

---

१ भक्षाभक्ष क०, ख०, ग०, घ०, च०। २ दृष्ट्वा क०, घ०, ङ०, च०,। ३ आधाकर्म– "गृहस्थाश्रित पञ्चमूनासमेत तावत्सामान्यभूतनष्टविधपिण्डशुद्धिबाह्य महादोषरूपमध कर्म कथ्यते। अध कर्म निकृष्टव्यापार. षड्जीवनिकायवधकर।"–मूला० टी० ६१३। ४ स्थिरा न भवति ख०। ५ –प्रभुक्तषष्ठचा– क०, घ०, ङ०, च०। ६ वचनमा–ख०। ७ 'साशिनी' इत्यध्याहार्यम्। ८ 'सा' इत्यध्याहार्यम्। ९ 'ततस्ता पतिता च०, पुस्तके नास्ति।

निरीक्ष्यसि (से)। यस्या आशिन्या बलेन स्थातव्यं साऽऽशिनी पातिता। अन्यच्च स्वातीगतशुक्राम्बुवृष्टिरिव[1] जिननाथस्य[2] बाणवर्षा[3] (र्षो) न स्थिरा (रो) दृश्यते। तर्हि त्वं निर्गच्छ। क्षणमेकमहं भवदर्थे यथाशक्त्या(क्ति) जिनसैन्येन सह योत्स्ये। यथान्तरं किंचित्तव भवति। एवं मोहवचनमाकर्ण्य संख्याव्रतमार्गणप्रहताङ्गोऽनङ्गो धैर्यं धर्तुं न
५ शक्नोति यदा, तदा निर्गतः। तद्यथा

चण्डानिलेन प्रहतो यथाम्बुदो विनिर्गतः सिंहभयाद्यथा गजः।
तमो यथा भानुकरैर्विमर्दितं तथा स्मरो भूरिशरैः कदर्थितः[4] ॥८३॥

१७ अथ निर्गते मदने क्षीणाङ्गो मोहः पवनप्रहताभ्रमिव जिनसैन्यं क्षणमेकं प्रतिस्खलितवान्। ततो जिनेनोक्तम् – अरे मोह वराक, गच्छ गच्छ। किं वृथा मर्तु-
१० मिच्छसि? एतदाकर्ण्य मोह आह – हे जिन, किमेवं वदसि? पुरा मया सह संग्रामं कुरु यतो मयि जीविते स्थिते मदनोऽयं केन जेतव्यः? अन्यच्च, स्वाम्यर्थे भृत्येन प्राण-त्यागः कर्त्तव्यो न पलायनम्। उक्तं[6] च

जाकर कामसे कहने लगा : देव, अब भी आप क्या देख रहे है। जिस दिग्शाशिनीके बलपर आप साहस धारण किये थे वह भी युद्धमें गिरा दी गयी है। और स्वाति नक्षत्रमें
१५ होनेवाली निर्मल जल-वृष्टिकी तरह जिनराजकी बाण-वर्षा अब भी अविराम हो रही है। इसलिए इस समय आप तो यहाँसे चले जाइए। मै एक क्षण तक आपकी खातिर जिनराज-की सेनासे लड़ूँगा। कदाचित् मेरे संग्रामसे आपका हितसाधन हो सके।

कामदेव असंख्य व्रत-बाणोंसे आहत होकर अधीर हो ही रहा था। इसलिए जैसे ही मोहने संग्राम-भूमिसे भाग जानेका उसे परामर्श दिया वह तुरन्त ही वहाँसे चल पड़ा।

२० जिस प्रकार प्रचण्ड पवनसे आहत मेघ खण्ड-खण्ड होकर उड़ जाता है, सिंहके भयसे हाथी भाग जाता है और सूर्य-किरणोंसे विमर्दित अन्धकार विलीन हो जाता है उसी प्रकार जिनराजकी बाण-वर्षासे आहत काम भी संग्राम-भूमिसे भाग निकला।

१७. जब कामदेव रण-स्थलीसे भाग खड़ा हुआ तो क्षीणकाय मोह जिनराजकी सेनाका सामना करने लगा, लेकिन क्षीण-शक्ति होनेके कारण उसे पदे-पदे स्खलित होना
२५ पड़ा। अतः जिनराजने उससे कहा : अरे वराक मोह, भाग यहाँसे। व्यर्थमें क्यों मरना चाहता है?

जिनराजकी बात सुनकर मोह कहने लगा : अरे जिन, आप यह क्या कह रहे है? पहले मेरे साथ तो लड लो। जबतक मै जीवित हूँ, कामको कौन जीत सकता है? फिर स्वामीके लिए अगर मुझे अपने प्राणोंकी बलि भी देनी पड़े तो मै कर्त्तव्य समझकर उसे
३० देनेके लिए सहर्ष तैयार हूँ। रणसे भाग जाना अनुचरका कर्तव्य नहीं है। कहा भी है :

---

१. "स्त्रातीगत· शुक्र इवातिवृष्टि"–मारतसा०। २ अत पर 'मदनस्य पृष्ठतो लग्न.' [पृ० १०७ पं० ११] इति पर्यन्त पाठ ड० पुस्तके नास्ति। ३. वृष्टयर्थे प्रयुक्तो वर्षशब्द पुल्लिङ्ग एव। तथा हि– "वर्षोऽस्त्रो भारतादौ च जम्बूद्वीपाब्दवृष्टिषु। प्रावृट्काले स्त्रिया भूम्नि··।"–मेदिनी। ४. तथा नि–घ०, च०। ५. पीडित इत्यर्थ·। ६ तुलना–"मृतै सप्राप्यते स्वर्गो जीवद्भि· कीर्तिरुत्तमा। तदुभावपि शूराणा गुणावेतौ सुदुर्लभौ॥"–पञ्च० मि० भे० ३३३।

"जितेन लभ्यते लक्ष्मीर्मृतेनापि सुराङ्गना ।
क्षणविध्वंसिनी(न) कोया(या)का चिन्ता मरणे रणे ॥१७॥"

तथा च

"स्वाम्यर्थे यस्त्यजेत् प्राणान् भृत्यो भक्तिसमन्वित ।
[2]लोके कीर्तिर्यशस्तस्य परत्रे चोत्तमा गतिः ॥१८॥"

अन्यच्च[3]

"स्वाम्यर्थे ब्राह्मणार्थे च गवार्थे स्त्रीकृतेऽथवा ।
स्थानार्थे यस्त्यजेत् प्राणास्तस्य लोक सनातन ॥१९॥

एवं तयोर्जिनमोहयोर्यावद्रणविवादः परस्परं वर्त्तते तावद्धर्मध्यानेन(नः) समरक्रुद्धे-नाग्र[4]तः (क्रुद्धोऽग्रतः) स्थित्वा मोहमल्लं चतुर्भेदबाणैर्हत्वा भूतले शतखण्डमकार्षीत्। ततोऽनन्तर ससैन्यो जिननाथो धावन्[5] मदनस्य[6] पृष्ठतो लग्नः। ततः ससैन्य जिनपतिमा-गच्छन्तं यावद् दूरस्थमवलोक्य(कयति) तावन्मदनो महाव्याकुलोऽभूत्। अथ तस्य[7] मद-नस्य तस्मिन्नवसरे न[8] चात्मकलत्रस्य संस्मरणम्, न च शरचापादीनाम्, न चाश्वरथ-गजपदातीनाम्। एवंविधः[9] शुक्लास्यो मुक्तकेशो यावन्न[10] पश्यति, तावच्छीघ्रमाक्रम्य जिन-स्तं मदनं प्रचारितवान्[11]–रे रे मदन, अद्य पलाय्य त्व कस्या मातुर्जठरे प्रविशसि? अन्यच्च,

---

"युद्धमें विजयी होनेपर लक्ष्मी मिलती है। मरनेपर देवागनाएँ मिलती है। माया तो क्षणभरमें विलीन हो जानेवाली है। फिर रणमें मर जानेकी कौन चिन्ता?" तथा

"जो भृत्य भक्तिके साथ स्वामीके लिए प्राण-परित्याग करता है, उसे इस लोकमें कीर्ति और यश मिलता है तथा परलोकमें उत्तम गति।" इस सम्बन्धमें और भी कहा है :

"जो व्यक्ति स्वामीके लिए, ब्राह्मणके लिए, गायके लिए, स्त्रीके लिए और स्थानके लिए प्राणोका परित्याग करता है उसे परलोकमें सदैव सुख मिलता है।"

इस प्रकार जिस समय जिनराज और मोहका इस तरह परस्परमें रणसम्बन्धी विवाद चल रहा था, धर्मध्यान क्रुद्ध होकर आ उपस्थित हुआ और चार प्रकारके बाणोंसे मोहको आहत करके उसे शतखण्डोंके रूपमे पृथिवीपर बिखरा दिया।

तदनन्तर जिनराजने अपनी सेना लेकर कामका पीछा किया। जब कामने सेना-सहित जिनराजको अपना पीछा करते हुए देखा तो वह अत्यन्त व्याकुल हो गया। उस समय उसे न अपनी सुध रही, न स्त्रीकी, न धनुष-बाणकी और न ही अश्व, रथ, हाथी और पदातियोंकी ही। इसके विपरीत उस समय उसे भागनेके सिवाय और कुछ सूझ ही न पडा और फलतः उसने भागना शुरू कर दिया। इतनेमें, जबतक शुक्लध्यान वीर इस

---

१. प्रान्तिकभाषाप्रयोगप्राबल्यादत्रापि कायशब्द स्त्रीत्वे प्रयुक्त प्रतीयते। २ "पर स पदमाप्नोति जरामरणवर्जितम् ॥"–पञ्च० मि० भे०३१६। ३. "गवामर्थे ब्राह्मणार्थे स्वाम्यर्थे स्त्रीकृतेऽथवा। तस्य लोक। सनातना ॥"–पञ्च० मि० भे० २२६। ४ –नागत स्थि–ग०, घ०, च०। ५ यावत् म–ग०। ६ कामस्य क०, ख०। ७ 'मदनस्य' ख० पुस्तके नास्ति। ८ –कलत्रस्मरण ख०। ९ शुक्लास्यो मु–च०। १० मदन इति शेष। यावन्न हि जागर्त्ति कामस्य मानसे कर्त्तव्याकर्त्तव्यविवेक इति तात्पर्यम्। ११ भर्त्सयन्नाह।

त्वमेवं वदसि – "मया को न जितो लोके ?" एवमुक्त्वा धर्मबाणावलीं शरासने संधित्वा(संधाय)[1] वक्षःस्थले विद्धो मूर्च्छां प्रपन्नः[2] पतितः। तद्यथा

[3]मरुद्धतो वै [4]पतति द्रुमो यथा [5]खगेन्द्रपक्षप्रहतो यथोरगः।
सुरेन्द्रवज्रेण हतो यथाऽचलस्तथा मनोभूः पतितो विराजते ॥८४॥

५ ततस्तत्क्षणात् सर्वतो यावत्सैन्येनावेष्टितस्तावत्तस्मिन्नवसरे मदनः श्लोकमेकमपठत्। तद्यथा

[6]पूर्वजन्मकृतकर्मणः फलं पाकमेति नियमेन देहिनाम्।
नीतिशास्त्रनिपुणा वदन्ति यद् दृश्यते तदधुनाऽत्र सत्यवत् ॥८५॥

१८. ततस्तत्रैके वदन्त्येवम् – "अयमधमो बध्यते (ताम्)।" एके वदन्ति – "गर्द्दभा-
१० रोहणं शिरोवपनमस्य च कर्त्तव्यम्।" एके वदन्ति – "चारित्रपुरबाह्ये प्रदेशे शूलारोहणमस्य क्रियते(ताम्)।" एवमादि सकलसामन्तवीरक्षत्रियाः प्रहृष्टमनसो यावत् परस्परं

दृश्यको नहीं देखता है, तबतक जिनराज शीघ्र ही कामके निकट आकर कहने लगे : अरे काम, अब भागकर तू कहाँ जा रहा है ? क्या फिरसे अपनी माँके उदरमें प्रवेश करना चाहता है ? तुम जो कहते थे कि मैंने संसारमें किसे पराजित नहीं किया है, सो
१५ यदि तुममें हिम्मत हो तो मेरा सामना करो। इतना कहकर जिनराजने धर्मबाणावलीको धनुषपर चढाकर कामके वक्षस्थलमें इस प्रकारसे प्रहार किया कि वह आहत होकर जमीनपर गिर पडा।

जिस प्रकार वायु वृक्षको उखाडकर गिरा देती है, साँप गरुड़के पंखोंसे आहत होकर गिर पडता है और पर्वत इन्द्रके वज्र-प्रहारसे गिर जाता है उसी प्रकार काम जिनराजकी
२० बाणावलीसे आहत होकर गिर पड़ा।

कामके भूतलपर गिरते ही जिनराजकी सेनाने उसे आ घेरा और बाँध लिया। इस प्रकारकी अवस्थामें पड़े हुए कामको निम्नलिखित स्मृति सजग हो उठी :

"नीतिकारोंने जो उपदेश दिया है कि पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंका फल देहधारियोंको अवश्य भोगना पडता है, वह आज खुले रूपमें सामने आ गया है।"

२५ १८. जब काम जिनराजसे पराजित हो गया तो सेनाके कतिपय सुभट कामके सम्बन्धमें इस प्रकार मन्त्रणा करने लगे : यह अधम है, इसे मार डालना चाहिए। कुछ कहने लगे : इसका सिर मूँडकर और गधेपर बैठाकर इसे निकाल देना चाहिए। और कुछ सुभट कहने लगे : इसे चारित्रपुरसे बाहर ले जाकर शूलीपर चढा देना चाहिए। इस प्रकार जब समस्त सामन्त परस्परमें इस प्रकारसे वार्तालाप कर रहे थे उस समय रति और

---

१ अत्र "समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्" इत्यनुशासनानुसारेण ल्यपि 'सधाय' इति प्रयोगस्यैव साधुत्वम्। सधाय सनियोज्येत्यर्थ। २ प्रयत्नत प – च०। ३ मरुद्धतो वायुविकम्पित इत्यर्थ। ४ पतितो द्रु – ख०। ५ खगेन्द्रो गरुड। ६. "तुलना – "अवश्य ह्यनुभोक्तव्य कृत कर्म शुभाशुभम् ॥" – क्षत्रचू० १।१०४। तथा – "पुण्य वा पाप वा यत्काले जन्तुना पुराचरितम्। तत्तत्समये तस्य हि सुखं च दु ख च योजयति ॥" – यश० च० ६।३१४।

वदन्ति तावत्तस्मिन्नवसरे रतिप्रीत्यौ(ती)जिनेन्द्रं प्रति विज्ञापना कृतवत्यौ। तद्यथा

भो धर्माम्बुद हे कृपाजलनिधे हे मुक्तिलक्ष्मीपते
भो भव्याम्बुजराज(जि[1])रञ्जनरवे सर्वार्थचिन्तामणे।
भो चारित्रपुराधिनाथ भगवन् हे देव देव प्रभो
वैधव्यं कुरु [2]माऽऽवयोः करुणया त्वं दीननाथ प्रभो ॥८६॥ ५

अन्यच्च

[3]लोकेऽस्मिन्निदमचल[4] साधू रक्षो(क्ष्यो) हि दुर्जनो वध्यः।
एवं त्वयाऽपि कार्यं[5] यदि हे जिन तत् किमाश्चर्यम् ॥८७॥
तन्मा मारय मारं दोषिणमप्येनमावयोर्नाथम्।
किं ते पौरुषमस्मिन् प्रहते ज्ञेयं च[6] हे देव ॥८८॥ १०

अपरम्

उपकारिषु यः साधु साधुत्वे तस्य को गुण.।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ॥८९॥
नानाविधैः प्रकारैः (–रुपायैः) शिक्षित एषः स्मरः पुराऽऽवाभ्याम्।
तत्फलमनेन दृष्टं तदिदानीं रक्ष रक्ष भो देव ॥९०॥ १५

प्रीति कामके दु खद समाचारसे दु खित होकर जिनराजके पास आयीं और इस प्रकार प्रार्थना करने लगीं :

हे धर्माम्बुद, हे करुणासागर, हे मुक्तिलक्ष्मीपति, हे भव्यरूपी कमलोंके लिए सूर्य, हे सर्वार्थचिन्तामणि, हे चारित्रपुरके अधिपति भगवान् जिनराज, आप हमपर करुणा कीजिए और कामदेवको जीवित छोड़कर हमारा सौभाग्य अचल कीजिए। हे प्रभो, आप २० दीनानाथ हैं, इसलिए हम लोगोंकी प्रार्थनापर अवश्यमेव ध्यान दीजिए। यद्यपि संसारमें यह दण्ड-विधान सुप्रसिद्ध है कि सत्पुरुषकी सब तरहसे रक्षा होनी चाहिए और दुर्जनको दण्ड दिया जाना चाहिए। हे जिनराज, यदि इस पद्धतिका आप भी अवलम्ब लें तो कोई आश्चर्य नहीं है।

हे नाथ, हमारे पतिने आपका महान् अपराध किया है। फिर भी आप उन्हें २५ मृत्युदण्ड न दीजिए; क्योंकि इस प्रकारसे क्षीणशक्ति प्राणनाथको मारनेमें आपका क्या पौरुष है ? और

जो उपकारियोंके प्रति सौजन्य दिखलाता है उसके सौजन्यसे क्या लाभ ? वास्तविक सौजन्य तो उसका है, जो अपकारियोंके प्रति सद्व्यवहार करता है।

फिर भगवन्, हम लोगोंने इन्हें अनेक प्रकारसे समझाया भी था; लेकिन इन्होंने ३० कुछ नहीं सुना। और यही कारण है कि यह अपने कर्मोंका इस प्रकारसे फल भोग रहे हैं। फिर भी देव, आपको तो रक्षा ही करनी है।

---

१ राजि पङ्क्ति। "राजि. स्त्री पङ्क्तिरेखयो" इति विश्व। २ हे प्रभो, कृपया आवयोर्वैधव्य मा कुर्वित्यर्थ। ३ पद्यमिदं ख० पुस्तके नास्ति। ४ – स्मिन्निचल च०। ५ वदेदेक ख०। ६ पञ्च० मि० भे० २७०। पद्यमिदं क०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति।

एवं तयोर्विज्ञाप्य वचनं श्रुत्वा जिनेन्द्रेणोक्तम् – हे रतिप्रीत्यौ(ती), भवत्योः किमनेन बहुप्रोक्तेन? दुष्टमिममधर्मं तर्हि न मारयामि यदि देशत्यागं प्रकरिष्यति।

तच्छ्रुत्वा ताभ्यामुक्तम् – देव, तवादेशं(शः) प्रमाणम्। परं तु देवेन किंचिन्मर्या-[1] दामात्रं कथनीयम्। तदाकर्ण्य जिनेन्द्रो विहस्योवाच – तदनेनाधमेनास्मद्देशस्य सीमा कदापि काले न लङ्घनीया। ततो भूयोऽपि रतिप्रीतिभ्यामुक्तम् – तद्देवेन शीघ्रं स्वदेश-सीमा कथ्यते(ताम्)। ततो जिनेन [3]दर्शनवीरगणकमुख्यमाहूयाभिहितम् – अरे दर्शनवीर, मदनस्य देशपट्टदानार्थं स्वदेशसीमापत्रं विलिख्य समर्पय।

तदाकर्ण्य स दर्शनवीरः स्वदेशसीमापत्रं लिलेख। तद्यथा

"शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्राराऽऽनतप्राणताऽऽरणाच्युतनवग्रैवेयकविजयवैजयन्त-जयन्तापराजितसर्वार्थसिद्धिशिलापर्यन्तेषु देशेषु मदनश्चेत्प्रविशति तदवश्यं बन्धनीयः" इति विलिख्य श्रीकारचतुष्टयसहितं सीमापत्रं रतिहस्ते दत्तम्।

१६. ततोऽनन्तरं भूयोऽपि रतिप्रीत्यौ(ती) जिनेद्रं प्रति विज्ञापयांचक्रतुः – देव,

---

रति और प्रीतिकी जिनराजने यह प्रार्थना सुनी और कहने लगे : आप इस प्रकारसे अधिक निवेदन क्यो कर रही है? यदि यह पापात्मा देशत्याग कर दे तो मै इसे नहीं मारूँगा।

जिनराजकी बात सुनकर रति और प्रीति कहने लगीं : देव, हमें आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। लेकिन आप कुछ मर्यादाका निर्देश तो कर दीजिए। यह सुनकर जिनराज हँसकर कहने लगे : यदि यह बात है तो कामको हमारे देशकी सीमाका उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

रति-प्रीति फिरसे कहने लगीं : देव, आप कृपा कर अपने देशकी सीमा बतला दीजिए, फिर उसका उल्लंघन न होगा।

रति प्रीतिकी बात सुनकर जिनराजने दर्शनवीर आदिको बुलाकर कहा : अरे दर्शन-वीर, मदनको देशपट्ट देनेके लिए अपने देशकी सीमा बतलाते हुए उसे एक सीमा-पत्र दे दो, जिससे वह इस निर्धारित सीमाके भीतर कदापि प्रवेश न करे।

जिनराजकी आज्ञानुसार दर्शनवीरने इस प्रकारसे सीमा-पत्र लिखना प्रारम्भ कर दिया :

"शुक्र-महाशुक्र, शतार-सहस्रार, आनत-प्राणत, आरण-अच्युत, नव ग्रैवेयक, विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि तथा सिद्धशिला पर्यन्तके प्रदेशोंमें यदि मदनने प्रवेश किया तो इसे अवश्य ही मृत्यु-दण्ड दिया जायेगा।" इस प्रकार श्रीकार-चतुष्टयके साथ सीमा-पत्र लिखकर रतिके हाथमें दे दिया।

१९ इसके पश्चात् रति-प्रीतिने जिनराजसे पुनः निवेदन किया : महाराज, आप

---

१ – मधर्म त – घ०, च०। २ मर्यादावधारणं विधेयमित्यर्थ.। "मात्रं कात्स्न्र्येऽवधारणे" इत्यमर.। ३ दर्शनमाहूय ङ०। ४ 'मुख्य' क०, च० पुस्तकयोर्नास्ति। गणकमुख्यं गणधरश्रेष्ठमित्यर्थ.।

तदधुना कतिपयीं भूमिं यथाऽस्मान्नयति तथाविधसहचरो दातव्यो भवद्भिः। तच्छ्रुत्वा जिनेन्द्रः सकलात्मसुभटानामाह्वानन(ह्वान) चकार। तद्यथा

धर्माचारदमाः क्षमानयतपो[1]मुण्डाङ्कतत्त्वक्रियाः
प्रायश्चित्तमतिश्रुतावधिमनःपर्यायशीलाक्षकाः।
निर्वेगोपशमौ सुलक्षणभटा दृष्टाभिधा (?) संयमाः- ५
स्वाध्यायाभिधब्रह्मचर्यसुभटा द्वौ धर्मशुक्लाभिधौ ॥९१॥
गुप्तिर्मूलगुणा महागुणभटाः सम्यक्त्वनिर्ग्रन्थकाः
पूर्वाङ्गाभिधकेवलप्रभृतयो येऽन्येऽपि सर्वे भटाः।
तानाहूय जिनो बभाण भवतां मध्ये हि को यास्यति
[2]प्रद्युम्नं कियदन्तरं कथयत[3] प्रस्थापनार्थं पुमान्? ॥९२॥ १०

[4]तदाकर्ण्य ते सर्वे न किंचिद् ब्रुवन्तः स्थिताः, तदा जिनेन्द्रः पुनरभाषत – अहो, कस्माद्यूयं मौनेन स्थिताः? किमर्थमेतस्य(स्माद्) युष्माकं मनसि भीतिर्वर्तते? अयं तावन्मदनो मया त्यक्तदर्पः कृतोऽस्ति। तत्कथं वो भयकारणम्? अन्यच्च

विषहीनो यथा सर्पो दन्तहीनो यथा गजः।
नखैर्विरहितः सिंहः सैन्यहीनो यथा नृपः ॥९३॥ १५
शस्त्रहीनो यथा शूरो गतदंष्ट्रो यथा [5]किटिः।
नेत्रहीनो यथा व्याघ्रो [6]गुणहीनं यथा धनुः ॥९४॥
शृङ्गैर्विनेव महिषो निकण्डुरिव शूकरः।
तथाऽयमस्ति पञ्चेषुर्गतशौर्यबलायुधः ॥९५॥

(सन्दानितकम्) २०

हमें ऐसा सहचर दीजिए जो कुछ दूर तक हम लोगोंको पहुँचा आये। क्योंकि आपके वीरोंसे हमें बहुत डर लग रहा है।

यह सुनकर जिनेन्द्रने धर्म, आचार, दम, क्षमा, नय, तप, तत्त्व, कृपा, प्रायश्चित्त, मति, श्रुत, अवधि, मन.पर्यय, शील, निर्वेग, उपशम, सुलक्षण, स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य, धर्म, शुक्ल, गुप्ति, मूलगुण सम्यक्त्व, निर्ग्रन्थत्व, पूर्वांग और केवलज्ञान आदि जितने वीर थे २५ उन सबको बुलाया, और बुलाकर कहने लगे ' आप लोगोंमें इस प्रकारका कौन वीर है जो कामको कुछ दूर तक भेजनेके लिए उसके साथ जा सकता है?

जिनराजकी यह बात सुनकर जब किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया तो जिनराज फिर कहने लगे : आप लोग चुप क्यों रह गये हैं? आप कामसे क्यों डरते हैं? मैंने इसका दर्प क्षीण कर दिया है। अतः अब भयका कोई कारण नहीं है। और कामदेव इस समय तो ३० विषहीन साँपकी तरह, दाँतरहित हाथीकी तरह, नखशून्य सिंहकी तरह, सैन्यहीन राजाकी तरह, शस्त्रहीन शूरकी तरह, दन्तरहित वराहकी तरह, नेत्रहीन व्याघ्रकी तरह, गुणहीन धनुष-

१ कृपा· क०, ख०, घ०, ङ०, च०। २ प्रद्युम्न क०, घ०, च०। प्रद्युम्न काममित्यर्थं। "प्रद्युम्नो मीनकेतनः" इत्यमर। ३ कथयत क०, ख०, घ०, ङ०। जिनेन पृच्छ्यते यद्भवतां मध्ये क पुमान् कियद्दूरं कामप्रस्थापनार्थं गन्तुमुद्यतोऽस्तीत्यर्थं। ४ 'तदाकर्ण्य' इत्याद्यादारभ्य 'विषहीनो यथा सर्प' इत्यादिपद्यपर्यन्तः पाठ च० पुस्तके नास्ति। ५ किटिर्वराह.। "वराह सूकरो घृष्टि कोल पोत्री किर किटि." इत्यमर। ६ गुणो मौर्वी। "मौर्व्यां द्रव्याश्रिते सत्त्वशुक्लमध्यादिके गुण" इत्यमर.।

एवं जिनवचनमाकर्ण्य तत्र शुक्लध्यानवीरोऽवादीत् – देव, यास्याम्यहम्। ममादेशं देहि। परं किंचिद्विज्ञप्स्यामि तदवधारय। त्वं तावत्सर्वज्ञाख्योऽसि। सर्वं जानासि। तत्कथमस्य पापस्य वैरिणः सहचरो दीयते? कोऽयं हेतुः? किं न[1] मारयसि?

अथ सर्वज्ञो बभाषे – अरे शुक्लध्यानवीर, शृणु – "शरणागतमपि वैरिणं न हन्यते

५ (हन्ति)" इति राजधर्मः। यत[2] उक्तं च

"किं पाणिना परधनग्रहणोद्यतेन
किं पाणिना परवधूस्तनलम्पटेन?
किं पाणिना गलगृहीतवनीपकेन
किं पाणिना शरणमस्थितघातकेन? ॥ २० ॥"

१० अ[3]न्यच्च, यदभीष्टं तदस्माकं सिद्धम्। तदधुना किमनेन हतेन प्रयोजनम्?

२०. ततो रतिरुवाच – देव, शुक्लध्यानवीरोऽयं शुभतरां विज्ञप्तिकां करोति। एवंविधोऽयमस्मान् यदि मारयितुं शक्नोति, कोऽत्र सन्देहः? यतस्तादृशी शक्तिरस्य शुक्लध्यानवीरस्य दृश्यते। [4]उक्तं च

की तरह, शृंगशून्य भैंसेकी तरह और दाढहीन वराहकी तरह क्षीणबल हो गया है।

१५ इस प्रकार जिनराजकी बात सुनकर शुक्लध्यानवीर कहने लगा : देव, मुझे आज्ञा दीजिए। मै जानेके लिए तैयार हूँ। लेकिन एक निवेदन करना है, जिसपर आपको अवश्य ही ध्यान देना चाहिए। मेरा यह निवेदन है और आप स्वयं सर्वज्ञ होनेसे जिसे जानते भी है कि काम अत्यन्त पापात्मा और वैरी है। यह कदापि अपना स्वभाव छोडनेवाला नहीं है। इसलिए आप इसे मार क्यों नहीं डालते? सहचर भेजकर इसको प्राणदानके

२० साथ ही इसकी दूषित वृत्तियोंको प्रोत्साहन क्यों दे रहे है?

शुक्लध्यानवीरकी बात सुनकर जिनराज कहने लगे : शुक्लध्यानवीर, कामको हमें इस समय नहीं मारना चाहिए, क्योंकि यह राज-धर्म है कि कोई शरणागत वैरीको भी मृत्यु-दण्ड न दे।

नीतिकारोंने कहा है :

२५ "वह हाथ किस कामका जो दूसरेका धन छुए, परस्त्रीके स्तनका लम्पट हो, याचकोंके गलेमें धक्का देकर उन्हें बाहर करे और शरणागतका वध करे।"

फिर हमारा प्रयोजन सिद्ध हो ही चुका है। अब इसके मारनेसे क्या लाभ?

२०. रति शुक्लध्यानवीरकी बात सुन रही थी। वह जिनराजसे कहने लगी : भगवन्, शुक्लध्यानवीरका आशय हमें शुभ नहीं मालूम देता। कौन जाने, कदाचित् वह हम लोगोंको रास्तेमें ही समाप्त कर दे। शुक्लध्यानवीरकी वीरता भी ऐसी ही है। कहा

३० भी है :

---

१. मारयति च०। २. पद्यमिदं क०, घ०, च० पुस्तकेषु नास्ति। ३. 'अन्यच्च' च० पुस्तके नास्ति। ४. पञ्च० मि० भे० ४५।

"आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च।
नेत्रवक्त्रविकारेण लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ २१ ॥"

तदाकर्ण्य जिनेन्द्रो विहस्य प्राह – हे रते, मा भैषीः। न भविष्यत्येवम्। किमयं शुक्लध्यानवीरो मम वचनमुल्लङ्घ्य युष्मान् हनिष्यति? एवमुक्त्वा रतिप्रीतिभ्यां सह शुक्लध्यानवीरं प्रस्थापयामास। ५

ततोऽनन्तरं मदनसकाशमागत्य रतिप्रीतिभ्यां वचनमेतदभिहितम् – भो नाथ, भवदर्थं[1] नानाविज्ञापनवचनैरावाभ्यां जिननाथो विज्ञप्तः। अन्यच्च – देव, तव मरणमवश्यं प्राप्तमप्यावयोः कृपावचनरचनया न प्राप्तम्। तदधुना जिनेन दर्शनवीरसकाशाद् विलिख्य स्वदेशसीमापत्रं दत्तम्। एतद् गृहाण। अतो जिनदेशसीमा विहाय युष्माभिरन्यत्र सुखेन स्थातव्यम्। दैवेन विपरीतेन किं कर्तुं शक्यते? अन्यच्च, कतिपयभूमिपर्यन्तं शुक्लध्यानवीरः सहचरः प्रहितोऽस्ति। तदधुना किं[2] न गम्यते? १०

एवं वचनमात्रश्रवणात्पञ्चेषुणा निजमनसि चिन्तितम् – अहो, इदानीं किं कर्त्तव्यम्? शुक्लध्यानवीरः[3] सहचरः शुभकरोऽस्माकं न भवति। यतोऽनेन शुक्लध्यानवीरेण

"आकार, इंगित, गति, चेष्टा और भाषणसे, नेत्र और मुखके विकारोंसे मनके भीतरकी बात पहचानी जा सकती है।" १५

रतिकी बात सुनकर जिनराज हँस पडे और कहने लगे : हे रति, तुम डरो मत। यह कभी न होगा। यह सम्भव नहीं है कि शुक्लध्यानवीर हमारी बात न माने और तुम लोगोंको मार डाले। इस प्रकार कहकर जिनराजने शुक्लध्यानवीरको रति और प्रीतिके साथ भेज दिया।

तदुपरान्त रति और प्रीति वहाँसे चलकर कामके पास आयीं और कामसे कहने लगीं : नाथ, आपकी प्राणरक्षाके लिए हम लोगोंने जिनराजसे अनेक प्रकारकी अनुनय-विनय की और यदि हम लोगोंने उनकी इस प्रकारसे स्तुति-प्रार्थना न की होती तो आपकी प्राणरक्षा असम्भव थी। इस समय जिनराजने दर्शनवीरसे लिखवाकर एक स्वदेश-सीमापत्र दिया है, जिसे आप पढ लीजिए। अतः हम लोग जिनराजके देशकी सीमा छोडकर अन्यत्रके लिए चल दें और वहाँ शान्तिके साथ जीवन-यापन करें। इस समय दैव प्रतिकूल है। और पता नहीं, उसके मनमें क्या समाया हुआ है? इसके अतिरिक्त जिनराजने हम लोगोंको कुछ दूर तक भिजवानेके लिए शुक्लध्यानवीरको साथमें भेजा है। इसलिए अब हमें यहाँसे चल ही देना चाहिए। २० २५

रति और प्रीतिकी बात सुनकर काम अपने मनमें सोचने लगा : कि अब क्या करना चाहिए? शुक्लध्यान हमारा सहचर बनाया गया है, जो हमारे हकमें कदापि शुभ- ३०

---

१ कृतव – च०। मार्मिकप्रार्थनयेत्यर्थः। २ कि ग – च०। ३ वीर शु – क०, घ०, च०।

दृष्टोऽहं चेत् तदवश्यं प्रहरिष्यति। तत्कोऽस्य शुक्लध्यानवीरस्य विश्वासः? उक्तं[2] च

"न बद्धयन्ते ह्यविश्वस्था (स्ता) दुर्बला बलवत्तरै।
विश्वस्था (स्ता) श्चाशु बद्धयन्ते बलवन्तोऽपि दुर्बलै॥ २२॥"

एवं चिन्तयित्वा [3]सप्ताङ्गानि परित्यज्यानङ्गो भूत्वा निर्गतो[5] युवतीजनगिरिकपाटं
५ [4]निविष्टः। अथ तस्मिन्नवसरे शचीपतिना ब्रह्माणं प्रत्युक्तम्– ब्रह्मन्, पश्य पश्य मदने-
[6]नातिहारितम्।

*इति श्रीठक्कुरमाइन्ददेवस्तुतजिन (नाग) देवविरचिते सुसंस्कृतबन्धे स्मरपरा-
जयेऽनङ्गभङ्गो नाम चतुर्थः परिच्छेदः॥ ४॥*

कर न होगा। यदि मै शुक्लध्यानवीरकी दृष्टिमें आ गया तो यह अवश्य ही हमारे ऊपर
१० प्रहार करनेसे न चूकेगा। इसलिए इस शुक्लध्यानवीरका क्या विश्वास किया जाये?
कहा भी है:

"बलवान् भी अविश्वस्त दुर्बलोंको नहीं बाँध सकते, और विश्वस्त होकर बलवान् भी
दुर्बलोंके द्वारा सरलतासे बाँध लिये जाते है।"

कामने इस प्रकार सोच-विचार करनेके उपरान्त अपना शरीर सर्वथा ध्वस्त कर दिया
१५ और अनग होकर युवतियोंकी हृदय-कन्दरामें प्रवेश कर गया।

इस अवसरपर इन्द्र ब्रह्मासे कहने लगे: देव, देखिए, देखिए, कामदेव अनङ्ग होकर
अदृश्य हो गया है।

*इस प्रकार ठक्कुर माइन्ददेवके द्वारा प्रशंसित जिन(नाग)देवरचित
सस्कृतबद्ध मदनपराजयमें अनंग-भंग नामक
२० चतुर्थ परिच्छेद पूर्ण हुआ।*

---

१ अत्र 'अयम्' इत्यध्याहार्यम्। २ पञ्च० मि० भे० १२३। ३. जानुपादहस्तवक्ष.शिरोवचनदृष्टि-रूपाणि सप्ताङ्गानि। ४ विवेष्ट क०, घ०, ङ०, च०। ५. देव प–क०, ङ०, च०। ६ मदन पराजितो जात इति। वस्तुतस्त्वयमेव कार्यस्य फलयोग।

१ तं मन्मथं विजयपौरुषदर्पहीनं योषिज्जनाङ्गलविलासगुहं [1]प्रविष्टाम् ।
[2]दृष्ट्वातिहृष्टमनसा त्रिदशाधिपेन प्राहूय तत्र च दया वच एतदुक्तम् ॥ १ ॥
दये, त्वया मोक्षपुरं हि गत्वा श्रीसिद्धसेनं प्रति वाच्यमेवम् ।
विवाहकार्याय सुतां स्वकीयां शीघ्रं गृहीत्वा गमनं प्रकार्यम् ॥ २ ॥ ५
श्रुत्वा वचस्तत्र दया [3]डुढौके प्राप्यान्तिकं मोक्षपुराधिपस्य ।
ता संमुखं वीक्ष्य दयामथासावेवं वचः प्राह च सिद्धसेनः ॥ ३ ॥
का त्वं दयाऽहं किमिहागतासि प्रस्थापिता भो त्रिदशाधिपेन ।
कार्याय कस्मै च ततस्तयाद्य [4]वृत्तान्तमु (उ)क्तं(क्तः) स पुनर्बभाद ॥ ४ ॥
कोऽसौ [5]वरो मे तनयासमानो गोत्रं कुलं कीदृशमस्ति रूपम् ? १०
कायोच्छ्रयस्तस्य कतिप्रमाणस्तस्यैवमाकर्ण्य वचोऽब्रवीत् सा ॥ ५ ॥

---

१. जब इन्द्रने देखा कि कामदेव विजय, पौरुष और गर्वसे हीन होकर युवतियोंकी हृदय-कन्दरामें प्रवेश कर गया है तो वह बहुत प्रसन्न हुआ । उसने तुरन्त ही दयाको अपने पास बुलवाया और उससे इस प्रकार बात करने लगा :

दये, तुम मोक्षपुर जाओ । वहाँ पहुँचकर सिद्धसेनसे कहना कि वह विवाहके लिए १५ अपनी कन्या लेकर शीघ्र आयें ।

इन्द्रका वचन सुनकर दयाने प्रस्थान कर दिया । वह मोक्षपुरके अधिपति सिद्धसेनके सामने पहुँच गयी । सिद्धसेनने सामने आते ही उससे पूछा : तुम कौन हो ?

दयाने कहा : मै दया हूँ ।

सिद्धसेन : तुम यहाँ किसलिए आयी हो ? २०

दया : मुझे यहाँ इन्द्रने भेजा है ।

सिद्धसेन : इन्द्रने तुम्हें यहाँ किस कार्यसे भेजा है ?

दयाने उत्तरमें इन्द्रके द्वारा कहा हुआ समस्त वृत्तान्त सिद्धसेनको सुना दिया ।

तदनन्तर सिद्धसेन कहने लगे . यह प्रस्तावित वर कौन-सा वीर है ? क्या मेरी कन्या-जैसी योग्यता उसमें है ? उसका गोत्र, कुल और रूप कैसा है ? उसके शरीरकी ऊँचाई २५ कितनी है ?

सिद्धसेनकी प्रश्नावली सुनकर दया कहने लगी : प्रभो, आप वरके रूप, नाम, गोत्र-के सम्बन्धमे क्यों पूछ रहे है ?

---

१. प्रविष्टा घ०, च० । २ दृष्ट्वेति हृ – क०, घ०, ङ०, च० । ३ गत्यर्थकाड्ढौकृधातोर्लिटि रूपम् । जगामेत्यर्थ । ४ वृत्तान्तस्य नपुंसकत्व चिन्त्यमत्र । ५ वीरो मे–ग०, च० ।

रूपनामगुणगोत्रलक्षणाऽऽपृच्छया किमिति कारणं प्रभो ?
सोऽब्रवीच्छृणु दयेऽधुना हि तत्कारणं सकलमत्र कथ्यते ॥६॥
रूपवान् विमलवंशसंभवो देवशास्त्रगुरुभक्तिमान् सदा ।
[1]सज्जनोपकृतिकारको युवा संयुतः[2] शुभसमस्तलक्षणैः ॥७॥
५ शीलवान् धनयुतो हि सद्गुणी शान्तिमूर्तिरपि सोद्यमो भवेत् ।
यो हि तस्य तनुजा प्रदीयते सा दया तत इदं वचोऽवदत् ॥८॥
श्रीनाभिपुत्रो वृषभेश्वराख्यस्तस्य प्रभो तीर्थकरं च गोत्रम् ।
रूपेण रम्योऽद्भुतहा[3]टकाभो विशालवक्षःस्थलभासमानः ॥९॥
सर्वप्रियोऽष्टाग्रसहस्रसंख्यकैः सल्लक्षणैर्युक्तवपुः[4] शृणु प्रभो ।
१० योऽशीतिलक्षैश्च[5] चतुर्भिरुत्तरैर्गुणैर्युतः शाश्वतसम्पदान्वितः ॥१०॥
आकर्णदीर्घोत्पललोचनोऽसौ यो जानुविश्रान्तसुबाहुदण्डः ।
किं स्तौम्यहं तस्य वरस्य रूपं यस्योच्छ्रयश्चापशतानि पञ्च ॥११॥
आकर्ण्य सर्वं वरवर्णनं तद्धत्वा ततो हृष्टमनाऽब्रवीत् (उवाच) सः ।
दयेऽधुनाऽलं पुनरेव गत्वा[6] त्वया प्रतीन्द्रं कथनीयमेवम् ॥१२॥

---

१५ दयाके प्रश्नके उत्तरमें सिद्धसेन कहने लगे : दया, सुनो, मैं तुम्हें इस सम्पूर्ण प्रश्नावलीके पूछनेका हेतु बतलाता हूँ । वह कहने लगे :

दया, जो वर रूपवान्, कुलीन, देव-शास्त्र और गुरुओंमें भक्तिमान्, प्रकृतिसे सज्जन, शुभ-लक्षण-सम्पन्न, सुशील, धनी, गुणी, सौम्य-मूर्ति और उद्यमी होता है उसीको कन्या देनी चाहिए । यदि किसी वरमें ये विशेषताएँ न हों तो उसे कन्यादानका पात्र नहीं २० समझना चाहिए । सिद्धसेन कहने लगे : दया, मैंने इसी कारणसे यह वर-प्रश्नावली तुमसे पूछी है ।

सिद्धसेनकी बात सुनकर दया कहने लगी : सिद्धसेन, तब आप अपनी प्रश्नावलीका उत्तर सुन लीजिए :

श्रीनाभिनरेशके पुत्र श्रीवृषभ तो वर हैं । तीर्थंकरत्व उनका गोत्र है । रूपसे सुवर्ण-२५ सुन्दर हैं । उनका वक्षःस्थल विशाल है । वे सबके प्रिय हैं और १००८ शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न उनका शरीर है । वे चौरासी लाख उत्तर गुणोंसे सम्पन्न और शाश्वत सम्पत्तिसे संयुक्त हैं । आकर्णदीर्घ और कमलके समान उनके नेत्र हैं । एक योजनकी लम्बी भुजाएँ हैं । मैं उस वरके सौन्दर्यका कहाँतक वर्णन करूँ जिसकी ऊँचाई पाँच सौ धनुष-प्रमाण है ।

३० दया-द्वारा बतलायी गयी वर महोदयकी समस्त गुण-गाथा सुनकर सिद्धसेनको बड़ी प्रसन्नता हुई । वह दयासे कहने लगे : दया, अच्छी बात है । तुम इन्द्रके पास जाओ

---

१ सज्जनप्रकृ–क०, घ०, ङ०, च० । २ संस्तुप. शु–ख० । ३ हाटकं सुवर्णम् । "सुवर्णं हिरण्य भर्म जातरूप च हाटकम् ।" इति धनंजय । ४ –सल्लक्षकै स–ङ० । ५ लक्षैश्चतु–ख०, च० । ६. त्वं पु-च० ।

प्रस्थापयामः स्वसुतां भवद्भिः स्वयंवरार्थं रचनाऽऽशु[1] कार्या ।
आनीयते कर्मधनुर्विशालं यत्कालभूपालकमन्दिरस्थम् ॥१३॥
श्रुत्वा समस्तं तदतीव हृष्टा शीघ्रं च मोक्षादथ निर्गता सा ।
संप्राप्य शक्रं प्रति तत् समस्तं दया हि वृत्तान्तमचीकथत् सा ॥१४॥

सकलमिति च[2] श्रुत्वा क्षिप्रमाहूय पक्ष्ं ५
धनदमथ सुरेशस्तं प्रतीद वभाषे ।
सकलसुरनराणा मानसाह्लादकारं
समवशरणसंज्ञं मण्डपं हे(त्व)कुरुष्व[3] ॥१५॥

श्रुत्वेदमिन्द्रवचनं धनदः स तस्मिन्
सोपानविंशतिसहस्रविराजमानम् । १०
भृङ्गारतालकलशध्वजचामरौघ-
श्वेतातपत्रवरदर्पणसंयुतं च ॥१६॥
स्तम्भप्रतोलिनिधिमार्गतटाकवल्ली-
प्रोद्यानधूपघ[4]टहाटकवेदिकाभिः[5] ।
विभ्राजितं विमलमौक्तिकभासमानं १५
द्वारैः सुतोरणयुतैः सहितं चतुर्भिः ॥१७॥
प्रासादचैत्यनिलयामरवृक्षनाट्य-
शालादिकोष्ठकसुगोपुरसंयुतं च ।
एवंविधं ह्यनुपमं किल मण्डपं च
चक्रे हि षड्द्विगुणयोजनविस्तरं[6] तम् ॥१८॥ (सन्दानितकम्) २०

और कहो कि सिद्धसेन अपनी कन्याको ला रहे है, तबतक तुम स्वयवरकी तैयारी करो। यह भी कहना कि वे अपने साथ यमराजके मन्दिरमें रखा हुआ अपना विशाल कर्मधनुष भी साथमें लायेंगे।

सिद्धसेनकी बात सुनकर दयाको बडी प्रसन्नता हुई। वह शीघ्र ही मोक्षपुरसे चल पडी और इन्द्रके पास पहुँचकर समस्त वृत्तान्त सुना दिया। २५

इन्द्रने जैसे ही दया-द्वारा बतलाया गया समस्त समाचार सुना, कुबेरको बुलाकर वे उसे तत्काल इस प्रकारका आदेश देने लगे :

कुबेर, तुम तुरन्त एक समवशरण नामक मण्डप तैयार करो, जिसे देखकर समस्त देव और मानवोंका मन आह्लादित हो जाये।

इन्द्रके आज्ञानुसार कुबेरने समवशरण मण्डपकी रचना की, जिसमें २०००० सीढियाँ ३० थीं और जो भृगार, ताल, कलश, ध्वजा, चामर, श्वेत छत्र, दर्पण, स्तम्भ, गोपुर, निधि, मार्ग, तालाब, लता, उद्यान, धूपघट, सुवर्ण, निर्मल मुक्ता फलसे सुशोभित और चार सुन्दर तोरण द्वारोंसे अभिराम था। इसके अतिरिक्त भवन, चैत्यालय, कल्पवृक्ष, नाट्यशाला,

---

१ —न्तु का–क०, घ०, च०। २ चकारस्य सयुक्ताद्यक्षरस्य दीर्घत्वाच्छन्दोभङ्गोऽत्र। ३. कुरुष्वम्। च०। ४ घटसयुतहाटकाभि घ०, च०। ५ भित्तिकाभि. क०। ६ "विस्तर पुसि विस्तारे प्रपञ्चे प्रणयेऽपि च" इति विश्व.।

[1]तस्मिन्नतोऽमरपतिप्रमुखाः समस्ता
विद्याधरामरनरोरगकिन्नराद्याः ।
गन्धर्वदिक्पतिफणीश्वरचक्रवर्त्ति-
यक्षादयोऽपि सकलाश्च समागतास्ते ॥१९॥

अथास्रवैः [2]पञ्चभिभराशु तस्मिन्
यत्कालभूपालककोशसंस्थम् [3] ।
कापोतनीलासितदुष्टलेश्या -
वर्णैरशेषैस्तु सुचित्रितं यत् ॥२०॥

मध्ये [4]समोहायतसूत्रबद्धं त्वाशागुणेन प्रतिभासमानम् ।
आनीय सर्वामरसंमुखं तैः संस्थापितं तद् दृढकर्मचापम् ॥२१॥ (युग्मम्)

प्रवर्त्तते तत्र च यावदेवं यावत्ततो या रमणीयरूपा ।
सदा हि शुद्धस्फटिकाभदेहा [5]रत्नत्रयालंकृतरम्यकण्ठी ॥२२॥
पूर्णेन्दुविम्वप्रतिमानना या नीलोत्पलस्पर्द्धिविशालनेत्रा ।
हस्ते गृहीतामलतत्त्वमाला सैवं प्रपन्ना वरमुक्तिलक्ष्मीः ॥२३॥ (युग्मम्)

तद्वीक्ष्य सर्वं त्रिदशाधिराजस्ततोऽब्रवीत् तान् सकलान् प्रतीदम् ।
यत्सिद्धसेनेन पुरोदितं तद् यूयं समस्ताः शृणुतात्र सर्वम् ॥२४॥

द्वादश सभाओं और गोपुरोंसे रमणीय सभामण्डप बारह योजनके विस्तारमें तैयार कर दिया गया ।

इस समवशरणमें इन्द्र आदिक समस्त देव, विद्याधर, मनुष्य, उरग, किन्नर, गन्धर्व, दिक्पति, फणीन्द्र, चक्रवर्ती और यक्ष आदिक सब आकर उपस्थित हो गये ।

इसके पश्चात् आस्रवोंने कर्मधनुषको – जो यमराजके भवनमें रखा हुआ था, कृष्ण, नील, कापोत-दुष्ट लेश्यामय वर्णोंसे चित्रित था, बीचमें मोहरूपी ताँतसे बँधा था और आशारूप डोरीसे अलंकृत था – लाकर समस्त देवताओंके सामने रख दिया ।

आस्रवोंने कर्मधनुषको लाकर रखा ही था कि इतनेमें रमणीय रूपवती, शुद्ध-स्फटिक शरीर-वाली, रत्नत्रयीरूप रेखाओंसे अलंकृत कण्ठवाली, पूर्ण चन्द्रमुखी, नील कमलके समान सुन्दर नेत्रवाली मुक्तिलक्ष्मी भी हाथमें तत्त्वरूपी वरमाला लेकर उपस्थित हो गयी ।

सबको उपस्थित देखकर इन्द्र कहने लगा : वीरो, आप सिद्धसेन महाराजका सन्देश सुन लीजिए ।

उनका सन्देश है कि जो इस विशाल कर्मधनुषको खींचकर उसका भंग करेगा वही मुक्तिकन्याका वर समझा जायेगा ।

---

१ तस्मिन् समवशरणे । २ मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगरूपैः पञ्चभिरास्रवैः । ३ कोशो भाण्डारम् । "कोशोऽस्त्री कुड्मले पात्रे दिव्ये खड्गपिधानके । जातिकोपेऽर्थसघाते पेश्या शब्दादिसंग्रहे ॥" इति मेदिनी । ४ सुमोहपगुसू–क०, च० । समोह पगुसू–घ० । ५ त्रिरत्नरेखाकृतर– च० ।

य कर्मकोदण्डमिदं विशालं [1]ह्याकर्पते मुक्तिपतिः स च स्यात्।
श्रुत्वा तदेवं न च किंचिदूचुः परस्परं वीक्ष्य मुखं यदा ते ॥२५॥
तदा जिनेन्द्रोऽतिमनोहरो यो लोकेश्वरः सन्ततशान्तमूर्त्तिः।
ज्ञानात्मको ज्ञातसमस्ततत्त्वो दिगम्बरः पुण्यकलेवरो[2] यः ॥ २६ ॥
भवार्णवोत्तीर्ण [3]उदारसत्त्वो [4]दशार्द्धकल्याणविभूतियुक्तः।
आताम्रनेत्रो वरपद्मपाणी रजोमलस्वेदविमुक्तगात्रः ॥ २७ ॥
तपोनिधिः क्षान्तिदयोपपन्नः समाधिनिष्ठस्त्वथ निष्प्रपञ्चः।
छत्रत्रयेणातिसितेन रम्यो भामण्डलेन प्रतिभासमान ॥ २८ ॥
यो देवदेवो मुनिवृन्दवन्द्यो वेदेषु शास्त्रेषु य एव गीत।
निरञ्जन सद्गतिरव्ययोय सिंहासनादुत्थित की(ई)दृशोऽसौ ॥२९॥(कलापकम्) १०
आगत्य चापाभिमुखो हि भूत्वा हस्ते गृहीत्वा परमेश्वरेण।
[5]आकर्णसज्जीकृतमाशु यावत्तावन्महानादयुतं च भग्नम्॥ ३० ॥
तद्भङ्गनादोच्चलिता च पृथ्वी प्रकम्पिताः सागरपर्वताद्या।
[6]स्वर्गस्थिता पद्मभवादिदेवा[7] मूर्च्छां प्रपन्ना पतिताश्च सर्वे॥ ३१ ॥
ततस्तया वीक्ष्य समस्तमेव मुक्तिश्रियाऽऽनन्दसमेतया तत्। १५
क्षिप्ताशु कण्ठे वरतत्त्वमाला श्रीनाभिसूनोर्वृषभेश्वरस्य ॥ ३२ ॥
प्राप्तास्ततो मङ्गलयोषितश्च चतुर्णिकायास्त्रिदशा समस्ता।
अन्येऽप्यसंख्या मिलिताश्च तस्मिन् जना जिनेन्द्रोत्सववीक्षणार्थम्॥ ३३ ॥

इन्द्रकी घोषणा सभीने सुनी, परन्तु उसे सुनकर सब एक-दूसरेका मुँह देखने लगे। कोई भी धनुष तोड़नेके लिए तैयार नहीं हुआ। २०

इतनेमें अत्यन्त मनोहर, शान्तमूर्ति, सर्वज्ञ, समस्त तत्त्वोंके साक्षात् कर्ता, दिगम्बर, पुण्यमूर्ति, ससारके उद्धारक, अनन्त शक्तिशाली पाँच कल्याणकोंसे अलकृत, आताम्रनेत्र, कमलपाणि, पाप-मल और स्वेद आदिसे रहित, तपोनिधि, क्षमाशील, संयमी, दयालु, समाधिनिष्ठ, तीन छत्र और भामण्डलसे सुशोभित, देव-देव, मुनिवृन्दके द्वारा वन्दनीय, वेद-शास्त्रों-द्वारा उपगीत और निरजन जिनराज सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये। वह २५ धनुषके सामने आये और उसे हाथमें ले लिया। उन्होंने जैसे ही उसे कान तक खींचा, वह टूट गया और उसके टूटनेसे एक महान् भयंकर शब्द हुआ।

कर्म-धनुषके भग होनेपर जो नाद हुआ, उससे पृथ्वी चलित हो गयी। सागर और गिरि कँप गये तथा ब्रह्मा आदि समस्त देव मूर्च्छित होकर गिर गये।

ज्यों ही मुक्ति-श्रीने यह दृश्य देखा, उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने तत्काल ३० नाभिनरेशके सुपुत्र श्री वृषभनाथके कण्ठमें तत्त्वमय वर-माला डाल दी।

वरमालाके डालते ही देवागनाएँ मंगल-गान गाने लगीं और इस महोत्सवको देखनेके

---

१ अमाधुरेवाय प्रयोग.। २ पवित्रगात्र। "कलेवर शरीर च" इति धनजयः। ३ –मुदारस–च०, ड०। ४ गर्भजन्मतप केवलनिर्वाणभेदात् पञ्च कल्याणानि। ५ आकर्ण्यसज्ज कृ–क०, च०। आकर्ण्यसज्जी–घ०। ६ सर्वस्थि–च०। ७ ब्रह्मादिदेवा।

तद्यथा

मृगपतिमहिषोष्ट्राऽष्टापदद्वीपिरिश्य[1]-
वृषमकरवराहव्याघ्रकारण्डवाश्च[2]।
द्विपबककलहंसाश्चक्रवाकाश्च शृङ्गि-
द्विजपतिगवयाश्वाः कुक्कुटाः सारसाश्च ॥ ३४ ॥

इत्यादिवाहनविमानसमाधिरूढा
ये षोडशाभरणभूषितदिव्यदेहाः।
आन्दोलितध्वजपटप्रचुरातपत्रा
नानाकिरीटमणिभाप्रहतार्कभा[3][4] ये ॥ ३५ ॥

दिव्यायुधस्वपरिवारवधूसमेता[5]
उच्चैःकृतस्तुतिमनोहरनृत्यगीताः।
भेरीमृदङ्गपटहाम्बुजकाहलादि-
घण्टास्वनैर्बधिरिताम्बरमण्डला ये ॥ ३६ ॥

अन्योन्यवाहनविमानकराङ्घ्रिदेह-
संघर्षणत्रुटितमौक्तिकरत्नमालाः[6]।
एवंविधा मुकुलिताऽमलपाणिपद्माः[7]
खादागता[8] जय जयेति रवं ब्रुवन्तः ॥ ३७ ॥ (मन्दाक्रान्तकम्)

लिए समस्त चतुर्निकायके देव आकर उपस्थित हो गये। इन देवोंमें कोई सिंहके वाहनपर सवार थे तो कोई महिषके। कोई ऊँटके वाहनपर अधिरूढ थे, तो कोई चीतेके। कोई बैलके वाहनपर बैठे हुए थे, तो कोई मकरके। किन्हींका वाहन वराह था तो किन्हींका व्याघ्र। किन्हींका गरुड़ था तो किन्हींका हाथी। किन्हींका बगुला था तो किन्हींका हंस। किन्हींका चक्रवाक था तो किन्हींका गैंडा। किन्हींका गरुड था तो किन्हींका गवय। किन्हींका अश्व था तो किन्हींका सारस। इस प्रकार समस्त देव अपने-अपने वाहनोंपर बैठे हुए थे। इसके अतिरिक्त उनके शरीर सोलह प्रकारके आभूषणोंसे आभूषित थे, उनके विमानोंकी ध्वजाएँ और वस्त्र वायु-विकम्पित हो रहे थे और उनके किरीटोंकी कान्ति अनेक प्रकारके देदीप्यमान मणि और सूर्यके प्रकाशको भी अभिभूत कर रही थी।

ये देव सपरिवार थे और दिव्य आयुधोंसे अलंकृत थे। कोई उच्च स्वरसे मधुर स्तुति-पाठ कर रहे थे तो कोई मनोहारी नृत्य और सगीतमें तन्मय थे। और कोई भेरी, मृदंग, नगाड़े और घण्टा आदि बजाकर आकाशको गुंजित कर रहे थे।

---

१ रिश्यो हरिणः। "एण. कुरङ्गमो रिश्य" इति पुरुषोत्तम। २ कारण्डवः पक्षिविशेष.। "तेषा विशेषा हारीता मद्गु कारण्डव' प्लव।" इत्यमर'। ३ –भाप्रहरा–च०। ४ –र्कभासः क०। ५ –युध स– घ०। ६. सकर्षणत्रु–क०, घ०, च०। ७ –लपद्मपाणिखा–क०, घ०, च०। ८ खादाकाशात्। पादाग– क०, घ०, च०।

तथा च

श्रीह्रीकीर्त्तिसमस्तसिद्धिसमतानिःस्वेदतानिर्जरा
वृद्धिर्बुद्धिरशल्यता सुविभवा बोधि समाधि प्रभा।
शान्तिर्निर्मलता प्रणीतिरजिता निर्मोहता भावना
तुष्टि पुष्टिरमूढदृष्टिसुकला स्वात्मोपलब्ध्यादय ॥ ३८ ॥ ५

नि शङ्काकान्तिमेधाविरतिमतिधृतिक्षान्तिर्वाचाऽनुकम्पा
इत्याद्या पुण्यरामा ललितभुजलता इन्दुतुल्यानना या।
नानाहारैर्विचित्रैर्विविधमणिमयै रम्यवक्षःस्थला याः
समापुस्तत्र शीघ्रं जिनवरयात्रामङ्गलं गायनार्थम् ॥ ३९ ॥ (युग्मम्)

ततो हि मुक्तया सहितो जिनेन्द्रो मनोरथेभं च स आरुरोह। १०
कृतामरौघैर्वरपुष्पवृष्टिश्चक्रे सुनृत्यं पुरतोऽमरेन्द्रः ॥ ४० ॥
कुर्वन्ति शेषाभरण दयाद्या वागीश्वरी गायनि मङ्गलं च।
प्रणादिताः शङ्खमृदङ्गभेर्य सत्काहलाद्याः पटहा सुरौघैः ॥ ४१ ॥

तथा च

अनन्तकेवलज्ञानदीपिकाना हि तेजसा। १५
विभात्यनुपमा लोके वरयात्रा जिनप्रभोः ॥ ४२ ॥

इन देवोंके अतिरिक्त श्री, ह्री, कीर्त्ति, सिद्धि, निस्वेदता, निर्जरा, वृद्धि, बुद्धि, अशल्यता, सुविभवा, बोधि, समाधि, प्रभा, शान्ति, निर्मलता, प्रणीति, अजिता, निर्मोहिता, भावना, तुष्टि, पुष्टि, अमूढदृष्टि, सुकला, स्वात्मोपलब्धि, नि शंका, कान्ति, मेधा, विरति, मति, धृति, क्षान्ति, अनुकम्पा इत्यादि देवियाँ भी – जो सुन्दर भुज-लताओं और चन्द्र-तुल्य २० मुखोसे अलकृत थीं, विचित्र और विविध मणिमय हारोंसे जिनके वक्ष.स्थल सुशोभित थे – जिनराजके विवाहमें मगल-गीत गानेके लिए आ पहुँचीं।

तदनन्तर भगवान् जिनेन्द्र मुक्ति-श्रीके साथ मनोरथरूपी हाथीपर आरूढ हो गये। उस समय देवताओंने पुष्पवृष्टि की और इन्द्रने उनके सामने नृत्य किया। दया आदि देवियोंने भगवान्को दिव्य आभरण पहनाये और वागीश्वरी मगल-गान गाने लगी। शेष २५ देवोंने शख, मृदग, भेरी और नगाड़े बजाये।

इस अवसरपर अनन्त केवलज्ञानरूपी दीपकोंके तेजसे जिनराजकी वरयात्रा अत्यन्त अनुपम मालूम हो रही थी।

---

१ महिता नि क०, ख०, इ०, च०। २ सुविजया बो–ख०। ३ वातानु–च०। ४ मत्याद्या पु–ख०। ५ चिन्त्योऽयत्यश्छन्दोभङ्ग। ६ 'जिनवरयात्रामङ्गल गायनार्थम्' अनन्वित प्रतिभाति पदद्वयमिदम्। ७ सनृत्य पु–ख०।

२ एवंविधो य परमेश्वरोऽसौ[1] चतुर्णिकायाऽमरवन्द्यमान ।
पुण्याङ्गनागानसुगीयमानो भामण्डलेन प्रतिभासमान. ॥ ४३ ॥
सस्तूयमानो मुनिमानवौघैर्यक्षैश्च यश्चामरवीज्यमानः ।
छत्रत्रयेणाऽतिसितेन रम्यो मोक्षस्य मार्गेण जगाम यावत् ॥४४॥

५ तथा[2] च

तावच्च[3] तत्रावसरेऽब्रवीदिदं सुसंयमश्रीश्च तपःश्रियं प्रति ।
किं त्वं न जानासि महोत्सवान्वितो निष्पन्नकार्यश्च जिनस्त्वभूदयम् ॥४५॥
आगत्य चारित्रपुरं स[4] भूयो विध्वसते चेत्त(चे)त्कथमप्यनङ्ग ।
तस्माच्च विज्ञापय वीतरागं स्थातव्यमस्माभिरिहैव यस्मात् ॥४६॥

(कलापकम्)

१० आकर्ण्य तस्या सकलं वचस्तत. प्राह[5] त्वया हे सखि युक्तमीरितम्[6] ।
उक्तार्थ[7] सैवं कृतपाणिसंपुटा प्रोचे तप श्रीः पुरतो जिनेश्वरम् ॥४७॥
भो पुण्यमूर्त्ते त्रिजगत्सुकीर्त्ते हे चारुचामीकरतुल्यकान्ते ।
भो द्वेषरागाद्युभयोपशान्ते[8] विज्ञाप्यमेकं त्ववधारणीयम् ॥४८॥

---

२ इस प्रकार चतुर्निकायके देवो-द्वारा वन्दित, सुरागनाओंके पवित्र और श्रुति-
१५ मधुर गीतों-द्वारा गान किये गये, भामण्डलसे प्रतिभासित, मुनि-मानव और यक्षोके द्वारा स्तुति किये गये और चामरोंसे वीजित तथा तीन छत्रोंसे सुशोभित जिनेन्द्र जैसे ही मोक्षके मार्गसे जानेके लिए उद्यत हुए, सयमश्री अपनी प्रियसखी तप.श्रीसे इस प्रकार कहने लगी :

सखि तप श्री, क्या तुम्हे मालूम नहीं है, भगवान् जिनेन्द्र विविध महोत्सवोसे भूषित और कृतकृत्य होकर मोक्षमार्गकी ओर प्रस्थान कर रहे है ? यदि भगवान् मोक्ष चले गये
२० तो कामदेव सबल होकर चारित्रपुरपर आक्रमण करके पुन: हम लोगोंको कष्ट पहुँचा सकता है । इसलिए हमें भगवान्के पास चलकर उनसे यह निवेदन करना चाहिए कि वे मोक्ष जानेके पहले हम लोगोकी सुरक्षाका कोई स्थिर प्रवन्ध करते जायें ।

संयमश्रीकी बात सुनकर तप·श्री कहने लगी : सखि, तुम्हारा कथन बिलकुल यथार्थ है । चलो, हम लोग भगवान् जिनराजके पास चलकर उन्हें अपनी प्रार्थना सुनायें ।

२५ इस प्रकार निश्चय करके ये दोनों सखियाँ भगवान् जिनेन्द्रकी सेवामें पहुँचीं और हाथ जोड़कर इस प्रकार विनय करने लगीं :

हे पुण्यमूर्ति, त्रिभुवनके यशस्वी, सुन्दर सुवर्ण-वर्ण, वीतराग भगवान्, हमें आपकी सेवामें एक विनय करनी है । वह यह है कि आप तो कृतकृत्य होकर मोक्ष जा रहे हैं,

---

१ भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्ककल्पवासिभेदाद् देवाश्चतुर्णिकायाः । २ 'तथा च' ख०, च० पुस्तकयोर्नास्ति । ३ तावत् द–ख०, ह० । ४ स कामदेव इत्यर्थ । ५ तप श्री संयमश्रियं सखी प्रत्याह । ६ ईरित चिन्तितमित्यर्थ । ७. उक्तार्थसै–घ०, च० । ८ रागद्वेषाद्यु–च० ।

भूयोऽपि चारित्रपुरे[1]स्मरश्चेद्विध्वसते तज्जिन किं प्रकार्यम् ?
यतो हि यूयं कृतसर्वकार्याः क पालयिष्यत्यधुना नरोऽस्मान् ॥४९॥
(युग्मम्)

अथ[2] हि जिनवरेणाकर्ण्य तत्सर्वमेव
सकलश्रुतसमुद्रं सज्जनानन्दचन्द्रम् ।
मदनगजमृगेन्द्रं दोषदैत्यामरेन्द्रं
सकलमुनिजिनेशं कर्मविध्वसरौद्रम् ॥५०॥
हतकुगतिनिवासं च[3] दयाश्रीविलास
भवकलुषविनाशमर्थिनां पूरिताशम् ।
[4]सकलगणधरेशं ज्ञानदीपप्रकाशं
तमिति वृषभसेनं क्षिप्रमाहूय पश्चात् ॥५१॥
प्रोचे जिनस्त प्रति भो शृणु त्व
वयं [5]ततो मोक्षपुरं व्रजाम· ।
त्वया तप श्रीगुणतत्त्वमुद्रान्[6] (द्रा)
महाव्रता[7]चारदयानयादीन्(द्याः) ॥५२॥

और यदि कामने पुनः चारित्रपुरपर आक्रमण किया तो यहाँ आपके अभावमें हम लोगोंकी सुरक्षा कौन करेगा ?

भगवान् जिनेन्द्रने संयमश्री और तपःश्रीकी यह विनय सुनी । उन्होंने भी अनुभव किया कि इनकी विनय वस्तुतः महत्त्वपूर्ण है । भगवान्ने तत्काल उस वृषभसेन गणधरको बुलाया जो सम्पूर्ण-शास्त्रसमुद्रके पारगामी थे, चन्द्रकी तरह मनुष्योंको आह्लादित करते थे, मदन-गजके लिए मृगेन्द्र-जैसे थे, दोषरूपी दैत्योंके लिए अमरेन्द्रके समान थे, समस्त मुनियोंके नायक थे, कर्मोंके नाश करनेमें कुशल थे, कुगतिनाशक थे, दया तथा लक्ष्मीके लीलायतन थे, संसारके पाप-पङ्कको प्रक्षालित करनेवाले थे, याचकोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले थे, समस्त गणवर्गके ईश थे और ज्ञानके प्रकाश थे । और बुलाकर जिनराज उनसे इस प्रकार कहने लगे :

वृषभसेन, देखो हम तो मोक्षपुर जा रहे है । तुम तप·श्री, संयमश्री, गुण और तत्त्वोंसे मण्डित, महाव्रत, आचार, दया और नय आदिसे अलङ्कृत समस्त चारित्रपुर-निवासियोंकी भलीभाँति रक्षा करना ।

१ यद्यस्मान् कामो विध्वंसत इति तप श्रियो विज्ञापना । २ तथा हि जि–ख०, च० । ३. लोका य वृषभसेनगणधरेश प्रकृतपद्यप्रदर्शितपुण्यश्लोक मन्यन्ते स्म तमाहूय जिन इत्थमुवाचेति तात्पर्यम् । ४. पद्यस्योत्तरार्द्धमिद च० पुस्तके नास्ति । ५ अत्र 'तत.' इति पदमधुनार्थं व्यनक्ति । ६ –त्त्वमण्डितान् ङ० । त्वमुद्रान् घ० । –त्त्वमुण्डान् ख० । ७ –ताचारद –ख०, च० ।

अस्मिन् सुचारित्रपुरे समस्ता एते ह्यवश्यं प्रतिपालनीयान्(या)।
संबोध्य[1] तानेवमसौ जिनेशो विनिर्गतो मोक्षपुरं सुखेन ॥५३॥
(कलापकम्)

इति श्रीठक्कुरमाइन्ददेवस्तुतजिन(नाग)देवविरचिते स्मरपराजये सुसंस्कृतबन्धे मुक्तिस्वयंवरो नाम पञ्चमः परिच्छेदः ॥५॥

५

[2]साद्यन्तं य श्रृणोतीदं स्तोत्रं स्मरपराजयम्।
तस्य [3]ज्ञानं च मोक्षः स्यात् स्वर्गादीनां च का कथा ? ॥१॥
तावद् दुर्गतयो भवन्ति विविधास्ताव[4]न्निगोदस्थिति-
स्तावत् सप्त[5] सुदारुणा हि नरकास्तावद्दरिद्रादयः।
१० तावद् दुःसहघोरमोहतमसाच्छन्नं मनः प्राणिनां
[6]यावन्मारपराजयोद्भवकथामेतां च श्रृण्वन्ति न ॥२॥

इस प्रकार चारित्रपुरकी रक्षाका सम्पूर्ण भार वृषभसेन गणधरको सौंपकर भगवान् जिनेन्द्र बड़े ही आनन्दके साथ मोक्षपुर चले गये।

इस प्रकार ठक्कुर माइन्ददेवके द्वारा प्रशंसित जिन(नाग)देव-विरचित
१५ *संस्कृतबद्ध मदनपराजयमें मुक्तिस्वयंवर नामक पाँचवाँ*
परिच्छेद सम्पूर्ण हुआ।

जो व्यक्ति इस मदनपराजयको पढ़ता है और सुनता है उसको सम्यग्ज्ञान और मोक्षकी प्राप्ति होती है। स्वर्गादिककी तो बात ही क्या ?

मनुष्यकी तभीतक विविध प्रकारकी दुर्गति होती है, तभीतक उसे निगोदमें रहना
२० पड़ता है, तभीतक सात नरकोंमें जाना पड़ता है, तभीतक दरिद्रताका संकट झेलना पड़ता है, और तभीतक प्राणियोंका मन दुःसह और घोर अन्धकारसे आच्छन्न रहता है, जबतक वह इस मदनपराजय-कथाको नहीं सुनता है।

---

१. एवं तानुपस्थितनिखिलभव्यान् संबोध्य जिनो मोक्षपुरमाटिटीक इत्यर्थः। २ पठ्यते यः –घ०, च०। ३ ज्ञानं केवलज्ञानमित्यर्थः। ४ –न्निगोदे स्थि–ख०। ५ रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभा-भेदात् सप्त नरकाः। ६. पद्यस्यास्य चतुर्थपादोऽयं ख० पुस्तके नास्ति।

तथा च —

शृणोति वा वक्ष्यति वा पठेत्तु[1] यः
कथामिमां मारपराजयोद्भवाम्[2] ।
सोऽसशय वै लभतेऽक्षय सुखं
शीघ्रेण कायस्य कदर्थनं विना ॥ ३ ॥ ५

अज्ञानेन धिया विना किल जिनस्तोत्र मया यत्कृतं
किं वा शुद्धमशुद्धमस्ति सकलं नैवं हि जानाम्यहम्[3] ।
तत्सर्व मुनिपुङ्गवाः सुकवय कुर्वन्तु सर्वे क्षमा
संशोध्याशु कथामिमां स्वसमये विस्तारयन्तु ध्रुवम् ॥ ४ ॥ १०

इति स्मरपराजय समाप्तम् ।

जो मनुष्य इस मदनपराजय-कथाको सुनता है और उसका वाचन करता है, काम उसे कभी वाधा नही पहुँचाता और वह नि सन्देह अक्षय सुखको प्राप्त करता है । ग्रन्थ-कार कहते हैं, मैं अज्ञानी हूँ । वुद्धि मुझमे है नही । फिर भी मैंने इस जिनस्तोत्रकी रचना की है । मैं नही जानता कि यह सम्पूर्ण ग्रन्थ शुद्ध है अथवा अशुद्ध । फिर भी समस्त मुनिनाथ और सुकवियोसे प्रार्थना है कि वे मुझे इस अपराधके लिए क्षमा करे और इस १५ मदनपराजय-कथामे उचित सशोधन करके इसके लक्ष्यका सदैव प्रसार करे ।

इस प्रकार मदनपराजय समाप्त हुआ ।

---

१ पठेद् वुध ङ० । २ पद्यस्यास्य पूर्वार्द्धमिद ख० पुस्तके नास्ति । ३ सकुशल ग्रन्थ-समाप्तावपि कविना स्वकीयमौद्धत्य परिह्रियते । एतेन कवेर्महामनस्त्व व्यजते ।

परिशिष्ट १

मदनपराजयके मूल श्लोकोंकी वर्णानुक्रम सूची[1]

अ

अकालवृष्टिस्त्वथ ४।३६
अज्ञानेन धिया (प्र०क०प्र०) ५।४
अथ हि जिनवरेणाकर्ण्य ५।४८
अथास्त्रवं पञ्चभिराशु ५।२०
अनन्तकेवलज्ञान- ५।४२
अनन्तदु खसतान- २।२३
अन्त पुरस्य पुरत ४।७५
अन्योऽन्यवाहनविमान- ५।३७
अरिकुञ्जरगन्धगजा ४।८
अर्था पादरज समा २।१८
अशोच्यानि हि भूतानि ४।६०
अश्वाग्रयाहतरेणुभिर- ४।३९
अष्टोत्तरसहस्रेण ४।१७
असारे खलु ससारे १।१७
अस्मिन् सुचारित्रपुरे ५।५१

आ

आकर्णदीर्घोत्पललोचनोऽसौ ५।११
आकर्ण्य तस्या सकल ५।४५
आकर्ण्य सर्व वरवर्णन ५।१२
आगत्य चापाभिमुखो हि ५।३०
आगत्य चारित्रपुरम् ५।४६
आग्रहश्च ग्रहश्चैव ४।६५
आमगोरससपृक्तम् १।२६
आयुष्कर्मनराधिपाश्च ३।२

इ

इत्यादि वाहनविमान- ५।३५
इत्यादि वीरनिचयस्य ४।२८
इत्याद्य त्वद्यनो जात ४।८१
इह हि वदनकञ्ज २।१५

उ

उत्तरादुत्तर वाक्य १।२९
उद्दण्डमसारकरेण ४।७०
उदग्रप्रेम्णि प्रथमवयसि ४।५८
उन्नतदक्षिणपक्षविभागा ४।२२
उन्नतवयसो ४।२
उपकारिषु य. साधु ४।८९

ए

एकाक्यपि जयत्येप २।६
एके विभ्रान्तनेत्रा- ४।४६
एके वै कातराणाम् ४।४५
एके वै हन्यमाना रणभुवि ४।४४
एव बहुभि प्रकारै- ४।८२
एवविधो य ५।४३
एष एव स्मरो २।५
एषा स्त्रीषु मनोहरा १।१६

क

कथा प्राकृतबन्धेन १।५
कल्पान्ते प्राणिनाशाय ४।४
कल्पान्ते मरुताहताश्च ४।३
का त्व दयाऽहम् ५।४
कालकूटादह मन्ये २।८
कि वैनतेयोपरि ४।१५
किमिह बहुभिरुक्तै १।२५
किम्पाकफलसभोग- २।२२
कुर्वन्ति शेषाभरणम् ४।४१
कोऽप्यस्ति यो व्यसन- ४।२७
कोऽसौ वरो मे ५।५
कोऽस्मिल्लोके ४।३०

ख

खलु विषयविरक्ता १।१३

ग

गगनवनधरित्रीचारिणा १।१०
गुप्तिर्मूलगुणा महागुणभटा. ४।९२
गोहत्या युगमेक स्यात् २।१

च

चण्डानिलेन प्रहतो ४।८३

छ

छायासुप्तमृग २।२

ज

जनो जनोक्तिम् ४।२९
जातीचम्पकपारिजातक- १।१९
जानन्नपि न जानाति २।११
जितलोकत्रया त्व च ४।७७
जिनपतिदलमध्ये ४।७४

त

त मन्मथ विजय- ५।१
तज्जावुभौ सुप्रियजाविह १।३
तज्जोऽह नागदेवाख्य १।४
ततस्तया वीक्ष्य ५।३२
ततोऽनन्तरमायातो ४।१५
ततो हि मुक्त्या सहितो ५।४०
तत्त्वं सहार्था मिलिता ४।६२
तत्रासिच्छुरिकादिशस्त्र- ४।४८
तदा जिनेन्द्रोऽतिमनोहरो ५।२६
तद्धुङ्कनादोच्चलिता ५।३१
तद्वीक्ष्य सर्वम् ५।२४
तन्मा मारय मारम् ४।८८
तपोनिधि क्षान्तिदयोपपन्न ५।२८
तस्मात्त्व च जगन्माता ४।८०
तस्मिन्नतोऽमरपति- ५।१९

---

१ प्रथम अक परिच्छेद तथा दूसरा श्लोकका है।

त्वया को न जितो लोके १।८
त्यक्तात्मशरणम् ४।५०
त्वं च ज्ञानवनी ४।७८
ताम्रस्वरेण मुमुक्षो ४।३५
तावच्च तत्रावसरे ५।४५
तावद्वृत्तं प्रतिष्ठा ३।१३
तावद् दुर्गतयो (ग्र०क०प्र०) ५।२
तीरैर्वाचालभल्लै ४।४३

द

दधिदूर्वाक्षतपात्र ४।२०
दये त्वया मोक्षपुरं हि ५।२
दहनहननवन्ध- १।११
दिक्चक्रं चलितम् ४।३७
दिव्यायुधस्वपरि- ५।३६
दुराग्रहग्रहग्रस्ते १।२६
दुर्गाकौशिकवाजिवायस- ४।२३
दृष्टं श्रुतं न क्षितिलोकमध्ये ४।२४
द्यूतादिकव्यसन- ४।५३

ध

धर्मचक्रान्वितः ४।११
धर्मध्यानमहीपेन ४।१६
धर्माचारदमा ४।९१

न

न पिशाचोरगा रोगा २।९
नरनाथत्रययुक्त ३।१४
नवनीतसुरामासै- १।२२
नहि क्षणमपि स्वस्थ २।१०
नष्टं मृतमतिक्रान्तम् ४।५९
नानाविधैः प्रकारैः ४।९०
निःशङ्काकान्तिमेवाविरति- ५।३९

प

पञ्चैव नरेन्द्रा मिलिता ३।४
पञ्च नरेशा मिलिता ४।५
पञ्चवक्त्रो महाकायो ४।१०
पञ्चाणुव्रतसंयुक्त १।२४
पञ्चेन्द्रियैः पञ्च ४।६१
पदार्थचौरैः सह चानयाश्च ४।६६
पराङ्मुख याति यथा तमो ४।५६
पवनगतिसमानैरश्व- ४।३८
पश्य निर्वेगवीरोऽयं ४।४०
पातालमाविशसि यासि २।४
पीडयत्येव निःशङ्को २।७
पूर्णेन्दुबिम्बप्रतिमाननाय ५।२३
पूर्वजन्मकृतकर्मणः फलं ४।८५
प्रकृतिनिचयभीता ४।६४
प्रदक्षिणेन प्रतिवेष्टयन्ती ५।२१
प्रवर्त्तते तत्र च यावदेव ५।२२
प्रस्थापयाम स्वसुता भवद्भ्यः ५।१३
प्रस्थापिता मम करे ४।२६
प्राप्तुः षट्त्रिगुणा महाखरतरा ३।१
प्राप्तश्च षोडशकषायनृपैः ३।७
प्राप्ता चेतसि चिन्तिता- ४।७६
प्राप्तासि सर्वभाषात्वम् ४।७९
प्राप्तास्ततो मङ्गलयोषितश्च ५।३३
प्रासादचैत्यनिलयामरवृक्ष- ५।१८
प्राप्तो मूढनृपैस्त्रयश्च ३।९
प्राप्तो क्रूरयमोपमो ३।३
प्रोचे जिनस्तं प्रति भो ५।५०

भ

भवार्णवोत्तीर्ण- ५।२७
भूपाला नव सम्प्राप्ता ३।६
भूपालैः पञ्चभिर्युक्तो ४।१८
भूयोऽपि चारित्रपुरे ५।४७
भो धर्माम्बुद हे कृपाजलनिधे ४।८६
भो पुण्यमूर्ते त्रिजगत्सुकीर्ते ५।४६

म

मतिज्ञानाख्यभूपाल ४।१२
मध्ये समोहायतसूत्रबद्ध ५।२१
मरणे या मतिर्यस्य १।१४
मरणे या मति १।१४
मरुद्धतो वै पतति द्रुमो यथा ४।८४
-मार्त्तण्डान्वयजन्मना १।२७
मीनं भुङ्क्ते सदा शुक्लः ४।५१
मूर्खैरपक्वबोधैश्च १।२५
मृगपतिमहिषोष्ट्रा ५।३४
मेदोमांसवसादिकर्दमयुतो ४।४७
मेरुपार्श्वे च गुप्तोऽर्को ४।६९

य

य कर्मकोदण्डमिदं ५।२५
य शुद्धरामकुलपद्म: १।२
यथेन्दुरेखा गगनाद्विनिर्गता १।२८
यदमलपलपद्मम् १।१
यद्वत् पर्वतनन्दना १।७
ययोरेव समं वित्तं ३।१६
यस्मिन् भव्यजनप्रबोध- १।६
यावत् पञ्च महाव्रतानि ४।७२
यावत् स्याद्वादभेरी या ४।७१
यावद्धावन्त्यभिमुखमलम् ४।७३
यासां सीमन्तिनीनाम् २।१४
ये चर्ममस्थित- ४।५२
येऽनन्तवीर्यसंयुक्ता ३।७
ये शून्यवादिन उदुम्बर- ४।५४
यो देवदेवो मुनिवृन्दवन्द्यो ५।२९
यो मा जयति सङ्ग्रामे २।१७

र

रुद्रेण लङ्घिता गङ्गा ४।६८
रूपनामगुणगोत्रलक्षणा ५।६
रूपवान् विमलवंशसंभवो ५।७

ल

लग्नोऽनलः प्रचण्डश्च ४।३४
लोकेऽस्मिन्निदमचलम् ४।८७

व

वचस्तत्र प्रयोक्तव्यम् ४।६६
वपुर्विद्धि रुजाक्रान्तम् २।१९
वरमालिङ्गिता क्रुद्धा २।२१
वशीकृतेन्द्रियग्राम १।२०
वसनशयनयोषिद्रत्नराज्योप- १।९
विषहीनो यथा सर्पो ४।९३

वीक्ष्येदृग् रणसागर जिनपते ४।४९
वीरश्रीर्वेणिरेखा ४।५५
व्यर्थमार्त न कर्तव्य- १।२६

श

शत्रुत्रासकरा महाखरतरा ४।६
शरणागतेषु जन्तुषु ४।९
शस्त्रहीनो यथा शूरो ८।९४
शीलवान् धनयुतो हि ५।८
शुष्काग्निष्ठस्थितोऽरिष्टो ४।३३
शुष्काशोककदम्बचूतबकुला १।१८
शृङ्गैर्विनैव महिषो ४।९५
शृणोति वा (ग्र० क० प्र०) ५।३
श्रद्धालुर्भाविमपक्षो १।२१
श्रीनाभिपुत्रो वृषभेश्वराख्य- ५।९
श्रीह्रीकीर्तिसमस्तसिद्धि- ५।३८
श्रुतज्ञानाभिधानो यो ४।१३
श्रुतसुरगुरुभक्ति १।१२
श्रुत्वा वचस्तत्र दया ढुढौके ५।१३
श्रुत्वा समस्त तदतीव ५।१४
श्रुत्वेदमिन्द्रवचनं धनद ५।१६

स

संस्तूयमानो मुनिमानवौघै- ५।४४
सकलमिति च श्रुत्वा ५।१५
सतप्त द्रुममायम पिवति क ४।३१
समदमदनदन्तिध्वंसकण्ठी- ४।१
समोह समर कामम् ३।२५
संप्राप्तस्तदनन्तर जिनवले ४।१९
सम्मुखो दुर्धरोऽय वै ४।४१
सर्वप्रियोऽष्टाग्रसहस्रसत्यके ५।१०
साद्यन्त य (ग्र० क० प्र०) ५।१
सिक्तोऽप्यम्बुधरव्रातै २।१२
सीमा यथाऽगाद्य ४।३२
सुरासुरेन्द्रोरगमानवाद्या ४।६७
सेवा यस्य कृता सुरासुरगणै- २।३
स्तम्भप्रतोलिनिधिमार्गतटा- ५।१७
स्त्री या सा नरकद्वार २।२०
स्वतालुरक्त किल २।२४
स्वर्गे जित शतमख, ३।८

ह

हतकुगतिनिवास य ५।४९
हारो नारोपित. कण्ठे ४।५७

परिशिष्ट २

मदनपराजयमें उद्धृत श्लोकोंकी वर्णानुक्रम सूची

अज्ञातचित्तवृत्तीना ३।८
अद्यापि नोज्झति हर १।३३
अपि स्वल्पतर कार्य १।१
अयत्नेनापि जायेते २।२५
अरक्षित तिष्ठति २।८
अर्थेभ्यो हि वृद्धेभ्य २।१८
अव्यापारेपु व्यापारम् १।१२
असन चेन्द्रियाणाम् २।१९
आकारैरिङ्गितैर्गत्या ४।२१
आर्तो च तिर्यग्गतिमाहुरार्या १।२१
इह लोकेऽपि धनिना २।१६
उद्योगिन सततमत्र १।१४
उपदेशो हि मूर्खाणाम् ४।४
एतावनादिसम्भूतौ २।२३
एता हसन्ति च रुदन्ति च १।३१
एव ज्ञात्वा नरेन्द्रेण १।९
एह्यागच्छ समाश्रयाऽऽसन-मिद २।४१
कर्पूरकुङ्कुमागुरुमृगमद- २।४५
काके शौच द्यूतकारेपु १।१८
किमु कुवलयनेत्रा सन्ति १।३४
किं पाणिना परधनग्रहणो- ४।२०
कोऽतिभार समर्थानाम् २।१२
कौशेय कृमिज सुवर्ण- १।३२
क्वचिन्मूढ क्वचिद् भ्रान्तम् २।२६
खद्योताना प्रभा तावद् ३।७
गण्डस्थलेष मदवारिपु ३।२
गोगजाश्वखरोष्ट्राणाम् ४।१४
जनन्या यच्च नाख्येयम् १।१३
जलधेर्यानपात्राणि १।२९
जल्पन्ति सार्धमन्येन १।२२
जितेन लभ्यते लक्ष्मी- ४।१७
जीवन्तोऽपि मृता पञ्च २।३५
ताडितोऽपि दुरुक्तोऽपि २।३०
तावद्गर्जन्ति फूत्कारै ४।१३
तावद्गर्जन्ति मण्डूका ३।४
तावद्गजन्ति मातङ्गा ३।५
तावच्छौर्य ज्ञानसम्पत् ४।९
तावद्विषप्रभा घोरा ३।६
तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो ३।१
ते धन्यास्ते विवेकज्ञा २।४३
त्यजेदेक कुलस्यार्थे २।७
त्यजेदेक कुलस्यार्थे ४।१
दत्तस्तेन जगत्यकीर्तिपटहो १।३२
दुर्मन्त्रान्नृपतिर्विनश्यति २।१
दूतेन सबल सैन्यम् २।२२
दृष्टि दद्यान्मनो दद्याद् २।४२
देवदैत्योरगव्याल- १।२७
धवलान्यातपत्राणि २।४६
न गर्व कुरुते माने २।२९
न चैतद् विद्यते किंचिद् २।१३
न तत् क्रुद्धा हरिव्याघ्र- १।३०
न पीड्यते य क्षुधया २।२८
नपुसकत्व तिर्यक्त्वं १।३१
न भवेद्बलमेकेन १।१०
न मोहाद्बलवान् धर्म- ४।१०
न मोहात् सुभट. कोऽपि ४।११
न वद्धयन्ते ह्यविश्वस्ता ४।२२
न विना पार्थिवो भृत्यै १।७
न हि भवति यन्न भाव्यम् २।९
न हि भवति यन्न १।३७
नाग्निस्तृप्यति काष्ठाना १।२३
नाहूतोऽपि समभ्येति २।३१
निद्रामुद्रितलोचनो मृगपति- ४।१२
परदेशभयोद्भीता २।११
पुरा दूत प्रकर्तव्य. २।२१
पूज्यते यदपूज्योऽपि २।१७
प्रणमत्युन्नतिहेतो- २।३८
प्रभवति मनसि २।४९
प्रभुप्रसादज वित्तम् २।३३
प्राणनाशकरा प्रोक्ता १।३५
प्राय सम्प्रति कोपाय ४।५
भवस्य बीज नरकस्य १।२९
भवितव्य यथा येन १।३६
भावै स्निग्धैरुपकृतमपि २।३९
भृत्यैर्विरहितो राजा १।६
मत्तेभकुम्भपरिणाहिनि १।११
मन्त्रिणा भिन्नसधाने २।२०
मित्राणा हितकामानाम् २।६
मूर्खत्व हि सखे ममापि ४।६
मूर्खैरपक्वबोधैश्च ४।७
मृगैर्मृगा सङ्गमनुव्रजन्ति १।१७
मोहकर्मरिपौ नष्टे ४।१६
मौनान्मूक प्रवचनपटु- २।४०
यज्जीव्यते क्षणमपि ४।८
यथा धेनुसहस्रेपु २।१०
यद्वच्चन्द्रमसा विनापि रजनी ३।३
यद्वेणुर्विकलीकरोति २।३
ययोरेव सम शील २।४८
यस्यार्थस्तस्य मित्राणि २।१५
यस्यास्ति वित्त स नर २।१४
युद्धकालेऽग्रग सद्य २।३२
ये स्त्रीशस्त्राक्षसूत्राद्यै- १।१९
यो रण शरणम् २।२७
रथस्यैक चक्रम् १।१५
राजा तुष्टोऽपि भृत्याना- १।८
रक्षन्ति देश ग्रामेण ४।२
लभ्यते भूमिपर्यन्तम् २।४४
वञ्चकत्व नृशमत्वम् १।२४
वनेऽपि सिंहा मृगमास- २।४७
वर बुद्धिर्न सा विद्या २।५
वर वन वर भैक्ष्य २।३६

वर वन सिंहगजेन्द्रसेवित २।३७
वाचि चान्यन्मनस्यन्यत् १।२५
विचरन्ती कुशीलेषु १।२६
व्यर्थमार्त्त न कर्त्तव्य- १।२०
शाखामृगस्य शाखाया २।२
षट्कर्णो भिद्यते मन्त्र १।२
सकृज्जल्पन्ति राजान २।९
सर्पान् व्याघ्रान् २।४
सर्वदेवमयस्यापि १।४
सर्वदेवमयो राजा १।३
सर्वस्वहरणं बन्धम् १।३०
सुखदु खजयपराजय- १।२८
सेवया धनमिच्छद्भि २।३४
स्वकीयबलमज्ञाय १।५
स्वतत्त्वानुगत चेत २।२४
स्वाधीनेऽपि कलत्रे १।१६
स्वाम्यर्थे यस्त्यजेत्प्राणान् ४।१८
स्वाम्यर्थे ब्राह्मणार्थे च ४।१९
हरिहरपितामहाद्या ४।३
हीयडा सबरि ४।१५

परिशिष्ट ३

सदनपराजयके पारिभाषिक और विशेष शब्द*

अ

अङ्ग—जैन श्रुतका एक भेद। अङ्ग वाङ्मय बारह प्रकारका है १ आचाराङ्ग, २ सूत्रकृताङ्ग, ३ स्थानाङ्ग, ४ समवायाङ्ग, ५ व्याख्याप्रज्ञप्तिअङ्ग, ६ ज्ञातृधर्मकथाङ्ग, ७ उपासकाध्ययनाङ्ग, ८ अन्तकृद्दशाङ्ग, ९ अनुत्तरोपपादिकदशाङ्ग, १० प्रश्नव्याकरणाङ्ग, ११ विपाकसूत्राङ्ग और १२ दृष्टिप्रवादाङ्ग। इन अङ्गोंमें आचार आदिका विस्तृत विवेचन है। ६६।१०, १११।८

अच्युत—सोलहवें स्वर्गका नाम ११०।९

अजिता—एक भावात्मक देवी। १२१।४

अज्ञातफल—वह फल जिसके सम्बन्धमें कुछ जानकारी न हो। इस प्रकारके फलकी अभक्ष्य पदार्थोंमें गणना की गयी है। २३।५

अज्ञान—मिथ्याज्ञान या कुज्ञानको अज्ञान कहते है। ज्ञानाभाव जो ज्ञानावरणीयके उदयका फल है, उस अज्ञानसे यहाँ मतलब नही है। यह अज्ञान तीन प्रकारका है मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभङ्ग-अज्ञान। ५९।१६, ७४।१०

अणुव्रत—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहका किसी भी अशमे त्याग करना अणुव्रत है। अणुव्रतके पाँच भेद है अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रहपरिमाणाणुव्रत। २३।७

अनय—कामके दलका एक सुभट। अनय अर्थात् जहाँ नय दृष्टिका निषेध हो। नयका विशेषार्थ आगे देखिए। ९४।३

अनुकम्पा—जिनेन्द्रकी सेनाके इस नामके भावात्मक नरेश। ६७।७

अनुकम्पाकरी—केवलज्ञानवीरका एक अस्त्र। ९६।१०

अनुप्रेक्षा—जिस गम्भीर और तात्त्विक चिन्तन-द्वारा राग-द्वेष आदि वृत्तियोका निरोध होता और अन्तसमे शान्ति और सुखका संचार होता है उसे अनुप्रेक्षा कहते है। ये अनुप्रेक्षाएँ बारह है १ अनित्य, २ अशरण, ३ ससार, ४ एकत्व, ५ अन्यत्व, ६ अशुचि, ७ आस्रव, ८ सवर, ९ निर्जरा, १० लोक, ११ बोधिदुर्लभत्व और १२ धर्मका स्वाख्यातत्व। ७०।२

अनन्तकायिक—जिस एक वनस्पतिमें अनन्त एकेन्द्रिय जीव एक साथ रहते हो, जन्म लेते हो और मरते हो, उसे अनन्तकायिक कहते है। २३।५

अनन्तचतुष्टय — अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य इस चतुष्टयी विभूतिका नाम अनन्तचतुष्टय है और यह प्रत्येक अर्हत्मे पायी जाती है। ५०।१३

अन्तराय—जिस कर्मके उदयसे दान लाभ आदिमे अन्तराय उपस्थित हो उसे अन्तराय (कर्म) कहते है। इसके पाँच भेद है दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय। ये सब कामके सैन्यके सेनानी है। ६०।३

अन्यायकाहलिक — कामकी डोडी पीटनेवाला। यह अनीतिरूपी ढोल पीटकर कामकी घोषणाएँ सुनाता है। ४९।६

---

*प्रथम अक पृष्ठ तथा दूसरा अक पक्तिका सूचक है।

अपराजित—एक अनुत्तर विमान। ११०।१०

अभिमान—कामका एक योधा। ३।४

अमूढदृष्टि—सम्यक्त्वका एक अङ्ग। एक भावात्मक देवी। मिथ्या देव, शास्त्र और गुरुमें श्रद्धा न करनेका अर्थ अमूढदृष्टि है। १२१।५

अर्थ—जिनराजकी सेनाके सुभट। अर्थ नौ है जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप। अर्थका दूसरा नाम पदार्थ भी है। ९४।१

अवधिज्ञान—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी मर्यादाको लेकर जो रूपी पदार्थको स्पष्ट जाने। ६८।५, १००।१६, १११।४

अशल्यता—वह भाव जहाँ शल्य न हो, एक भावात्मक देवी। शल्यका अर्थ आगे देखिए। १२१।३

अष्ट कुलाचल—आठ कुलपर्वत। यथा—माहेन्द्र, मलय, मह्य, शुक्तिमत्, ऋक्षमत्, विन्ध्य और पारियात्र। ६६।४

असयम—वह भाव जहाँ सयम न हो, कामके दलका एक नरेश। ६०।२

अस्त्र—आयुधका एक वह भेद जो मन्त्रप्रयोगपूर्वक काममें लाया जाये। जैसे ब्रह्मास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, मोहनास्त्र, गारुडास्त्र आदि। ८२।५

आ

आकाक्षा—पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी भोगोकी अभिलाषा। इस नामका मिथ्यात्ववीरका एक आयुध। ९०।२

आचार—आचार अर्थात् आचरण। यह पाँच प्रकारका है दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तप-आचार और वीर्याचार। उक्त नामाकित जिनराजकी सेनाके सेनानी है। ६६।८, १००।१२, १११।३

आधाकर्म—गृहस्थोके रसोई आदि बनानेमे होनेवाला प्राणिवध। एक प्रकारका बाण। १०५।३

आनत—तेरहवें स्वर्गका नाम। ११०।९

आयतन—जिनदेव, जिनमन्दिर, जिनागम, जिनागमके धारक, तप और तपके धारक। इस नामके सम्यक्त्ववीरके बाण। ८९।९

आयुःकर्म—जिससे नरक आदि पर्यायोमे अमुक समय तक रहना पडे। कामकी सेनाके योधानरेश। आयु कर्म चार प्रकारका है नरकायु, तिर्यचायु, मनुष्यायु और देवायु। ५९।१४

आरण—पन्द्रहवें स्वर्गका नाम। ११०।९

आर्त्त—इस नामका एक ध्यान। यह चार प्रकारका है १ अप्रिय वस्तुके प्राप्त होनेपर उसे दूर करनेके लिए जो अविराम चिन्तन किया जाता है—वह प्रथम आर्तध्यान है। २ इष्ट वस्तुके वियोग हो जानेपर उसकी प्राप्तिके लिए जो अहर्निशकी चिन्ता है वह दूसरा आर्तध्यान है। ३ दुख आनेपर उसे दूर करनेके लिए जो निरन्तर चिन्ता की जाती है—वह तीसरा आर्तध्यान है। ४, अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिके लिए जो भावी सकल्प और आकाक्षा है—वह निदान नामका चौथा आर्तध्यान है। २५।१,८८।११,९३।११

आवश्यक—प्रतिदिनकी अवश्य करने योग्य क्रियाएँ। १. सामायिक, २ स्तवन, ३ वन्दना, ४ प्रतिक्रमण, ५. स्वाध्याय और ६ कायोत्सर्ग, उक्त नामाकित केवल ज्ञानवीरके बाण। ९५।११

आशा—तृष्णा, कामकी सेनाके नरेश, मोहका इस नामका धनुप और मन-मतगजके इस नामके नेत्र। ६०।४, ६५।७,९९।८

आशिनी—कामदेवकी कुलदेवी विद्या। १०३।७,१०५।१२

आस्रव—मन, वचन और कायकी प्रवृत्ति-द्वारा आत्माके साथ सबद्ध होनेके लिए जो कर्म आते है वह आस्रव है। इस नामका कामदेवका सभासद्। ३।४,७४।२, ९४।१,१००।१३

इ

इन्द्रिय—जिससे ज्ञानलाभ हो

सके। वे पाँच हैं १. स्पर्शनेन्द्रिय, २ रसनेन्द्रिय, ३ घ्राणेन्द्रिय, ४ चक्षुरिन्द्रिय, ५ श्रोत्रेन्द्रिय। इस नामके कामदेवकी सेनाके सेनानी। ५९।११

उ

उदुम्बर—१ बड, २ पीपल, ३ गूलर, ४ पाकर और ५ क्षीरवृक्षके फल। ये पाँच उदुम्बर हैं। २३।३,८८।१२

उपशम—कर्म-शक्तिकी अप्रकटता अथवा कर्मोंका फल न देना उपशम है। जिनराजका एक सुभट और केवलज्ञानवीरका एक बाण। ९५।९,१११।५

उपशमश्रेणी—जिसमें अनन्तानुबन्धी क्रोधादिका विसयोजन करके चारित्रमोहनीयका उपशम किया जाये। ९४।८

उपवास—अष्टमी और चतुर्दशीजैसी पुण्य तिथिके दिन समस्त प्रकारके आहार, जल और आरम्भका त्याग करके जो आध्यात्मिक विकासमें प्रवृत्त रहना है वह उपवास है। इस नामका जिनराजका एक बाण। १०५।१०

क

कर्म—जो कर्मवर्गणारूप पुद्गलके स्कन्ध राग-द्वेषादिके निमित्तसे जीवके साथ सम्बद्ध होकर ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि रूपोंमें परिणत होते हैं उन्हें कर्म कहते हैं। कर्म आठ हैं १ ज्ञानावरण, २ दर्शनावरण, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयु, ६ नाम, ७ गोत्र और ८ अन्तराय। कामदेवके इस नामके योद्धा। ३।३,५९।१४,६०।१०,७४।९

कर्म-कोदण्ड—जिनराजके विवाहके अवसरपर उपस्थित किया गया इस नामका धनुष। ११९।१

कल्याणक—अर्हत् भगवान्के गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञानकी उत्पत्ति और निर्वाणलाभके सुअवसरपर जो महोत्सव मनाये जाते हैं, उन्हें कल्याणक कहते हैं। ५०।१३,११९।५

कषाय—जो भाव आत्माको कसे अर्थात् उसके गुणोंका घात करे। वे चार हैं क्रोध, मान, माया और लोभ। कामदेवकी सेनाके इस नामके वीर और मनमतगके इस नामके चार चरण। ६०।१४,९४।४

काम—मकरध्वजका नामान्तर। ४।६

कामावस्था—कामजन्य अवस्था। वे दस हैं अभिलाप, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, संप्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता और मृत्यु। कामदेवकी सेनाका छत्र। ६२।२

काललब्धि—किसी कार्यके होनेके समयकी प्राप्ति। सम्यग्दर्शनके लिए अर्द्ध-पुद्गल-परिवर्तनकाल, मोक्ष जानेमें शेष रहना काललब्धि है। ५।९

कीर्ति—एक भावात्मक देवी। १२१।२

कुकथा—धर्मविरुद्ध निन्द्य कथाएँ। वे चार हैं स्त्रीकथा, भोजनकथा, राष्ट्रकथा, और अवनिपालकथा। ६१।१५

कुदर्शन—मिथ्यादर्शन। जिसके कारण तात्त्विक श्रद्धा न हो वह मिथ्यादर्शन है। वह पाँच प्रकारका है. एकान्त, विपरीत, संशय, वैनयिक और अज्ञान। कामदेवके सैन्यकी इस जातिकी पाँच प्रकारकी गर्जनाएँ। ६२।१

कुन्त—भाला या बरछा। यह काठका बनता है। इसके अग्रभागमें खूब तीखा नोकीला शानदार डेढ बित्तेका लम्बा लोहेका फल लगा रहता है। भाला कमसे कम आठ हाथ लम्बा होता है। ८२।४

कृपाण—आधे खड्गको कृपाण कहते हैं। हरण, छेदन, घात, बलोद्धरण, आयत, पातन और स्फोटन, ये सात कृपाण और खड्गके कर्म हैं। ८२।४

केवलज्ञान—जो ज्ञान त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोंको एक साथ हस्तामलकवत् स्पष्ट जाने वह केवलज्ञान है। जिनराजका एक वीर

सेनानी। ६८।७,८५।११, १११।८

क्षपकश्रेणी—जहाँ अनन्तानुबन्धी ४ का विसयोजन करके चारित्रमोहनीयकी शेष इक्कीस प्रकृतियोंका क्षय किया जाये वह क्षपकश्रेणी है। ९४।१०,११

क्षमा—सहिष्णुता। आत्मामें क्रोधभावकी उद्भूति न होना और उत्पन्न हुए क्रोधको दूर करनेका नाम क्षमा है। क्षमा एक आत्मीय धर्म है। जिनराजकी सेनाका इस नामका एक नरेश। ६५।११,९४।२, १११।३

क्षायिकदर्शन—जो आत्म-प्रतीति अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और दर्शनमोहनीयके क्षय होनेपर हो वह क्षायिक दर्शन है। इस नामका जिनराजका एक भावात्मक हाथी। ७०।१

ख

खड्ग—तलवार। प्राचीन समयमे इसका प्रमाण छह अगुल चौडा और सात हाथका लम्बा कहा गया है। आज-कल यह दो-ढाई हाथका लम्बा होता है। इसमें एक मुठिया रहती है और यह कमरमे बाँयी ओर लटकाया जाता है। यह कोश (म्यान) मे रहता है। खड्गकी उत्तमताका ज्ञान इन आठ वस्तुओंसे होता है—अङ्ग, रूप, जाति, नेत्र, अरिष्ट, भूमि, ध्वनि और मान। इनके विशेपार्थके लिए 'धनुर्वेदरहस्य' देखिए। ८१।१०,९६।९

ग

गणधर—जो तीर्थंकरो-द्वारा प्रकाशित ज्ञानको ग्रहण करके उसका व्याख्यान करता है और उसे द्वादशाङ्गमें निबद्ध करता है वह गणधर है। तीर्थंकरोके पट्ट शिष्य। १२३।१०

गति—नामकर्मके उदयसे जीव जिस पर्यायको प्राप्त करता है उसे गति कहते है। वे चार है—नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति और देवगति। १५।११

गतिच्छेद—गतिका विनाश। २४।४

गदा—एक आयुध, जो लोहेका बनता है। लोहेका ही इसमे सात हाथका लम्बा दण्ड लगा रहता है। यह कुवेर देवताका मुख्य आयुध है। ८२।३

गारव—परिग्रहसम्बन्धी तीव्र अभिलापाको गारव कहते है। गारव तीन प्रकारका है ऋद्धिगारव, रस गारव और सात गारव। कामका एक सभासद् और मोहकी वाणश्रयी। ३।३, ९५।७

गुणस्थान—आध्यात्मिक विकासको चढाव-उतारवाली भूमिका। मोह और योगके निमित्तसे आत्माके गुणोकी तारतम्यरूप अवस्थाविशेपको गुणस्थान कहते है। गुणस्थान चौदह है १ मिथ्यात्व, २ सासादन, ३ मिश्र, ४ अविरतसम्यग्दृष्टि, ५.देशविरत, ६ प्रमत्तसयत, ७ अप्रमत्तसयत, ८ अपूर्वकरण, ९. अनिवृत्तिकरण, १०. सूक्ष्मसाम्पराय, ११ उपशान्तमोह, १२ क्षीणमोह, १३ सयोगकेवली और १४. अयोगकेवली। जिनराजके चारित्रपुरकी इस नामकी सीढियाँ। ५।१२

गुप्ति—मन, वाणी और कायकी क्रियाको कुमार्गसे रोककर सन्मार्गमें लगानेमें जो निवृति अश है वह गुप्ति है। वे तीन है मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति। जिनराजकी सेनाके इस नामके तीन नरेश। ६७।४, १११।६

गुरु—जो पचेद्रियसम्बन्धी विपय और आशासे परे हो, आरम्भ और परिग्रहसे दूर हो, ज्ञान और ध्यान ही मे जो तन्मय रहता हो वह गुरु है। ११६।३

ग्रैवेयक—स्वर्गोके ऊपर स्थित नौ ग्रैवेयक विमान। ११०।९

गोत्र—सन्तानक्रमसे चले आनेवाले जीवके आचरणको गोत्र कहते है। उच्च गोत्र और नीच गोत्रके भेदसे

वह दो प्रकारका है। कामकी सेनाके इस नामके नरेश। ५९।१६

च

चक्र—एक आयुध। यह रथके पहियेके समान होता है और लोहेका बनता है। इसके मध्यमें लोहेकी नाभि बनी रहती है। नाभिके बीचमें छिद्र रहता है। इसीमें अँगुली डालकर घुमाके यह चलाया जाता है। नाभिमें चारो ओर सोलह, आठ या छह लोहेके आरे लगे रहते है। आरेके चारो ओर लोहेकी नेमि लगी रहती है। छेदन, भेदन, पात, भ्रमण, शमन, विकर्त्तन और कर्त्तन – ये सात चक्र-कर्म हैं। ८२।५

चतुर्णिकाय—देवोके चार प्रकारके समूहविशेष अर्थात् जाति। वे चार प्रकारके हैं भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी। १२२।१

चान्द्रायण—एक विशेष व्रत और जिनराजका इस नामका एक वाण। १०५।४

चारित्र—वाह्य और आभ्यन्तर क्रियाके निरोधसे आत्मामें जो विशेष शुद्धि प्रकट होती है वह चारित्र है। चारित्र तेरह प्रकारका है पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति। जिनराजकी सेनाके 'इस नामके वीर सुभट। ६६।१०

चैत्यालय—जिन-मन्दिर।१६।३

छ

छुरिका—छुरी। आधे कृपाणको छुरिका कहते है। ८३।१

छेदोपस्थापना—व्रतोमें दोष आ जानेपर उसे छेद कर फिरसे उसी व्रतको ग्रहण कर आत्माको चारित्रमय बनाना छेदोपस्थापना चारित्र है। केवलज्ञान वीरका इस नामका एक आयुध। ९६।६

ज

जयन्त—इस नामका एक अनुत्तर विमान। ११०।९

जिन—जिनेन्द्र, जो कर्म-शत्रुओंके ऊपर विजय प्राप्त करे वह जिन है। ४।११, ८३।५, ११०।४, १११।२, ९, ११९।३, १८।

जिनराज—जिनश्रेष्ठ, कथानायक। ५।६

झ

झष—एक प्रकारका सहारास्त्र, जिसका नाम मकर भी है। ८२।४

त

तत्त्व—जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा और मोक्ष—ये सात तत्त्व हैं। जिनराजकी सेनाके इस नामके वीर। ६६।२, १११।३

तप—आध्यात्मिक उत्कर्षके लिए सम्पूर्ण इच्छाओका निरोध करना तप है। वह मुख्यत दो प्रकारका है—वाह्य, और आभ्यन्तर। वाह्य तप छह प्रकारका है -अनशन, अवमोदर्य, व्रतपरिसख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश। आभ्यन्तर तप भी छह प्रकारका हैं प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान। जिनराजकी सेनाके इस नामके वीर योधा। ६६।७, १११।३

तिर्यग्गति—नामकर्मकी वह प्रकृति, जिसके उदयसे जीवको पशुपर्यायमे जन्म लेना पडे। १६।१०

तीर्थंकर—जो धर्मतीर्थका प्रवर्त्तन करते है, उन्हे तीर्थंकर कहते है। इस नामका एक गोत्र ११६।७

तुष्टि—इस नामकी एक भावात्मक देवी। १२१।५

द

दण्ड—मन, वचन और कायकी कुत्सित प्रवृत्तिको दण्ड कहते है। कामके इस नामके सभासद्। ३।२, ९४।२

दम—इन्द्रियोको दमन करना। जिनराजकी सेनाका इस नामका एक योधा नरेश। ६५।११, ९४।२, १११।३

दया—इस नामकी एक देवी और इस नामका जिनराजकी सेनाका एक सुभट नरेश। ७०।४, ७४।११

दर्शन—सच्ची आत्म-श्रद्धा। इस नामका जिनराजकी सेनाका एक वीर। ८९।४

दर्शनमोह—जो आत्माके सम्यक्त्व गुणको प्रकट न होने दे वह दर्शनमोह है। यह तीन प्रकारका है मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्-

प्रकृति। कामकी सेनाका इस नामका एक नरेश। ६०।६

दर्शनावरण—जो जीवके दर्शन गुणका घात करे। यह नौ प्रकारका है चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि। इस नामके कामदेवकी सेनाके सुभट नरेश। ६० ११

दान—न्यायपूर्वक प्राप्त हुई वस्तुका अनुग्रहकी दृष्टिसे दूसरेको समर्पण करना दान है। यह चार प्रकारका है आहारदान, ज्ञानदान, ओषधिदान और अभयदान। १७।१५

दिव्याशिनी—देखिए 'आशिनी'। १०३।७

दुर्गति—खोटी गति। जैसे—नरकगति और तिर्यंचगति। १२४।८

दुष्परिणाम—निन्द्य परिणाम। इस नामके कामदेवकी सेनाके सेनानी। ६०।६, ७४।१

देव—जो भूख, प्यास आदि अठारह दोषोंसे परे हो, वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो वह देव है। ११६।३

दोष—दोष अठारह प्रकारके है क्षुधा, तृषा, जरा, आतक, जन्म, मरण, भय, अहकार, राग, द्वेष, मोह, चिन्ता, रति, निद्रा, विस्मय, मद, स्वेद और खेद। इस नामके कामदेवके सभासद्। ३।४, ९४।३

द्विदल—जिस अन्नके दो दल हों उससे बने पदार्थको कच्चे गोरस (दूध, दही, छाछ) मे मिलाकर खाना द्विदल भोजन कहलाता है। २३।५

द्वेष—इस नामका कामदेवकी सेनाका एक सुभट। ५९।१५

ध

धर्म—जिसके द्वारा आत्माको निराकुल सुखकी प्राप्ति हो। धर्म दस प्रकारका है क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, सयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य। जिनराजकी सेनाके इस नामके वीर सेनानी। १११।३

धर्मध्यान—आज्ञा, अपाय, विपाक और सस्थानकी विचारणाके निमित्त जो एकाग्र चिन्तन है वह धर्मध्यान है। जिनराजकी सेनाका एक वीर योधा। १६।१३

ध्यान—एकाग्र होकर चिन्तन करनेका नाम ध्यान है। यह चार प्रकारका है· आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान। १७।१, ५, १३, १७, १८।४

न

नय—अनेक धर्मात्मक वस्तुके एक अशको बोध करानेवाले ज्ञानको नय कहते है। नयके नौ भेद है द्रव्यनैगम, पर्यायनैगम, द्रव्यपर्यायनैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवभूत। इस नामके जिनराजकी सेनाके नौ नरेश। ६७।३, १११।३

नरक—नारकोंके निवासस्थानकी भूमियाँ नरक कहलाती है। वे सात है रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पकप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और महातम प्रभा १५।१२

नरकगति—जिस नाम-कर्मके उदयसे नारकपर्यायमें जन्म लेना पडे। मिथ्यात्वकी पत्नी। ९१।५

नरकानुपूर्वी—जिस कर्मके उदयसे नरकगतिमें जन्म लेनेके पहले और मृत्युके पश्चात् आत्माके प्रदेश पूर्व शरीरके आकारके बने रहें वह नरकानुपूर्वी है। नरकगतिकी सखी। ९१।६

नवग्रह—रवि, चन्द्र, मगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नवग्रह हैं। ६०।१२

नामकर्म—जिस कर्मके उदयसे जीव, गति, जाति आदिके रूपमें परिणमन करे और जिसके निमित्तसे शरीर आदिका निर्माण हो वह नामकर्म है। इसके तिरानवे भेद है। इस नामके कामदेवकी सेनाके सुभट। ६०।७

नाराच—जो बाण सिर्फ लोहेका बनाया जाता है अर्थात् जिसमें ऊपरसे नीचे तक सब लोहा ही रहता है उसका नाम नाराच है। नाराचके पुंख (पिछले

भाग) में मोटे-मोटे बडे-बडे पाँच पंख लगते है। वलवान् और विरला धनुर्धर ही इसे चला सकता है। ८२।४

निगोद—जहाँ एक शरीरके अनन्त स्वामी हों वह निगोद शरीर है। एक निगोद शरीरमें प्रति समय अनन्तानन्त जीव एक साथ जन्मते है और मरते है, परन्तु वह निगोद शरीर वरावर वना रहता है। निगोदके दो भेद, हैं - १ नित्यनिगोद, २ इतर निगोद। जिसने निगोदके सिवाय कभी भी दूसरी पर्याय न पायी हो और जो भविष्यमे प्राय इस पर्यायको छोडकर अन्य पर्याय प्राप्त न कर सके वह नित्य निगोद है। तथा जो निगोदसे निकलकर पुन इस पर्यायको प्राप्त करे वह इतर निगोद है। १२४।८

निन्दितपरिणाम–देखिए 'दुष्परिणाम'। इस नामके कामदेवकी सेनाके सुभट। ६०।६

नियम—कालकी अवधि लेकर किसी वस्तुके त्यागकी प्रतिज्ञा करना। १७।१५

निर्ग्रन्थ—जो सव प्रकारसे परिग्रहकी गृद्धिसे उन्मुक्त हो वे निर्ग्रन्थ है। निर्ग्रन्थ मुनि पांच प्रकारके है पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक। जिनराजकी सेनाके इस नामके वीर योधा। ६८। १३,१११।७

निर्ग्रन्थमार्ग—निर्ग्रन्थ साधुका आदर्श मार्ग। २८।११

निर्जरा—कर्मोके अशत झडनेका नाम निर्जरा है। इस नामकी एक विद्या। १०२। ६,७

निर्जरा—एक भावात्मक देवी। १२१।२

निर्मलता—एक भावात्मक देवी। १२१।३

निर्मोहता—एक भावात्मक देवी। १२१।३

निर्वेग—ससार, शरीर और भोगोसे वैराग्य भावकी जागृति। जिनराजकी सेनाका एक वीर सेनानी। ६८।९, ७५।२, ८१।१०, १११।५

निःकांक्षा—भोगोकी प्राप्तिकी आकाक्षा न होना। सम्यक्त्ववीरका इस नामका एक आयुध। ९०।३

नि.शङ्का—तात्त्विक व्यवस्थामे कुछ भी सन्देह न होना। निर्भयता। सम्यक्त्ववीरका इस नामका एक आयुध। ८४।११, ९०।१

निःशङ्का—एक भावात्मक देवी। १२१।६

नि.स्वेदता—एक भावात्मक देवी। १२१।२

नोकषाय—जो मुख्य कषायोके सहचर हो और उनका उद्दीपन करे वे नोकषाय है। ये नौ प्रकारके है हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुसकवेद। ६०।१५

प

पञ्चनमस्कारमन्त्र—इस नामका एक मन्त्र। जो इस प्रकार है

"णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाण, णमो आइरीयाण। णमो उवज्झायाण, णमो लोये सव्वसाहूण ॥" इसमें पच परमेष्ठियो – अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधुको नमस्कार किया गया है, इसलिए इसे पञ्चनमस्कारमन्त्र कहते है। इसका दूसरा नाम मूलमन्त्र भी है। २४।९

पट्टिश [पट्टिस]—पटा या किरीचका नाम है। इसका आकार तलवारके समान होता है। इसका फल सीधा तथा पतला और लम्बा होता है। फलमें दोनो ओर धार होती है। ८२।५

पदार्थ—देखिए 'अर्थ'। जिनराजकी सेनाके सुभट। ९४।१

परशु—गडाँसेका नाम परशु है। यह लोहेका वनता है। इसमे वडा लम्बा मजवूत लकडीका दण्ड लगा रहता है। ८२।३

परिहारविशुद्धि—सम्पूर्ण अहिंसक मुनिके समस्त सावद्यकी निवृत्तिपूर्वक जो एक आत्मीय विशुद्धि है वह परिहारविशुद्धि चारित्र है। जिसके कारण जीवाकुल प्रदेशमें प्रवृत्ति करनेपर

भी जीवहिंसा नही होती तज्जन्य पाप नही लगता। केवलज्ञानवीरका एक इस नामका दिव्य आयुध। ९६।६

परीषह—बाधाएँ। इनका सहना सन्मार्गपर स्थिर रखनेमे सहायक होता है और कर्मोके क्षयमें निमित्त होता है। परीषह बाईस है क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्रीचर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार, पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन। दिव्याशिनीकी इस नामकी एक विद्या।१०१।११

पुण्य—जो जीवको शुभ क्रियाओ-में प्रवृत्त करे वह पुण्य है। इस नामका कामकी सेना-का एक सुभट। ६०।२

पुष्टि—एक भावात्मक देवी। १२१।५

पूर्व—द्वादशाग श्रुतके बारहवे दृष्टिप्रवाद अगका एक भेद। यह चौदह प्रकारका है उत्पादपूर्व, आग्रायणी, वीर्यानुप्रवाद, अस्तिनास्ति-प्रवाद, ज्ञानप्रवाद सत्य-प्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्या-ख्याननामधेय, विद्यानुवाद, कल्याणवाद, प्राणवाद, क्रियाविशाल और लोक-बिन्दुसार। इन पूर्वोमे द्रव्य, स्याद्वाद, कर्मबन्ध, मन्त्र-तन्त्र और वैद्यक-सगीत आदिका विस्तृत विवेचन है। जिनराजकी सेनाके इस नामके वीर नरेश। ६६।१३, १११।८

प्रणीति—एक भावात्मक देवी। १२१।४

प्रभा—एक भावात्मक देवी। १२१।३

प्रमाण—सम्यग्ज्ञानको प्रमाण कहते है। उसके लोक-प्रसिद्ध न्यायशास्त्रमें चार भेद है प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम और उपमान। इस रूपका जिनराजका एक हाथी। ६९।८

प्रमाद—जिसके कारण निर्दोष चारित्र पालन करनेमें उत्साह न हो तथा आत्म-स्वरूपकी असावधानताका नाम प्रमाद है। वह पन्द्रह प्रकारका है चार कुकथा, चार कषाय, पचेन्द्रियके विषय, निद्रा और स्नेह। कामदेवकी सभाका एक सभासद् और मोहके इस नामके बाण। ३।४, ९५।१०

प्राणत—चौदहवें स्वर्गका नाम। ११०।९

प्रायश्चित्त—प्रमादसे आये हुए दोषोकी शुद्धिका नाम प्रायश्चित्त है। यह नौ प्रकारका है आलोचना, प्रतिक्रमण, आलोचना-प्रतिक्रमण, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार और उपस्थापना। जिनराजकी सेनाके सेनानी। ६५।१२, ११०।९, १११।४

प्रीति—कामदेवकी पत्नी। ३।२, २७।९, १०९।१, ११०।५, १२

ब

बहिरात्मा—जो शरीर आदि बाह्य वस्तुओमे आत्म-बुद्धि करे वह बहिरात्मा है। इस नामका कामदेवका बन्दी। ७३।१, ७६।२, ९७।३

बाण—सरकण्डे या बाँसका बनता है। बाणके तीन भेद है स्त्री, पुरुष और नपुसक। जो बाण अगले हिस्सेमें भारी और पिछले हिस्सेमें हलका हो वह स्त्रीबाण है। जो बाण पिछले हिस्सेमें भारी और अगले हिस्सेमें हलका हो वह पुरुषबाण है। और जो दोनो भागोमें सम होता है वह नपुसक बाण है। नपुंसक बाण ही निशाना लगानेके लिए उत्तम माना जाता है। ८३।३

बुद्धि—इस नामकी एक भावात्मक देवी १२१।२

बोधि—इस नामकी एक भावा-त्मक देवी। १२१।३

ब्रह्मचर्य—सम्पूर्ण रीतिसे शील-का पालन करना ब्रह्मचर्य है। इसकी नौ बाढ है १ स्त्रियोके सहवासमे न रहना, २ उन्हे रागसे न देखना, ३ मिष्ट वचन न कहना, ४ पूर्व भोगोका स्मरण न करना, ५ कामो-द्दीपक आहार न करना, ६. शृगार न करना, ७ स्त्रियोकी शय्यापर न सोना,

८ कामकथा न करना, ९ भरपेट भोजन न करना। इस नामके जिनराजकी सेनाके वीर योधा। ६७।२

भ

भय—जिसके कारण आत्मा भयभीत हो। वे सात प्रकारके हैं १ इस लोकका भय, २ परलोकभय, ३ वेदनाभय, ४ अरक्षाभय, ५ अगुप्तिभय, ६. मरणभय और ७ अकस्मात्-भय। इस नामके कामदेवकी सेनाके सुभट। ७४।९, ९४।१, १००।८

भल्ल—भाला और बाणके फल-का एक प्रकार। ८२।३

भव—ससार। कामदेवका नगर। २।९

भव्य—जिनमे यथार्थ आत्म-श्रद्धा प्रकट होनेकी क्षमता हो वे भव्य हैं। २।४, ९८।८

भामण्डल—अर्हन्त भगवान्के समवशरणमें विशेष माहात्म्य बतलानेवाला एक चिह्न प्रातिहार्यका प्रकार। ५०।१३, ११९।८, १२२।२

भावना—देखिए 'अनुप्रेक्षा'। इस नामकी एक भावात्मक देवी। १२१।४

भिण्डिपाल—एक प्रकार-का आयुध। यह खड्गके समान होता है। इसका फल बहुत लम्बा-चौडा होता है। यह बडा वजनदार होता है। ८२।४

म

मकरध्वज—कामदेव, जिनराज-का प्रतिभट। ३।५, ४४।१०, ५०।२, ७३।६

मतिज्ञान—जो ज्ञान पाँच इन्द्रिय और मनकी सहायतासे उत्पन्न हो उसे मतिज्ञान कहते है। इसके चार भेद है अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। ये चार मतिज्ञान, पाँच इन्द्रिय और मनके निमित्तसे बहु, बहुविध आदि बारह पदार्थों-के होते है, इसलिए इसके ४×६×१२=२८८भेद हुए और इनमें व्यजना-वग्रहके ४८ भेद जोडने-पर ३३६ भेद मतिज्ञानके होते हैं। व्यजनावग्रह-में वस्तुका अस्पष्ट ग्रहण होता है। अतएव वहाँ न तो ईहा, अवाय और धारणाज्ञान होते हैं—और न ही मन और चक्षुकी (वस्तुको स्पष्ट ग्रहण करनेके कारण) वहाँ प्रवृत्ति होती है। इस कारण व्यजनावग्रह सिर्फ चार इन्द्रियो-द्वारा बहु आदि बारह पदार्थोंका ज्ञान करता है, अत. ४×१२ =४८ भेद इसके निष्पन्न कहलाते है। जिनराजकी सेनाके इस नामके नरेश। ६७।१२, १११।४

मद—अहकार। वह आठ प्रकारका है ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीरमद। इस नामका कामदेवका एक सभासद्। ३।४

मनःपर्ययज्ञान—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी मर्यादा-को लेकर दूसरेके मनमे रहनेवाले पदार्थको जो स्पष्ट रीतिसे जाने वह मन पर्यय-ज्ञान है। इसके दो भेद हैं ऋजुमति मन पर्ययज्ञान, विपुलमति मन पर्ययज्ञान। इस नामके जिनराजकी सेनाके वीर योधा। ६८।२, १११।४

महागुण—वे महान् गुण जो मुक्त जीवोमें पाये जाते है। वे आठ प्रकारके है सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, वीर्यत्व और अव्याबाधत्व। जिनराजकी सेनाके इस नामके वीर योधा। ६६।३, १११।७

महाव्रत—पाँच पापोका सम्पूर्ण अशोमे त्याग करना महाव्रत है। 'अणुव्रत' की तरह ये भी सख्यामे पाँच होते है। जिनराजके दलके इस नाम-के वीर सुभट। ६९।९, ९३।११, १००।३

महाशुक्र—दसवें स्वर्गका नाम। ११०।९

महासमाधि—सदाके लिए विशुद्ध आत्म भावोमे तन्मयता। एक प्रकारकी भावात्मक देवी। १२१।३

मिथ्यात्व—तात्त्विक श्रद्धाका अभाव। विचार-शक्तिके विकसित होनेपर भी जब कदाग्रहके कारण एक दृष्टि पकड ली जाती है तब अतत्त्वमे भी जो तत्त्व-बुद्धि की जाती है वह मिथ्यात्व है। यह तीन रूपका होता है मिथ्यात्व, सम्यङ्-

मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति। कामके दलके इस नामके वीर सेनानी। ६०।१६, ६२।८, ७४।४, ८३।१०

मुक्ति—आत्मामे समस्त कर्मोसे सम्बन्ध-विच्छेदका नाम मुक्ति है। इस नामकी सिद्धसेनकी एक कन्या जिसे वरण करनेके लिए जिनराजको 'मदनपराजय' करना पड़ा। ६।४, ९८।७

मुण्डा—मूँडना या वशमें करना। इसके दस भेद है पचेन्द्रिय-मुण्डके पाँच, वचनमुण्ड, हस्तमुण्ड, पादमुण्ड, मनमुण्ड, और शरीरमुण्ड। ६५।९, ९४।२, १११।२

मुद्गर—सुप्रसिद्ध है। प्राचीनकालमें यह युद्धमें काम देता था। आज-कल सिर्फ कसरतमें इसका उपयोग किया जाता है। ताडन, छेदन, चूर्णन, प्लवन और घातन ये मुद्गरयुद्धके भेद है। ८२।३

मुसल—इस नामका एक अस्त्र, जो मन्त्रप्रयोगपूर्वक काममे लाया जाता है। ८२।४

मूढता—मूढ-प्रवृत्ति। जो प्रवृत्ति अविवेकपूर्वक की जाये वह मूढता है। इसके तीन भेद है लोकमूढता, देवमूढता और गुरुमूढता। कामकी सेनाके इस नामके वीर सेनानी। ६२।४

मूलगुण—प्रत्येक साधुके अवश्य पालन करने योग्य प्रमुख गुण। वे अट्ठाईस हैं पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रिय-निरोध, छह आवश्यक, केशलुंचन, आचेलक्य, अस्नान, क्षितिशयन, अदन्तघर्षण, स्थितिभोजन और एकभक्त। जिनराजके दलके इस नामके प्रमुख नरेश। ६६।९, १११।७

मोक्ष—आत्माकी कर्मरहित विशुद्ध अवस्था। ६।१, ३, ४, ९८।८, १२२।४

मोक्षपुर—मुक्ति और मुक्तजीवोकी आवास-भूमि। ६।१, ३, ४, १२३।१३

मोह—जो आत्मामे राग, द्वेष और ममत्व पैदा करे वह मोह है। कामदेवका प्रधान मन्त्री। ३।६, ४।९, ११, ६।४, ७।७, ९।३, ६२।१०

मोहनीय—जो आत्मामे मोहभाव उत्पन्न करे। वह अट्ठाईस प्रकारका है अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, सज्वलन क्रोध, मान-माया, लोभ, नौ नोकषाय, मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति। कामकी सेनाके इस नामके वीर सेनानी। ६२।१०

य

यथाख्यात—यथार्थ आत्मस्वरूपकी प्राप्ति। जहाँ किसी भी कषायका किंचित् भी उदय नही रहता है, वह परम विशुद्ध यथाख्यात चारित्र है। केवलज्ञान वीरका इस नामका एक बाण। ९६।६

योग—मन, वचन और कायकी प्रवृत्तिके द्वारा होनेवाले आत्मप्रदेश परिस्पन्दको योग कहते है। इसके तीन भेद है मनोयोग, वचनयोग और काययोग। इस नामके कामदेवकी सेनाके वीर। ९३।१

र

रति—जिससे रागभाव जाग्रत हो। कामदेवकी पत्नी और प्रीतिकी सखी। ३।२, २९।५, ११०।५, ११२।११, ११३।३, ४

रसपरित्याग—घी, दूध, दही आदि रसोका त्याग करना रसपरित्याग है। जिनराजका इस नामका एक बाण। १०५।१०

रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्रको रत्नत्रय कहते हैं। इस नामके केवलज्ञान वीरके बाण। ९५।८

राग—राग नाम आसक्तिका है। कामके दलका इस नामका एक योधा। ९४।२

रोष—द्वेष और क्रोधका नाम रोष है। कामदेवकी सेनाका एक सेनानी। ९४।२

रौद्र—हिंसा, झूठ, चोरी और विषयसरक्षणके लिए जो अविराम चिन्ता है वह रौद्र ध्यान है। इसके चार भेद है हिंसानन्दी, अनृतानन्दी, स्तेयानन्दी, और विषयसरक्षणानन्दी। कामदेवका

एक सेनानी । १६।१२, १७।९,१३, ९३।११

ल

लक्षण—श्रीवत्स आदि १००८ प्रशस्त लक्षण । इस नामके जिनराजकी सेनाके वीर सेनानी । ६८।११, १११।५

लब्धि—ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमविशेषको लब्धि कहते हैं। इस जातिकी जिनराजकी सेनाकी छाया । ६९।११

लेश्या—कषायके उदयसे अनुरंजित योगोकी प्रवृत्तिको लेश्या कहते है। वे छह हैं कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल । जिनराजकी सेनाके लेश्याके शुभ जातिके दण्ड । ६९।१०

व

वज्र—एक प्रकारका आयुध। यह लोहेका बनता है। इन्द्रका यह मुख्य आयुध है। ८२।५

विजय—इस नामका एक अनुत्तर विमान । ११०।९

विषय—जो जीवको अपने रूपसे सबद्ध और आकर्षित करें वे विषय हैं . स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द। ३।४, ९८।९

वृद्धि—इस नामकी एक भावात्मक देवी । १२१।३

वेदनीय—जिसके उदयसे आत्माको सुख और दु खका अनुभव हो वह वेदनीय है। उसके दो भेद है साता-वेदनीय, असातावेदनीय । कामकी सेनाका एक नरेश। ६०।१

वैजयन्त—इस नामका एक अनुत्तर विमान। ११०।९

वैतरणी—इस नामकी नरकनदी । ९१।५

वैराग्य—इस नामका जिनराजकी घोषणा सुनानेवाला । ६५।३

व्यसन—आदत। निन्दनीय और कष्टकर आचरणकी आदतका नाम व्यसन है। वे सात हैं जुवा खेलना, मदिरापान, मासभक्षण, वेश्यासेवन, परनारीगमन, चोरी और शिकारमें आसक्ति। कामदेवके सभासद् और इस नामके कामके दलके सुभट। ३।४,५९।११,७४।११

व्रत—शुभ कार्योका करना और निन्द्य कार्योंको छोडना व्रत है। वे तीन प्रकारके है अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत । जिनराजकी सेनाके वीर योधा। २३।२, ७४।८

श

शक्ति—एक आयुध। इसका आकार ठीक भालेके समान होता है। यह लोहेकी बनती है और तीन धारकी होती है। इसमे घण्टियाँ लगी रहती है। वजनमे यह बहुत भारी होती है। यह कार्तिकेयका मुख्य आयुध है। छोटी शक्तिको सगीन कहते है। आजकल यह बन्दूकके आगे लगायी जाती है। ८२।४

शङ्का—तत्त्वविषयक सन्देहका नाम शका है। मिथ्यात्ववीरका एक शक्ति-आयुध। ८९।९

शतार—ग्यारहवे स्वर्गका नाम। ११०।९

शल्य—अनेक प्रकारकी वेदनाओंसे जो आत्मामें चुभे वह शल्य हैं। उसके तीन भेद है माया, मिथ्या और निदान। कामका एक सभासद् और वीर योधा। ३।३, ७४।१०,९३।९

शस्त्र—जो मन्त्र-प्रयोगपूर्वक काममें न लाया जाये। ८२।५

शान्ति—इस नामकी एक भावात्मक देवी । १२१।४

शारदा—जिनेन्द्रके युद्धकी प्रस्थानवेलामें मगलगान गानेवाली इस नामकी एक देवी । ७०।४

शास्त्र—जो आप्तप्रणीत हो, प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाणसे अबाधित हो, तत्त्वोपदेशक हो, सबके लिए हितकर हो और कुमार्गको ध्वस्त करनेवाला हो वह शास्त्र है। ११६।३

शील—सदाचार और पूर्ण ब्रह्मचर्यपालनका नाम शील है। इसके अठारह हजार भेद हैं। जिनराजकी सेनाके इस नामके वीर नरेश। २३।२,६८।१२,१११।४

शुक्र—नवे स्वर्गका नाम। ११०।९

शुक्ल—निर्मल आत्मध्यानका नाम शुक्लध्यान है। जिनराजकी सेनाका एक वीर सेनानी। १६।१३,१८।४, ९३।११,११२।४

शुभ लेश्या—आत्माकी वह परिणति जहाँ कषाय-भाव अत्यन्त मन्द हो गया हो। ६९।१०

शून्यवादी—जिसकी दृष्टिमें ज्ञान और ज्ञेय दोनो शून्य-वत् हो। ८८।१२

श्रावक—श्रद्धालु, सदाचारी और वीतराग, धर्मपर आस्था रखनेवाला गृहस्थ श्रावक है। १८।१०

श्री—इस नामकी एक भावात्मक देवी। १२१।२

श्रुतज्ञान—जो ज्ञान मतिपूर्वक हो, जिसका विशेष सम्बन्ध मनसे हो वह श्रुतज्ञान है। जिनराजकी सेनाका एक वीर नरेश।६८।१,१११।४

ष

षट्कर्म—गृहस्थके छह आवश्यक कर्तव्य। वे इस प्रकार है देवपूजा, गुरुकी उपासना, स्वाध्याय, सयम, तप और दान। २३।१

स

सप्तभङ्गी—किसी एक पदार्थमें प्रश्नके वशसे परस्पर विरोधी धर्मोके विधि और निषेधकी कल्पना करना सप्तभगी है। वे भग सात प्रकारके है स्यात्, अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्ति-नास्ति, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् अस्ति-अवक्तव्य, स्यात् नास्ति-अवक्तव्य, स्यात् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य। जिनराजके हाथीकी एक जाति।६९।८

सप्तार्णव—सात समुद्र। ६६।१

समता—इस नामकी एक भावात्मक देवी। १२१।२

समवशरण—वह सभाभवन जहाँ तीर्थकर भगवान धर्मोपदेश देते है। ११७।८

समाधि—विशुद्ध आत्मीय भावोंमें तन्मयताका नाम समाधि है। ११९।७

समिति—सम्यक् प्रवृत्तिका नाम समिति है। वे पाँच है ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप और उत्सर्ग। जिनराजकी सेनाके इस नामके वीर। ६९।९

सम्यक्त्व—आत्माका एक वह गुण जिसके सद्भावमें नियमसे यथार्थ आत्मानुभूति होती है। जिनराजकी सेनाका एक वीर। १११।७

सम्यग्दृष्टि—वीतराग धर्मका यथार्थश्रद्धानी और आत्म-साक्षात्कारका विधाता।

सर्वार्थसिद्धि—इस नामका एक अनुत्तर विमान। ११०।१०

सहस्रार—बारहवें स्वर्गका नाम। ११०।९

सागार—गृहस्थ, श्रावक। देखिए, 'श्रावक'। १८।१२

सागारधर्म—सागार- श्रावकका धर्म। पाँच अणुव्रत और सप्तशीलका पालन करना। १८।१२,२३।१४

साधु—वह मुनि जो अट्ठाईस मूलगुणोका पालन करे। ९८।९

सामायिक— साम्यभाव-समभावमें स्थित रहनेके लिए सम्पूर्ण अशुभ और अशुद्ध प्रवृत्तियोका त्याग करना सामायिक है। केवलज्ञान वीरका एक बाण। ९६।६

सिद्धशिला—ईषत्प्राग्भार नामक आठवी पृथ्वीके बीच सफेद छत्रके आकार, ढाई द्वीप प्रमाण गोल और ४५ लाख योजन व्यासकी शिला सिद्धशिला है, जिसकी सीधमें सिद्धजीव तनुवात-वलयमें विराजमान रहते है। ११०।१०

सिद्धस्वरूप—परमेश्वर जिन-राजका स्वरशास्त्रज्ञ। ९४।६

सिद्धसेन—मोक्ष, जिसे सिद्धोकी सेना प्राप्त है। ६।४

सिद्धि—मुक्ति, सिद्धसेनकी कन्या। ७।७

सुकला—इस नामकी एक भावात्मक देवी। १२१।५

सुविभवा—इस नामकी एक भावात्मक देवी। १२१।३

सूक्ष्मसाम्पराय—जहाँ क्रोध आदि कषायोका उदय नही रहता है मात्र सज्वलन लोभका अश अति सूक्ष्म-रूप में रहता है वह सूक्ष्म-साम्पराय है। केवलज्ञान वीरका एक बाण। ९६।६

स्याद्वाद—विभिन्न दृष्टिकोणोसे वस्तुतत्त्वका निरूपण। कथचित्वाद, दृष्टिवाद और अपेक्षावाद स्याद्वादके ही समानार्थक है। स्याद्वाद-का अर्थ सन्देहवाद नही है। इस नामकी भेरी। ६९।१०

स्वसमय—आत्मीय आगम, स्वात्मा। १२५।९

स्वात्मोपलब्धि—आत्म-साक्षात्कार। इस नामकी एक देवी। १२।१५

स्वाध्याय—शब्द-अर्थकी शुद्धिपूर्वक अध्ययनको स्वाध्याय कहते हैं। आत्म-विकास करनेवाले ज्ञानार्जनका नाम स्वाध्याय है। इसके पाँच प्रकार हैं वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश। जिनराजकी सेनाके इस नामके पाँच वीर नरेश। ६७।९

स्थितिच्छेद — कर्मविशेषकी स्थिति-मर्यादाकी न्यूनताका नाम स्थितिच्छेद है। २४।४

सज्वलन—जलके ऊपर खींची गयी रेखाके समान जो क्रोध, मान, माया और लोभ बहुत मन्दरूपमें उदयमें आये वे सज्वलन हैं। जिनराजका द्वारपाल और दूत- ४।७, ४५।२, ४, ६, ४६।९, ४८।३, ९, ४९। १०, १४

संधान—अध सन्धान, ऊर्ध्वसन्धान और समसन्धानके भेदसे सन्धान तीन प्रकारका है। बाणको अधिक दूर फेंकनेके लिए अध-सन्धान, स्थिर लक्ष्यमें बाण मारनेके लिए समसन्धान और बहुत कडे लक्ष्यको बाणसे तोडनेके लिए ऊर्ध्वसन्धानका प्रयोग किया जाता है। १०।२

सयम—अशुभ प्रवृत्तिसे विरत होनेका नाम सयम है। जिनराजकी सेनाके इस नामके नरेश। ६५।१०, १११।५

सवेग—धर्मानुराग। ससार, शरीर और भोगोसे वैराग्य। जिनराजकी सेनाका सेनापति। ६५।२

मदनपराजयमें आये ऐतिहासिक और भौगोलिक नाम

	प्र स				
चगदेव	१	नागदेव (प्रथम)	१	वृपभ	६७
चम्पा	८	नागदेव (द्वितीय)	२	वृषभसेन	६९
जिनदेव	१८, ३२, ३६, ६४, ७०	प्रियकर	१	श्रीनाभि	६७
ठक्कुर माइन्ददेव	१८, ३२, ३६, ६४, ७०	पौण्ड्रवर्द्धन	१९	श्रीमल्लुगित्	१
		राजगृह	१०	हरिदेव	१, २
		रामदेव	१	हेमदेव	९

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA

MŪRTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ

General Editors ·

Dr H L. JAIN, Jabalpur : Dr A. N. UPADHYE, Kolhapur.

The Bhāratīya Jñānapītha, is an Academy of Letters for the advancement of Indological Learning In pursuance of one of its objects to bring out the forgotten, rare unpublished works of knowledge, the following works are critically or authentically edited by learned scholars who have, in most of the cases, equipped them with learned Introductions etc. and published by the Jñānapīṭha.

Mahābandha or the **Mahādhavalā :**

This is the 6th Khanda of the great Siddhānta work *Ṣatkhaṇḍāgama* of Bhūtabali : The subject matter of this work is of a highly technical nature which could be interesting only to those adepts in Jaina Philosophy who desire to probe into the minutest details of the Karma Siddhānta. The entire work is published in 7 volumes. The Prākrit Text which is based on a single Ms is edited along with the Hindī Translation Vol I is edited by Pt S. C DIWAKAR and Vols 2 to 7 by Pt PHOOLACHANDRA Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha Nos 1, 4 to 9 Super Royal Vol I · pp 20+80+350, Vol II. pp 4+40+440; Vol. III. pp 10+496, Vol IV: pp 16+428, Vol V: pp 4+460, Vol VI. pp 22+370, Vol VII · pp 8+320 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1947 to 1958. Price Rs 11/- for each vol

Karalakkhana :

This is a small Prākrit Grantha dealing with palmistry just in 61 gāthās. The Text is edited along with a Sanskrit Chāyā and Hindī Translation by Prof P K MODI Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha No 2 Third edition, Crown pp 48 Bhāratīya Jnānapīṭha Kashi, 1964 Price 75 nP,

Madanaparājaya :

An allegorical Sanskrit Campū by Nāgadeva (of the Saṁvat 14th century or so) depicting the subjugation of Cupid. Edited critically by Pt RAJKUMAR JAIN with a Hindī Introduction, Translation etc, Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 1 Second edition. Super Royal pp. 14 + 58 + 144. Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1964. Price Rs 8/-.

Kannada Prāntīya Tādapatrīya Grantha-sūcī :

A descriptive catalogue of Palmleaf Mss in the Jaina Bhaṇḍāras of Moodbidri, Karkal, Aliyoor etc Edited with a Hindī Introduction etc. by Pt. K BHUJABALI SHASTRI Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 2 Super Royal pp 32+324. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1948 Price Rs 13/-.

Tattvārtha-vṛtti :

This is a critical edition of the exhaustive Sanskrit commentary of Śrutasāgara (c. 16th century Vikrama Saṁvat) on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti which is a systematic exposition in Sūtras of the fundamentals of Jainism The Sanskrit commentary is based on earlier commentaries and is quite elaborate and thorough Edited by Pts MAHENDRAKUMAR and UDAYACHANDRA JAIN Prof MAHENDRAKUMAR has added a learned Hindī Introduction on the exposition of the important topics of Jainism The edition contains a Hindī Translation and important Appendices of referential value. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 4 Super Royal pp 108 + 548 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1949, Price Rs 16/-

Ratna-Mañjūṣā with Bhāṣya :

An anonymous treatise on Sanskrit prosody. Edited with a critical Introduction and Notes by Prof H D VELANKAR Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 5 Super Royal pp 8 + 4 + 72. Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1949 Price Rs 2/-

Nyāyaviniścaya-vivaraṇa :

The Nyāyaviniścaya of Akalaṅka (about 8th century A D) with an elaborate Sanskrit commentary of Vādirāja (c 11th century A. D) is a repository of traditional knowledge of Indian Nyāya in general and of Jaina Nyāya in particular. Edited with Appendices etc by Pt. MAHENDRAKUMAR JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos. 3 and 12 Super Royal Vol. I : pp 68 + 546; Vol. II : pp 66+468. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1949 and 1954, Price Rs 15/- each

Kevalajñāna-praśna-cūdāmani :

A treatise on astrology etc Edited with Hindī Translation, Introduction, Appendices, Comparative Notes etc by Pt. NEMICHANDRA JAIN. Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 7. Super Royal pp 16+128 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1950 Price Rs 4/-

Nāmamālā :

This is an authentic edition of the Nāmamālā, a concise Sanskrit Lexicon of Dhanamjaya (c 8th century A D) with an unpublished Sanskrit commentary of Amarakīrti (c 15th century A.D). The Editor has added almost a critical Sanskrit commentary in the form of his learned and intelligent foot-notes Edited by Pt. SHAMBHUNATH TRIPATHI, with a Foreword by Dr P L VAIDYA and a Hindī Prastāvanā by Pt MAHENDRAKUMAR The Appendix gives Anekārtha nighaṇṭu and Ekākṣarī-kośa. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 6 Super Royal pp 16+140. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1950 Price Rs 3.50 nP

Samayasāra :

An authoritative work of Kundakunda on Jaina spiritualism. Prākrit Text, Sanskrit Chāyā Edited with an Introduction, Translation and Commentary in English by Prof A CHAKRAVARTI The Introduction is a masterly dissertation and brings out the essential features of the Indian and Western thought on the all-important topic of the Self. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, English Grantha No 1 Super Royal pp 10+162+244 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1950. Price Rs 8/-

Jātakaṭṭhakathā :

This is the first Devanāgarī edition of the Pāli Jātaka Tales which are a store-house of information on the cultural and social aspects of ancient India. Edited by Bhikshu DHARMARAKSHITA. Jñānapīṭha Mūrtidevī Pāli Granthamālā No 1, Vol 1 Super Royal pp 16+384. Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1951 Price Rs 9/-

Kural or Thirukkural :

An ancient Tamil Poem of Thevar It preaches the principles of Truth and Non-violence The Tamil Text and the commentary of Kavirājapandita Edited by Prof A CHAKRAVARTI with a learned Introduction in English Bhāratīya Jñānapītha Tamil Series No 1. Demy pp 8+36+440 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1951. Price Rs 5/-

Mahāpurāna :

It is an important Sanskrit work of Jinasena-Guṇabhadra, full of encyclopædic information about the 63 great personalities of Jainism and about Jain lore in general and composed in a literary style. Jinasena (837 A.D) is an outstanding scholar, poet and teacher, and he occupies a unique place in Sanskrit Literature This work was completed by his pupil Gunabhadra Critically edited with Hindī Translation, Introduction, Verse Index etc. by Pt PANNALAL JAIN Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos. 8, 9 and 14. Super Royal Vol I: Second edition, pp 8+68+746 Varanasi 1963, Vol. II. pp. 8+556, Vol III pp 8+16+640, Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1951 to 1954 Price Rs 10/- each

Vasunandi Śrāvakācāra :

A Prākrit Text of Vasunandi (c Saṁvat first half of 12th century) in 546 gāthās dealing with the duties of a householder, critically edited along with a Hindī Translation by Pt HIRALAL JAIN The Introduction deals with a number of important topics about the author and the pattern and the sources of the contents of this Śrāvakācāra There is a table of contents There are some Appendices giving important explanations, extracts about Pratiṣṭhāvidhāna, Sallekhanā and Vratas There are 2 Indices giving the Prākrit roots and words with their Sanskrit equivalents and an Index of the gāthās as well Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha No 3. Super Royal pp. 230. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1952 Price Rs. 5/-

Tattvārthavārttikam or Rājavārttikam :

This is an important commentary composed by the great logician Akalaṅka on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti The text of the commentary is critically edited giving variant readings from different Mss. by Prof. MAHENDRAKUMAR JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 10 and 20 Super Royal Vol I: pp. 16+430; Vol II. pp. 18+436. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1953 and 1957. Price Rs. 12/- for each Vol.

Jinasahasranāma :

It has the Svopajña commentary of Paṇḍita Āśādhara (V. S. 13th century). In this edition brought out by Pt HIRALAL a number of texts of the type of Jinasahasranāma composed by Āśādhara, Jinasena, Sakalakīrti and Hemacandra are given. Āśādhara's text is accompanied by Hindī Translation Śrutasāgara's commentary of the same is also given here There is a Hindī Introduction giving information about Āśādhara etc There are some useful Indices. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 11. Super Royal pp 288. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1954 Price Rs 4/-.

Purānasāra-Saṁgraha :

This is a Purāna in Sanskrit by Dāmanandi giving in a nutshell the lives of Tīrthaṁkaras and other great persons The Sanskrit text is edited with a Hindī Translation and a short Introduction by G C JAIN Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 15 and 16 Crown Part I pp 20+198, Part II pp 16+206. Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1954, 1955 Price Rs 2/- each

Sarvārtha-Siddhi :

The Sarvārtha-Siddhi of Pūjyapāda is a lucid commentary on the Tattvārthasūtra of Umāsvāti called here by the name Gṛdhrapiccha It is edited here by Pt PHOOLACHANDRA with a Hindī Translation, Introduction, a table of contents and three Appendices giving the Sūtras, quotations in the commentary and a list of technical terms Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No. 13. Double Crown pp 116+506 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1955 Price Rs. 12/-

Jainendra Mahāvṛtti :

This is an exhaustive commentary of Abhayanandi on the *Jainendra Vyākarana*, a Sanskrit Grammar of Devanandi alias Pūjyapāda of circa 5th-6th century A. D Edited by Pts S N TRIPATHI and M CHATURVEDI There are a Bhūmikā by Dr V S AGRAWALA, *Devanandikā Jainendra Vyākarana* by PREMI and *Khilapāṭha* by MIMĀNSAKA and some useful Indices at the end Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 17 Super Royal pp. 56+506. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1956 Price Rs 15/-

Vratatithi Nirṇaya :

The Sanskrit Text of Sinhanandi edited with a Hindī Translation and detailed exposition and also an exhaustive Introduction dealing with various Vratas and rituals by Pt NEMICHANDRA SHASTRI Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 19. Crown pp 80+200. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1956 Price Rs 3/-

Pauma-cariu :

An Apabhraṁśa work of the great poet Svayambhū (677 A D). It deals with the story of Rāma The Apabhraṁśa text up to 56th Sandhi with Hindi Translation and Introduction of Dr DEVENDRAKUMAR JAIN, is published in 3 Volumes Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhraṁśa Grantha Nos 1, 2 & 3 Crown size, Vol I pp 28+333, Vol II. pp 12+377, Vol III pp 6+253 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1957, 1958 Price Rs 3/- for each Vol

Jīvaṁdhara-Campū :

This is an elaborate prose Romance by Haricandra written in Kāvya style dealing with the story of Jīvaṁdhara and his romantic adventures It has both the features of a folk-tale and a religious romance and is intended to serve also as a medium of preaching the doctrines of Jainism. The Sanskrit Text is edited by Pt PANNALAL JAIN along with his Sanskrit Commentary, Hindī Translation and Prastāvanā There is a Foreword by Prof K K HANDIQUI and a detailed English Introduction covering important aspects of Jīvaṁdhara tale by Drs. A. N UPADHYE and H L. JAIN. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 18 Super Royal pp 4+24 +20+344. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1958. Price Rs 8/-.

Padma-purāṇa :

This is an elaborate Purāṇa composed by Raviṣeṇa (V S. 734) in stylistic Sanskrit dealing with the Rāma tale It is edited by Pt. PANNALAL JAIN with Hindī Translation, Table of contents, Index of verses and Introduction in Hindī dealing with the author and some aspects of this Purāṇa. Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 21, 24, 26 Super Royal Vol I : pp 44+548; Vol. II : pp. 16+460, Vol. III : pp 16+472 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashī, 1958-59. Price Rs. 10/- each

Siddhi-viniścaya :

This work of Akalaṅkadeva with Svopajñavṛtti along with the commentary of Anantavīrya is edited by Dr MAHENDRAKUMAR JAIN. This is a new find and has great importance in the history of Indian Nyāya literature It is a feat of editorial ingenuity and scholarship. The edition is equipped with exhaustive, learned Introductions both in English and in Hindi, and they shed abundant light on doctrinal and chronological problems connected with this work and its author. There are some 12 useful Indices. Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha Nos 22, 23. Super Royal Vol I: pp. 16+174+370; Vol. II: pp. 8+808. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1959 Price Rs 18/- and Rs. 12/-.

Bhadrabāhu-Saṁhitā :

A Sanskrit text by Bhadrabāhu dealing with astrology, omens, portents etc Edited with a Hindī Translation and occasional Vivecana by Pt NEMICHANDRA SHASTRI There is an exhaustive Introduction in Hindī dealing with Jain Jyotiṣa and the contents, authorship and age of the present work Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 25. Super Royal pp 72+416 Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1959. Price Rs. 8/-

Pañcasaṁgraha :

This is a collective name of 5 Treatises in Prākrit dealing with the Karma doctrine the topics of discussion being quite alike with those in the Gommatasāra etc The Text is edited with a Sanskrit commentary, Prākrit Vṛtti by Pt HIRALAL who has added a Hindī Translation as well A Sanskrit Text of the same name by one Śrīpāla is included in this volume There are a Hindī Introduction discussing some aspects of this work, a Table of contents and some useful Indices Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākrit Grantha No 10 Super Royal pp 64+804 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1960 Price Rs 15/-

Mayana-parājaya-cariu :

This Apabhraṁśa Text of Harideva is critically edited along with a Hindī Translation by Prof Dr HIRALAL JAIN It is an allegorical poem dealing with the defeat of the god of love by Jina This edition is equipped with a learned Introduction both in English and Hindī The Appendices give important passages from Vedic, Pāli and Sanskrit Texts There are a few explanatory Notes, and there is an Index of difficult words Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhraṁśa Grantha No 5 Super Royal pp 88+90. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1962 Price Rs 8/-

Harivaṁśa Purāna :

This is an elaborate Purāṇa by Jinasena (Śaka 705) in stylistic Sanskrit dealing with the Harivaṁśa in which are included the cycle of legends about Kṛṣṇa and Pāndavas The text is edited along with the Hindī Translation and Introduction giving information about the author and this work, a detailed Table of contents and Appendices giving the verse Index and an Index of significant words by Pt. PANNALAL JAIN Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 27 Super Royal pp 12+16+812+160 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1962 Price Rs 16/-

Karmaprakṛti :

A Prākrit text by Nemicandra dealing with Karma doctrine, its contents being allied with those of Gommaṭasāra Edited by Pt. HIRALAL JAIN with the Sanskrit commentary of Sumatikīrti and Hindī Tīkā of Pandita Hemarāja, as well as translation into Hindī with Viśeṣārtha Jñānapīṭha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Prākṛt Grantha No 11 Super Royal pp 32+160. Bhāratīya Jñānapīṭha Kashi, 1964 Price Rs. 6/-.

Upāsakādhyayana :

It is a portion of the Yaśastilaka-campū of Somadeva Sūri It deals with the duties of a householder. Edited with Hindi Translation, Introduction and Appendices etc by Pt KAILASHCHANDRA SHASTRI Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 28. Super Royal pp 116+539, Bhāratīya Jñānapītha, Kashi, 1964. Price Rs. 12/-.

Bhojacaritra :

A Sanskrit work presenting the traditional biography of the Paramāra Bhoja by Rājavallabha (15th century A D). Critically edited by Dr. B Ch. CHHABRA, Jt Director General of Archæology in India and S. SANKARANARAYANA with a Historical Introduction and Explanatory Notes in English and Indices of Proper names Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Sanskrit Grantha No 29 Super Royal pp 24+192. Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1964 Price Rs 8/-.

Satyaśāsana-parīkṣā

A Sanskrit text on Jain logic by Ācārya Vidyānandi, critically edited for the first time by GOKULCHANDRA JAIN. It is a critique of selected issues upheld by a number of philosophical schools of Indian Philosophy There is an English compendium of the text, by Dr. NATHMAL TATIA Jñānapītha Mūrtidevī Jain Granthamālā, Sanskrit Grantha No 30. Super Royal pp 56+34+62. Bhāratīya Jñānapītha, Kashi, 1964. Price Rs 5/-

Karakaṇḍa-cariu

An Apabhraṁśa text dealing with the life story of king Karakaṇḍa, famous as 'Pratyeka Buddha' in Jaina & Buddhist literature Critically edited with Hindi & English Translations, Introductions, Explanatory Notes and Appendices etc by Dr HIRALAL JAIN. Jñānapītha Mūrtidevī Jaina Granthamālā, Apabhraṁśa Grantha No. 4 Super Royal pp 64+278 Bhāratīya Jñānapītha Kashi, 1964 Price Rs. 10/-.

For Copies Please write to—

BHARATIYA JNANPITH,
3620/21 Netaji Subhas Marg, Dariyaganj,
Delhi (India)

or

BHARATIYA JNANPITH,
Durgakund road, Varanasi (India).